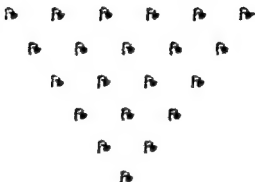


प्रकाशक—

नाथूराम प्रेमी,

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,  
हीराबाग, पो० गिरगांव बम्बई ।



मुद्रक—

मंगेश नारायण कुट्टकर्णी,

कनोटक प्रेस,

बं० ४१४, लड्डादा, बम्बई ।

## ग्रन्थ-परिचय ।



हम संग्रहमें चार ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते हैं—१ प्राकृत भाषासंग्रह, २ संस्कृत भाषासंग्रह, ३ भाषा-त्रिमन्त्री और ४ आख्य-त्रिमन्त्री । इन चारोंके सम्बन्धमें हम जो कुछ बातें जान सके हैं, वे संक्षेपमें नीचे दी जाती हैं—

### १-भाषा-संग्रह ।

इसके कलां धीरिमलसेन गणधर ( गणी ) के शिष्य आचार्य देवसेन हैं और वे संग्रहकः नयबक और दर्शनसार आदिके कलांसे अभिन्न हैं । नयबककी भूमिकामें हम इनके विषयमें विस्तारपूर्वक लिख चुके हैं । विष्णु संवत् ९९० में उन्होंने दर्शनसारकी रचना की थी, अतएव वे विष्णुकी दसवीं शताब्दिके विद्वान् हैं । अब तक इनके बनाये हुए दर्शनसार, तत्त्वसार, आराधनासार, नयबक और यह भाषासंग्रह हम तरह पाँच ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं\* । ये पाँचों प्राकृतमें हैं । ज्ञानसार और धर्मसंग्रह आदि और भी कई ग्रन्थ आपके बनाये हुए होने जाते हैं; परन्तु अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं । इनकी खोज होनी चाहिए ।

दो हस्तलिखित प्रतिबोंके आधारसे इस ग्रन्थका संशोधन कराया गया है । इनमेंसे पहली स्वर्णक प्रति जयपुरस्थ पाटोदी-मन्दिरके सरस्वती-भंडारसे पं० इन्दुराजजी शास्त्रीद्वारा प्राप्त हुई और दूसरी स्वर्णक प्रति पूनेके ' भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट 'से+ । पहली प्रति ' ज्येष्ठ सुदी १२ शुक्ल संवत् १५५८ ' की लिखी हुई है और बहुत ही शुद्ध है । दूसरी प्रति ग्रन्थ लिखानेवालेकी एक विस्तृत प्रशस्तिसे युक्त है और बहुत ही अशुद्ध है । प्रशस्तिसे मालूम होता है कि यह प्रति वि० संवत् १६२७ में खण्डे-खाल जातिके एक गोपागोत्रवाले कुटुम्बकी ओरसे ' अष्टादिकग्रन्थके उपाप-

\* इनमेंसे ' आराधनासार ' माणिकबन्द-ग्रन्थमालाका छठ और ' नयबक ' सोलहवाँ ग्रन्थ है । तत्त्वसार सेरहवे ' तत्त्वानुशासनादि-संग्रह ' के अन्तर्गत है । ' दर्शनसार ' जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय द्वारा प्रकाशित हुआ है ।

+ नं० १४६१, सन् १८८६-९२ ।

नार्य' लिखवाई जाकर सोम नामक मन्त्रचारीको दान की गई थी। जयपुर राज्यके भोजाबाद नामक स्थानमें यह ग्रन्थ लिखा गया था। प्रशस्तिकी नकल दी जाती है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इसकी संस्कृत बहुत ही अशुद्ध है:—

“इति भावसंग्रहः समाप्तः । श्लोकसंख्या ९६० । सम्पूर्ण । संवत् १६२७ चर्षे फाल्गुन वदि ५ स्वातिनक्षत्रे बुधवारं धीमादि-जिनचत्वालये भोजाबादिस्थाने राजधर्माभिमानसिधकुलाहराज्ये श्री-मूलसंघे नंदामनाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुंदकुंद आचार्योन्वये भट्टारकधीपन्नंदिदेवा तत्पट्टे भट्टारकधीशुमचंद्र-देवा तत्पट्टे भट्टारकधीजिनचंद्रदेवा तत्पट्टे भट्टारकधीप्रभाचंद्र-देवा तत्पट्टे भट्टारकधीमंडलाचार्यधीधर्मचंद्रदेवा तत्पट्टे भट्टारकधीमंडलाचार्यधी-ललितकीर्ति तत्पट्टे भट्टारकधीमंडलाचार्य चंद्रकीर्तिदेवा तदामनाये पंडेल-वालान्वये गोधागोत्रे सा. ठाकुर तन्माया लाली तत्पुत्र अत्थारि प्रथ. तेजा दु. केलहा ति. पैराज शु. रंगा । तेजाभाया चागुल दु. लक्ष्मी पु. हनु । केलहा कैलवदे पुत्र नरयण दु. नरवद प्रि. गोपाल शु. सारग । पैराज पैसरि पु. हेमा । सा. वोदिध माया बहरगदे तत् पुत्र देवसी एतेषां इदं साहसं भावसंग्रहं लिपायत धनायी अष्टाष्टकप्रत उचपनार्य प्र. सोमाय दत्तं ।”

यह प्रति पहली प्रतिकी अपेक्षा विलक्षण है। इसके प्रारम्भिक अंशमें अन्य ग्रन्थोंके उद्धरणोंकी भरमार है। पहले हमारा खयाल था कि मूलग्रन्थकर्त्ताने ही ये उद्धरण संग्रह किये होंगे; परन्तु विचार करनेसे मालूम हुआ कि नहीं, ग्रन्थ-कर्त्ताके बहुत बाद, किसी विद्वान् लिपिकारने ही यह परिश्रम किया है। क्योंकि इसमें पं० बामदेवकृत संस्कृत भावसंग्रह तकके कई श्लोक \* उद्धृत किये गये हैं और पं० बामदेव जैसा कि आगे बतलाया जायगा—विक्रमकी १९ वीं शताब्दिके विद्वान् हैं। इसी तरह अशस्तिलक चम्पूके भी अनेक पद्य ‘उर्ध्व’ रूपमें दिये गये हैं और अशस्तिलक वि० सु० १-१९ में समाप्त हुआ है।

\* देखिए प्राकृत भावसंग्रहके पृष्ठ २४ की टिप्पणी और संस्कृत भावसंग्रहके १-७०-७१ नम्बरके श्लोक ।

## २-भाष-संग्रह ( संस्कृत ) ।

इसके कर्ता पं० बामदेव है । ग्रन्थप्रशस्तिसे मालूम होता है कि ये मूलसंघी आचार्य लक्ष्मीचन्द्रके शिष्य थे और नैगम नामक कुलमें उत्पन्न हुए थे । निगम कायस्थ आदि का एक मेर है । आश्रय नही ओ पं० बामदेवजी कायस्थ ही हो । दिगम्बरसम्प्रदायमें महाकवि हरिचन्द्र, दशानुन्दर, आदि और भी अनेक विद्वान् कायस्थमातीय हो चुके हैं ।

लक्ष्मीचन्द्र नामके अनेक आचार्य हो चुके हैं । उनमेंसे पं० बामदेवके गुरु श्रीलोकचकीर्तिके शिष्य और जिनचन्द्रके प्रशिष्य थे । ग्रन्थमें उनको रचनाका समय नहीं लिखा है, इस लिए पं० बामदेवका निश्चित समय तो नहीं बतलाया जा सकता है, परन्तु अनुमानत वे विक्रमकी पन्द्रहवीं या सोलहवीं शताब्दिके विद्वान् जान पड़ते हैं । उन्होंने एक जगह ( पृ० ११६ में ) ' उर्ध्व जिनसंहिताया ' लिख कर एक आचार्य उद्धृत किया है । मालूम नहीं, यह कौनसी जिनसंहिता है । यदि भारतक एकसन्धि की जिनसंहिता है—जिनका रचनाकाल विक्रमकी आठहवीं शताब्दि है—तो यह स्पष्ट है कि भावसेमहइसके पीछे किसी समय बना है ।

२६० बाबा दुसीचन्द्रजीकी संस्कृत-ग्रन्थमूचीमें पं० बामदेवजीके बनाये हुए प्रतिज्ञातुर्घर्मह, तत्कार्यसार, त्रिलोकदीपिका, भुवशानोदासन, त्रिलोकसारपूजा और मन्दिरसंस्कारपूजा नामक छः ग्रन्थोंके नाम दिये हैं । यदि इन ग्रन्थोंमेंसे एक दो ग्रन्थ ही मिल जायेंगे तो ग्रन्थकर्ताका समय बहुत कुछ निर्णीत हो जायगा ।

यह भावनेमह प्रायः प्राकृत भावसेमहका ही संस्कृत अनुवाद है । दोनों ग्रन्थोंको आमने सामने रखकर पढ़नेसे यह बात अच्छी तरह समझमें आ जाती है । यद्यपि पं० बामदेवजीने हममें जगह जगह अनेक परिवर्तन, परिवर्धन और संशोधन आदि किये हैं, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह स्वतंत्र ग्रन्थ है । लिखताही दृष्टिसे अच्छा होता, यदि पं० बामदेवजीने अपने ग्रन्थमें यह बात स्वीकार कर ली होती ।

इस ग्रन्थका संशोधन दो प्रतियोंके आधारसे किया गया है, जिनमेंसे एक तो ओपाटीके स्वर्गीय सेठ मानिकचन्द्रजीके सारस्वतीभण्डारमें है—ओ



सिरिमूलासंधेदेमिय पुत्थयगच्छ कौडकुन्दमुणिणाहं (१)  
 परमण्ण इंगलेसर्धलम्मि आदमुणिपहद (दाण) स्स ॥ ११८ ॥  
 सिद्धंतादयचंदस्स य सिस्सो बालचंदमुणिपयरो ।  
 सो भवियकुयलयाणं भाणंदकरो सया जयऊ ॥ ११९ ॥  
 सदागम-परमागम-तथकागम-निरयसेसयेदी हु ।  
 विजिदसयलण्णयादी जयउ चिरं भमयसुरिसिद्धति ॥ १२० ॥  
 णर्याणकयेयपमाणं जाणिष्ठा विजिदसयलपरसमभो ।  
 यरुणियरणिपदधवियपयपम्मो चारुकिस्समुणी ॥ १२१ ॥  
 णादणिपिलत्थसत्थो सयलणरिदेदिं पूजिओ विमलो ।  
 जिणमग्गमणसुरो जयउ चिरं चारुकिस्सिमुणी ॥ १२२ ॥  
 यरसात्तपाणिउणो सुहं परमो विरदियपरमाभो ।  
 भवियाणं पडियोदणपरो पदाचंद णाम मुणी ॥ १२३ ॥

इति भावसेप्रहः समाप्तः ।”

इन गाथाओंसे नीचे मिले हुए आचार्योंका पता लगता है:—

१—बालचन्द्रमुनि । इन्होंने भुतमुनिसे भावकही दोहा दी थी । आ-  
 श्वप्रभगीमें भी भुतमुनिने इनका स्मरण किया है ।

२—अभयचन्द्र । ये मूलतः, देशीय गण, पुस्तकगच्छ और कुन्दकुन्दा-  
 न्यायके आचार्य थे और इंग्लैश नामक स्थानके मुनियोंमें प्रधान थे । ये व्या-  
 करण, धर्मशास्त्र और न्यायशास्त्र आदि अनेक विषयोंके ज्ञाता थे और सारे  
 अन्य ब्राह्मणोंसे इन्होंने जीता था । बालचन्द्र मुनि इनके शिष्य थे । भुतमुनिने  
 इनसे मुनिदीक्षा ली थी और शास्त्राध्ययन भी किया था ।

३—प्रभाचन्द्र । ये सारथव अर्थात् समर्थसार, पंचास्तिकाय और प्रवच-  
 नसारके ज्ञाता थे, परमाचारी रहित थे और भव्य अन्योंको प्रतिबोधित करनेवाले

१ कर्नाटक प्रान्तमें जिनका यह कोई बहुत ही प्रसिद्ध स्थान है । यशोपर  
 अनेक आचार्य और विद्वान् हो गये हैं, अनेक आचार्योंकी निवृत्तियाँ बनी हुई  
 हैं, महारकोंकी एक गरी रही है और संभवतः बहुतकुछ भी कोई मूर्त है ।  
 अथर्ववेदोंके १०८ वें लेखमें लिखा है:—

नन्दिर्संघे स देशीयगणे गच्छेच्छुस्तके ।

इहमुलेशपति जीवाग्मंगलीकृतभूतलः ॥ २२ ॥

कमसे कम ३०० वर्ष पहलेकी लिखी हुई होगी\* और दूसरी पं० उदयलालजी काशलीवालके पास है और जिसे पं० जमोलकचन्दजी उद्देमरीयने वि० सं० १९६४में महासभाके सरस्वतीभंडारको किसी प्राचीन प्रतिपरसे लिखा था। इसमेंसे पहली प्रति प्रायः शुद्ध है।

### ३-भाव-त्रिमङ्गी और ४-आश्व-त्रिमङ्गी ।

इन दोनों ही ग्रन्थोंसे कर्ता एक आचार्य है और उनका नाम शुनमुनि है। पिछले ग्रन्थकी अन्तिम गाथामें ग्रन्थकारने कामदेवके प्रभावको नष्ट करनेवाले और शिष्यजनोंद्वारा पूजित बालचन्द्र मुनिका 'जयकार' किया है। इससे माह्य होता है कि बालचन्द्र उनके पूज्य पुरुषोंमें थे। परन्तु वे कौन थे, इसका निश्चय इन मुद्रित ग्रन्थोंसे नहीं हो सकता। तलाश करनेसे सुहृद् बाबू जुगलकिशोरजी मुस्तारसे माह्य हुआ कि आराके जैनसिद्धान्तमवनमें भावत्रिमङ्गीकी एक तादपत्रपर लिखी हुई प्राचीन प्रति है और उसमें आगे लिखी हुई सात गाथायें इस मुद्रित प्रतिसे अधिक हैं।† इन गाथाओंसे यह तो निश्चित हो ही जाता है कि पूर्वोक्त बालचन्द्र मुनि शुनमुनिके अशुवतदीक्षागुरु थे, साथ ही और भी कई विद्वानोंका इनमें उल्लेख है जिनसे ग्रन्थकर्ताके समय-निर्णयमें बहुत कुछ सहायता मिलती है। वे गाथायें ये हैं:—

“अणुवदगुरुयाल्लेह मद्दय्यदे अमयचंदसिद्धंति ।

सार्धेऽभयसूरि पद्माचंदा खलु सुयमुनिस्स गुरु ॥ ११७ ॥

\* इस प्रतिके अन्तमें लिखा है—“आ० श्रीलतीतचन्द्र तत सीस्य ज० की० का ॥ छ ॥ म० शिवदास तत्सिष्य पं० बोरभाणपठनार्थ ।” ऊपर जो प्राकृत भावसंप्रहृदी लेखक-प्रशारित दी है वह सं० १९२७ की लिखी हुई है और उस समय ललितचन्द्रके शिष्य चन्द्रकीर्ति वर्तमान थे। अर्थात् पूर्वोक्त प्रतिसे २५-३० वर्ष बाद यह प्रति लिखी गई होगी और इसी लिए हम इसे लगभग ३०० वर्ष पहलेकी समझते हैं।

† जीजाटीके स्वर्णीयसेठ भाणिकचन्दजीके सरस्वतीभंडारके 'प्रशस्तिसंप्रह' नामक रात्रिस्टरमें 'भावत्रिमङ्गी' की दो प्रतिबोके नोट लिये हुए हैं, परन्तु भी इन प्रशस्तिकी गाथाओंका अभाव है। लेखकीकी कृपासे गैडकी प्र० प्रशस्तिर्या इसी तरह लसप्राप्त हो चुकी है।

निरिगुतः संघे देमिय पुण्ययगच्छ कोइकुंदमुणिणाहं (१)  
 परमण्ण इंगलेमपेल्लमि आदमुणिपदद (दाण) स्स ॥ ११८ ॥  
 मिद्धंतादयचंदस्स य निस्सो बालचंदमुणिपयरो ।  
 सो भवियवुपययाणं भाणंद्वारो सया जयऊ ॥ ११९ ॥  
 वहागम-परमागम-तक्कागम निरयसेमवेसी हु ।  
 विजिदस्यगण्णयादी जयउ चिरं भमयसुरिसिद्धति ॥ १२० ॥  
 जयाणकरोपयमाणं जाणिता विजिदस्यलपरस्समभो ।  
 यराणिपइजियदयंदियपयपम्मो चारुकित्तमुणी ॥ १२१ ॥  
 जादणिरित्तयमयो सयलजरीदेदि पूजिभो विमलो ।  
 जिणमन्नागमणपुरो जयउ चिरं चारुकित्तमुणी ॥ १२२ ॥  
 यरमारत्तपाणेउणो सुहं परभो विरदियपरमाभो ।  
 भविषाणं पडिषोदणपरं पहाचइ जाम मुणी ॥ १२३ ॥

इति भावसंग्रहः समाप्तः । "

इन गाथाओंसे नीचे गिने हुए आचार्योंका पता लगता है:—

१—बालचन्द्रमुनि । इन्होंने भुतमुनिको धारकरी दोहा दी थी । अ-  
 द्भविभंगीमें भी भुतमुनिने इनका स्मरण किया है ।

२—भमयचन्द्र । ये मूलसंघ, देहीय गण, पुस्तकगच्छ और कुन्दकुन्दा-  
 स्थावके आचार्य थे और इंगलेसी नामक स्थानके मुनियोंमें प्रधान थे । ये व्या-  
 करण, धर्मशास्त्र और न्यायशास्त्र आदि अनेक विषयोंके ज्ञाता थे और सारे  
 अन्य ब्राह्मणोंकी इन्होंने जीता था । बालचन्द्र मुनि इनके शिष्य थे । भुतमुनिने  
 इनसे मुनिदीक्षा ली थी और शास्त्राध्ययन भी किया था ।

३—प्रभाचन्द्र । ये सारत्रय अर्थात् समयगार, पञ्चास्तिकाय और प्रवर्च-  
 नसारके ज्ञाता थे, परमर्षीते रहित थे और भव्य जनोंको प्रतियोगित करनेवाले

१ बर्नाटक प्रान्तमें जिनका यह कोई बहुत ही प्रसिद्ध स्थान है । यहाँपर  
 अनेक आचार्य और विद्वान् हो गये हैं, अनेक आचार्योंकी निष्ठाये बनी हुई  
 है, महामूर्खोंकी एक गद्दी रही है और संभवतः बहुतबलिकी भी कोई मूर्ति है ।  
 ध्वजबेल्गोसके १०८ वें लेखमें लिखा है:—

सम्प्रिस्संघे स देहीयगणे गच्छेच्छपुस्तके ।

इहगुलेशायलि जीयाम्मंगलीकृतभूतलः ॥ २२ ॥



ये । श्रुतमुनिके ये भी विद्यागुरु थे, अर्थात् इनसे भी उन्होंने शास्त्राध्ययन किया था ।

४—चारुकीर्ति । ये नय, निक्षेप और प्रमाणके ज्ञाता, सारे परधर्मोंको जीतनेवाले, बड़े बड़े राजाओंद्वारा पूजित, सारे शास्त्रोंके जाननेवाले और जिन-मार्गपर वीरतासे चलनेवाले थे ।

कर्नाटककविचरितके कर्ताने श्रुतमुनिके गुरु बालचन्द्रका समय वि० सं० १३३० के लगभग बताया है । उनका कथन है कि बालचन्द्र मुनिने शक संवत् ११९५ ( वि० सं० १३३० ) में इम्बसगढ़की एक टीका लिखी है और उसमें उन्होंने अपने गुरुका नाम अमयचन्द्र लिखा है । इनसे सिद्ध हुआ कि श्रुतमुनि विक्रमकी चौदहवीं सताब्दिके विद्वान् हैं और वि० सं० १३३० के लगभग उनका अस्तित्व था ।

'चाहकीर्ति' यह भवणबेल्गोलके भट्टारकोंका स्थायी नाम है । अर्थात् वहाँके यह पर जितने आचार्य होते हैं वे सब चाहकीर्ति पण्डिताचार्य कह्ये जाते हैं । कर्नाटककविचरितके कर्ताके मतसे भवणबेल्गोलके जैनगुरुओंने यह नाम वि० सं० ११७४ के बाद धारण किया है । तब पूर्वोक्त प्रसारितकी गायकोंमें जिन चाहकीर्तिकी प्रशंसा की है वे दूसरे या तीसरे चाहकीर्ति होंगे ।

आचार्य प्रभावचन्द्रको 'सप्तत्रयनिपुण' विमर्षण दिया गया है और हमारी संग्रहकी हुई प्रथमसूचीमें नाटककालमसार आदि तीनों ग्रन्थोंकी प्रभावचन्द्रकृत टीकाओंके नाम दिये हुए हैं । अतः ये सप्तत्रयनिपुण और उक्त टीकाकार एक ही होंगे ।

भवणबेल्गोलमें श्रुतमुनिकी निपण्णगर संगराज कविता ७५ पद्योंका एक विशाल संस्कृत शिलालेख है । शकसंवत् १३५५ ( वि० सं० १४९० ) में उक्त निपण्ण प्रस्तुत हुए हैं । उगमे प्रचाननः शुभकोनि, चाहकीर्ति, योगिराजपण्डित-आचार्य और शुभनिधी महिमा कर्णन की गये हैं । कविने श्रुतमुनिकी प्रशंसाके लो पुन बंध दिये हैं । वे बड़े भारी विद्वान् थे और उन्होंने समाधिपूर्वक स्वर्ण-नाम दिया था । यदि निपण्णकी प्रशंसाका समयही उनके स्वर्णनामका समय है, तब लो कहना होगा कि ये श्रुतमुनि भावत्रिमयीके कविने काई मुरा ही हैं और उनसे पीछे हुए हैं, परन्तु यदि स्वर्णनामके १००-१२५ वर्ष बाद निपण्णर

उप खिताबेख लिखवाया गया है, तो वह निश्चय और प्रदीप्ता हन्दीकी हो सकती है।

भाव-विभंगीका दूसरा नाम 'भावसंग्रह' भी है। अनेक प्रतियोंमें 'भाव-संग्रह' नाम ही लिखा है। भाव-विभंगी और भावसंग्रह-विभंगी ये दोनों ग्रन्थ बम्बईके तेरहवींसी मन्दिरकी एक जीर्ण प्रति परसे—जिसमें लिखनेके संवत् आदिवा अभाव है—छपाये गये हैं। प्रति प्रायः शुद्ध है।

इस संग्रहके तीनों प्राकृतग्रन्थोंकी संस्कृतच्छाया वं० वल्लभलालजी सोनीने की है। मूल प्रतियोंमें छायाका अभाव था।

जिन जिन पुस्तकालयों या सरस्वतीमण्डारोंकी प्रतियोंसे इन ग्रन्थोंके प्रकाशित करनेमें सहायता मिली है, उनके अधिकारियोंके प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश करते हैं और आशा करते हैं कि उनसे आगे भी हमें इसी प्रकार सहायता मिलती रहेगी।

बम्बई,  
आदिबन सुदी १५ }  
वि० सं० १९४८ वि० १ }

निदेशक—  
नाथूराम प्रेमी।



- १७ वृक्षप्रभृतादिभेदः ( वृक्षप्रभृते लीक, तिमिराक्षरं, हीनप्रभृते,  
रत्नप्रभृते, इत्यादिभेदाः ) ... १)
- १८ प्रायश्चित्तप्रभेदः ( छेद-दिह, छेद-शान्ते, प्रायश्चित्त-वृत्ति,  
प्रायश्चित्त-पञ्च ... १२)
- १९ मूलप्रभेदः मरीक. ( मण्डपप्रभेदः ) ... १३)
- २० आत्मप्रभेदादिः ( आत्मप्रभेदः, मरीकप्रभेदः, मण्डप-  
प्रभेदः, मरीक-प्रभेदः ) ...

मीतिप्रभेदादि मरीक, मण्डपप्रभेदादिभेद और मण्डपप्रभेदादि मरीक के तीन  
प्रभेद हैं।





नमः सिद्धेभ्यः ।

## भावसंग्रहादिः ।



श्रीदेवसेनसूरिविरचितो

भावसंग्रहः ।



पणविय सुरसेणुयं मुनिगणहरवंदियं महावीरं ।  
बोच्छामि भावसंग्रहमिणमो भव्यप्रबोधहृदं ॥ १ ॥

प्रणम्य सुरसननुतं मुनिगणधरवन्दितं महावीरम् ।

वक्ष्ये भावसंग्रहमेतं भव्यप्रबोधनार्थम् ॥

जीवस्स होंति भावा जीवा पुन दुर्विहमेयसंयुक्ता ।  
मुक्ता पुन संमारी मुक्ता सिद्धा निरवलेवा ॥ २ ॥

जीवस्य भवन्ति भावा जीवाः पुनर्निविधभेदसंयुक्ताः ।

मुक्ताः पुन. संसारिणो मुक्ताः सिद्धा निरवलेवाः ॥

लोयगसिहरवासी केवलणापेण मुणियतइलोया ।

असरीरा गइरहिया मुणियला मुद्धभावदा ॥ ३ ॥

लोकाप्रशिखरवासिनः केवलज्ञानेन मुनितत्रिलोकाः ।

अशरीरा गतिरहिताः मुनिश्चलाः शुद्धभावस्थाः ॥

जे संसारी जीवा चउगइपज्जायपरिणया णिचं ।

ते परिणामे णिण्हहि मुहासुहे कम्मसंगहणे ॥ ४ ॥

ये संसारिणो जीवाश्चतुर्गतिपर्यायपरिणता नित्यम् ।

ते परिणामान् गृह्णन्ति शुभाशुभान् कर्मसंग्रहणे ॥

भावेण कुणइ पावं पुण्णं भावेण तह य मुक्खं वा ।

इयमंतर णाऊणं जं सेयं तं समायरहं ॥ ५ ॥

भावेन करोति पापं पुण्यं भावेन तथा च मोक्षं वा ।

इत्यन्तरं ज्ञात्वा यच्छ्रेयस्तं समाश्रय ॥

सेतुं सुद्धो भावो तस्सुवलंभो य होइ गुणठाणे ।

पणदहपमायरहिण सयल वि चारित्तजुत्तस्स ॥ ६ ॥

सेव्यः शुद्धो भावः तस्योपलम्भश्च भवति गुणस्थाने ।

पंचदशपमादरहिते सकलस्यापि चारित्र्ययुक्तस्य ॥

सैसा जे वे भावा मुहासुहा पुण्णपावसंजणया ।

ते पंचभावमिम्सा होंति गुणदाणमासेज्ज ॥ ७ ॥

शेषौ यौ द्वौ भावौ शुभाशुभौ पुण्यपापसंजनकौ ।

तौ पंचभावमिश्री भवन्तौ गुणस्थानमाश्रित्य ॥

१ मं. ख । २ इं ख । ३ पुणं ख । ४ मो. ख । ५ अस्मादमे वलं

चेति दावा ख—पुस्तके गाथेयं वर्तते—

जीववइअतिपचोरिवमेहुणपरिणहोहि रहिभो वि ।

परिणामपरिणदिभो तं दुलमण्णो भवो अरवं ॥ १ ॥

जीववधालीकचोरीमधुनपरिग्रहे रहितोऽपि

परिणामपरिणद्भावाः तन्मुलमण्यो भवन्तौ नरकं ॥

६ सेरो. ख । ७ भावे ख ।

अउददउ परिणामिउ रयउचनमिउ तद्वा उवममो गइमो ।

एए पच पढाणा भावा जीवाण होनि त्रियणोए ॥ ८ ॥

औददिवः परिणामकः क्षयोपशमिकान्तधोपशमिक क्षायिक ।

एते पंच प्रधाना भावा जीवाना भवन्ति जीवन्तीके ॥

ते चियं पज्जायमया चउददगुणठाणणामया भणिया ।

महिउला उदय उवमम रयउचनम रउं हु कम्मम्य ॥ ९ ॥

ते एव पर्यायगताधगुर्दशगुणस्थाननामका भणिताः ।

एवमेव उदयमुपशमं क्षयोपशमं क्षयं हि कर्मणः ॥

मिण्ठा नामण मिम्मो अविरियमम्मो य देमविरदो य ।

पिग्गो पमत्त इयरो अपुव्व अणियहि मुहमो य ॥ १० ॥

मिथ्यात्वे सासादनं मिथं अविरतसम्यक्त्वं च देशविरतं च ।

विरतं प्रमथं इतरदपूर्वमनिवृत्तिं मूढमेव च ।

उवसंतर्णीमोहे गजोदयेवल्लिजिणो अजोगी यं ।

ए चउदस गुणठाणा कमेण सिद्धां य णायग्गां ॥ ११ ॥

१ गइ येअ विअव एवार्थे । २ य ख । ३ अजोईभी. य । ४ सिद्धा सुये-  
यस्या ख । ५ अस्मादमे व्यादयेयं गाथागुणद्वयस्य ख-गुणद्वये—

अथ चतुर्दशगुणस्थानस्य विवरणा क्रियते, मिण्ठा-मिथ्यात्वगुणस्थानं १ ।  
सासण-सामादनगुणस्थानं २ । विरगो-मिथ्यगुणस्थानं ३ । अविरियसम्मो-  
अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानं, तत्कर्षं । सम्यक्त्वमस्ति मने नारिण ४ । देमविरदो  
य-विरताविरत इत्यर्थः, तत्कर्षं । प्यावरप्रवृत्तिप्रसन्ननिवृत्तिरित्यर्थः, एकरूपविरत-  
धायकगुणस्थानं ५ । विरया पमत्त इति कोट्यर्थः यत्र वे सत्यपि आ गमन्तात्  
पंचदशप्रमादसहित इत्यर्थे इति गुणस्थानं षष्ठं ६ । इयरो-अप्रमत्त पंचदशप्रमाद-  
रहितो महान् यत्रितिर्यर्थे इति सप्तगुणस्थानं ७ । अपुव्व-अपूर्वकचरणनामगुण-  
स्थानं ८ । अणियहि-अनिवृत्तिनामगुणस्थानं तस्मिन् गुणस्थाने व्याप्यवताडस्ति

उपशान्तक्षीणमोहे सयोगकेवलित्रिनोऽयोगी च ।

एतानि चतुर्दशगुणस्थानानि क्रमेण सिद्धाश्च ज्ञातव्याः ॥

मिच्छत्तस्मुदण्ण य जीवे संभवइ उदइओ भावो ।

तेण य मिच्छादिद्वीठाणं पावेइ सो तइया ॥ १२ ॥

मिथ्यात्वस्योदयेन च जीवे संभवति औदयिको भावः ।

तेन च मिथ्यादृष्टिस्थानं प्राप्नोति स तत्र ॥

मिच्छत्तरसपउत्तो जीवो विवरीयदंसणो होइ ।

ण सुणइ हियं' च अहियं पित्तज्जुरंजुओ जहा पुरिसो ॥ १३ ॥

मिथ्यात्वरसप्रयुक्तो जीवो विपरीतदर्शनो भवति ।

न जानाति हितं चाहितं पित्तज्वरयुक्तो यथा पुरुषः ॥

कडुवं' मण्णइ महुं महुं पि य तं भणेइ अइकइयं ।

तह मिच्छत्तपउत्तो उत्तमधम्मं ण रोचेइ ॥ १४ ॥

कटुकं मन्वते मधुरं मधुरमपि च तद्भजति कटुकं ।

तथा मिथ्यात्वप्रवृत्तः उत्तमधर्मं न रोचते ॥

जह कणयेंमज्जकोइवमहुंरामोहेण मोहिओ संनो ।

ण सुणइ कज्जाकज्जं मिच्छादिद्वी तहा जीवो ॥ १५ ॥

वर्ष १ । मुदमो व-मूढमनाश्चरायगुणस्थानं १० । उपशान्त-उपशान्तनाम-  
स्थानं ११ । क्षीणमोहो-क्षीणवशात्तनामगुणस्थानं १२ । सयोगकेवलित्रिणो  
समवसरत्तदिधिभूतिमदिनमसोविहेवत्तनामगुणस्थानं १३ । अयोगी व-समय-  
चादिधिभूतिदिवाकांमिहेवत्तनामगुणस्थानं १४ । इति चतुर्दशगुणस्थानानि ।  
१ हेवादेवं अ । २ पित्तज्जुरंजुओ अ । ३ वं अ । ४ वे अ । ५ अणुअ ।  
६ अ ।

यथा कनकमयकोद्रवमधुरमोहेन मोहितः सन् ।

न जानाति कार्यकार्यं मिथ्यादृष्टिस्तथा जीवः ॥

तं पि हु पंचपयारं वियरो एयंतविणयसंजुचं ।

संसयअण्णाणगयं विवरीओ होइ पुण वंभो' ॥ १६ ॥

तदपि हि पंचप्रकारं विपरीतं एकान्तविनयसंयुक्तं ।

संशयाज्ञानगतं विपरीतो भवति पुनः प्राज्ञणः ॥

एवं वदते प्राज्ञणः—

मण्णइ जलेण सुद्धिं तिसिं मंसेण पियरवगंस्स ।

पसुकंयवहेण सगं धम्मं गोजोणिफासेण ॥ १७ ॥

१ अस्या अधः पाठोऽयं वर्तते प्रथमपुस्तके—

सप्त मिथ्यात्वाः । विपरीतमिथ्यादृष्टिर्माज्ञया. १ । एकान्तबौद्धः २ । वैजि-  
कस्तापसः ३ । संशयभेताम्बरः ४ । अज्ञानगुह्यः ५ । जीव-अभावकार्वाकः ६ ।  
जीवोऽस्ति पुनर्जीवेन कृतं वस्तुष्वपराधिकं तात्पर्यं जीवो न भुंक्ते, परन्तु  
प्रकृतिस्तद्वृत्ते बान्धवः । द्वितीयपुस्तके तु उभयस्त्वानेऽयं पाठः—

तं पुण सत्तपयारं विवरीयं एयंत विणयसंजुचं ।

संसयअण्णाणगयं वण्णहं तद्वेण सगं य ॥ १ ॥

तत्पुनः सप्तप्रकारं विपरीतं एकान्तविनयसंयुक्तं ।

संशयाज्ञानगतं चार्वाकं तथैव सादयं य ॥

विपरीतो होइ पुण वंभो । सप्तधा मिथ्यात्वं तात्पर्यं । विपरीतमिथ्यादृष्टिर्बौद्धः,  
एकान्तमिथ्यादृष्टिर्बौद्धः, विनयादेव भोक्ष इति वैजिकमिथ्यादृष्टिस्तापसः,  
संशयमिथ्यादृष्टिः, भेताम्बरः, अज्ञानादेव भोक्ष इति अज्ञानमिथ्यादृष्टिर्गुह्यः,  
जीवाभावमिथ्यादृष्टिर्कार्वाकः । जीवोऽस्ति जीवेन कृतं वस्तुष्वपराधिकं तात्पर्यं  
जीवो न भुंक्ते परं तु प्रकृतितावत् तु भुंक्ते बान्धवः एवं मिथ्यादृष्टिचारी सादयः । इति  
सप्त मिथ्यात्वं । तत्र तावद्विपरीतमिथ्यादृष्टिर्बौद्धाया अभ्यते, तात्पर्यं ।—

१ वगणयं य ॥ ३ पद्यतां वधेनेत्यर्थः ।



मन्त्रो जप्तेन शुद्धिं तूष्णि मन्त्रेण विनृत्तयेत् ।

पञ्चतन्त्रेण सर्वं धर्मं शेषोनिस्पर्शनेन ॥

उद् जलश्लाघणपठना जीर्णं मुग्धेऽ गिरयपारेण ।

तो तस्य चमिय जलमग मन्त्रे पात्रेति दिश्लोयं ॥१८॥

परि ज्ञानानप्रवृत्ता जीर्णं मुग्धन्ते निवर्तयेत् ।

तदि तत्र मन्त्रो जलमगः सर्वे प्राप्नुयन्ति दिव्योक्तं ॥

जं कर्मं दिदृक्षुर्जीवन्ममेहि निविदजोत्पण ।

नै जलश्लाघणमिति कद् कद् नित्यश्लाघणेन ॥ १९ ॥

यत्कर्मं इदं देवी जीवन्ममेहि निविदजोत्पण ।

तत्र श्लाघणमिति कद् कद् नित्यश्लाघणेन ॥

इति श्रीमहादेवी—

आत्मश्लाघणमिति देवी देवी आत्मश्लाघणमिति ।

उक्तमिति देवी देवी आत्मश्लाघणमिति ॥ १ ॥

मन्त्रो देवी देवी देवी देवी देवी देवी देवी देवी ।

को इह जप्तेन मुग्धं तद्वा श्लाघणेन न मुग्धी ॥ २० ॥

मन्त्रो देवी देवी देवी देवी देवी देवी देवी देवी ।

को इह जप्तेन मुग्धं तद्वा श्लाघणेन न मुग्धी ॥

इति श्री—

आत्मश्लाघणमिति देवी देवी आत्मश्लाघणमिति ।

उक्तमिति देवी देवी आत्मश्लाघणमिति ॥ १ ॥

मन्त्रो देवी देवी देवी देवी देवी देवी देवी देवी ।

को इह जप्तेन मुग्धं तद्वा श्लाघणेन न मुग्धी ॥

मन्त्रो देवी देवी देवी देवी देवी देवी देवी देवी ।

को इह जप्तेन मुग्धं तद्वा श्लाघणेन न मुग्धी ॥

अरण्ये निर्जले देशेऽनुचित्वाद्वाह्यपो मृतः ।  
 येदयेदाद्गतत्यक्तः कां गतिं स गमिष्यति ॥ २ ॥  
 यद्यसौ नरकं याति घेदाः सर्वे निरर्थकाः ।  
 अथ स्वर्गमयाप्नोति जलजीव निरर्थकः ॥ ३ ॥

मुञ्चद् जीवो तवमा इन्दियरलणिग्गहेण परमेण ।  
 रयणत्तयसंजुक्तो जह कण्यं अग्निजोएण ॥ २१ ॥  
 शुद्धपति जीवस्तपसा इन्द्रियखडनिग्रहेन परमेण ।  
 गनत्रयसंयुक्तो यथा कनकं अग्नियोगेन ॥

ण्हाणाओ चिय मुद्धि जीवा इच्छन्ति जे जडत्वेण ।  
 भमिहिंति ते वगथा चउरासीजोणिलवसाई ॥ २२ ॥  
 ज्ञानादेव मुद्धि जीवा इच्छन्ति जे जडत्वेन ।  
 भमिष्यन्ति ते वगकाधनुरहीतियोनिष्ठक्षाणि ॥

जे तियरमणासत्ता विमयपमत्ता कमायरसविसिया ।  
 ण्हंता वि ते ण मुद्धा गिहवावारेसु बहंता ॥ २३ ॥

कामरागमदोष्मताः स्त्रीणां ये वशावर्तिनः ।  
 न ते जलेन शुद्धयन्ति स्नात्वा तीर्थगतैरपि ॥ १ ॥  
 शृङ्गातोयेन सर्वेण मृदारैः पर्वतोपमैः ।  
 आन्दैरप्यचरन् शीघ्रं भावबुद्धो न शुद्धयति ॥ २ ॥  
 मनो विमुद्ध पुरवत्य तीर्थं पाप्मां यमभेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।  
 घृतानि तीर्थानि शरीरजानि मोक्षस्य मार्गं प्रतिदर्शयन्ति ॥ ३ ॥

इति गीतायां श्लोकाः ।

ये स्त्रीरमणामक्ता विषयप्रमत्ता कथायमवगिनाः ।

स्नान्त अपि ते न शुद्धा गृहस्थापागेव वर्तमानाः ॥

सर्व्वस्सेण ण तित्ता मायापउग य जायणामीन्ना ।

किं कुणइ तेसु ण्हाणं अन्मंतरगहियपाचाणं ॥ २४ ॥

सर्व्ववस्तुना ॥ तृणा मायाप्रचुराध याचनाशीलाः ।

किं फगेति तेषां स्नानमम्यन्नगृहीतपापानां ॥

वयणियमसीलजुत्ता णिहयकसाया दयावग जइणो ।

ण्हाणरहिया वि पुरिसा धम्मंचारी मया मुद्धा ॥ २५ ॥

व्रतनियमशीलयुक्ता निहतकथाया दयावग यतयः ।

स्नानरहिता अपि पुरुषा ब्रह्मवाग्निः सदा मुद्धाः ॥

ज्ञानदूषणम् ।

मंसेण पियरंवग्गो पीणिज्जइ एरिसी मुई जेसिं ।

तेहिमसेसं गोत्तं हणिऊण य भविस्खयं णियमा ॥ २६ ॥

मांसेन पितृवर्गः तृष्यते ईदृशी श्रुतिर्येषा ।

सैरशेषं गोत्रं हत्वा च भक्षित नियमात् ॥

जे कयकम्मपउत्ता मुयणा हिडंति चउगईघोरे ।

संसारे गिण्हंता संबंधा सयलजीवेहिं ॥ २७ ॥

ये कृतकर्मप्रयुक्ताः स्वजना हिण्डन्ते चतुर्गतिघोरे ।

संसारे गृह्णन्तः सम्बन्धान् सकलजीवैः ॥

तिरियगई उचयण्णा संपणा मच्छपाइ ले जम्मं ।

हणिउण्ण अवरंपक्खे तेसिं मंसेहिं विविहेहिं ॥ २८ ॥

तिर्यग्गतावुत्पन्नाः सम्प्राप्ता मत्स्यादि ये जन्म ।

हत्वा अपरपक्षे तेषां मासैरिबिधैः ॥

पुणइ सराई कोई पियरे संसारतारणत्थेण ।

सो तेसिं मंसानि य तेसिं णामेण खावेइ ॥ २९ ॥

परोति धाद्व कश्चित्पितुः संसारतारणायेन ।

■ तेषां मांसानि च तेषां नाम्ना ग्राहयति ॥

धंकेण जइ मत्ताओ हरिणो हणिउण्ण तण्णिमिंसेण ।

पइउण्ण मोत्तियाणं दिण्णो खट्ठो सयं चेव ॥ ३० ॥

धकेन यथा स्वतातो हरिणो हत्वा तन्निमित्तेन ।

प्रीणयित्वा धोत्रियेभ्यो दत्तः भक्षितः स्वयं चैव ॥

मंसामिणो ण पत्तं मंसं ण हु होइ उत्तमं दारणं ।

कइ सो तिप्पइ पियरो परमुहगमियाइं भुंजंतो ॥ ३१ ॥

मांसानिनां न पात्र मांसं न हि भवति उत्तमं दानं ।

कथं ■ तृप्यति पिता परमुत्प्रसितानि भुजानः ॥

अण्णम्मिं भुंजमाणे अण्णो जइ धाइ एत्थ पक्खरं ।

सो सम्मम्मिं वसंता पियरा तिचिं खु पावंति ॥ ३२ ॥

अन्यस्मिन् भुजानेऽन्यो यदि तृप्यन्त्यन प्रपश्ये ।

ततः स्वर्गे वसन्तः पितरस्तृप्तिं खलु प्राप्नुवन्ति ॥

जइ पुत्तदिण्णदाणे पियरा तिप्पंति चउमइ गया वि ।

तो जण्होमण्हणं जवत्तववेयाइं अकियत्त्या ॥ ३३ ॥

यदि पुत्रदत्तदानेन पितरः तृप्यन्ति चतुर्गतिं गता अपि ।

तर्हि यज्ञहोमस्नानं जपतपोवेदादयः अकृतार्थाः ॥

कयपापो णरय गओ णिज्जइ पुत्तेण पियरु सग्गम्मि ।

पिंडं दाउण्ण फुडं ण्हाइ य तित्थाइं भणिऊण ॥ ३४ ॥

कृतपापो नरकं गतो नीयते पुत्रेण पिता स्वर्गं ।

पिंडं दत्त्वा स्फुटं स्नाति च तीर्थानि भणित्वा ॥

जइ एयं तो पियरो सग्गं पत्तो वि जाइ णिरयम्मि ।

पुत्तेण कए दोसे वंभइघाइमरुएण ॥ ३५ ॥

यद्येवं तर्हि पिता स्वर्गं प्राप्नोति जायते नरकं ।

पुत्रेण कृतेन दोषेण मत्तहत्यादिगुरुकेन ॥

अण्णकए गुणदोसे अण्णो जइ जाइ सग्गणरयम्मि ।

जो कुणइ पुण्णपायं तम्म फलं मो ॥ वेण्ण ॥ ३६ ॥

अन्यकृतान्यां गुणदोषान्यामन्यो यदि याति स्वर्गनरकं ।

यः करोति पुण्यपार्षं तस्य फलं न वेदयति ॥

ण इ वेंयइ तम्म फलं कत्ता पुरिमो इ पुण्णपावम्म ।

जइ तो कह ने मिद्धा भूयेंगामा इ चत्तारि ॥ ३७ ॥

न हि वेदयति तस्य फलं कर्ता पुण्यं हि पुण्यपापम् ।

यदि तर्हि कथं ते सिद्धा भूतप्राप्ता हि चत्वारः ॥

जो कुण्डं पुष्पपात्रं मो चिय भुंजेइ णत्थि संदेहो ।

मगं या णरयं वा अप्पाणो णेइ अप्पाणं ॥ ३८ ॥

यः करोति पुष्पपात्रं स एव भुनक्ति नास्ति सन्देहः ।

स्वर्गं वा नरकं वा आत्मना नयति आत्मानं ॥

एवं भणंति वेइं जलधलगिरिमिहरअग्निबुहरेसु ।

चउविहभूयगामे वमइ हरी णत्थि संदेहो ॥ ३९ ॥

एवं भणन्ति केचिज्जलस्यलगिरिशिरसाग्निबुहरेषु ।

चतुर्विधभूतग्रामे वसन्ति हरिर्नास्ति सन्देहः ॥

उक्तं च—

जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके ।

ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥ १ ॥

मध्वगओ जइ विण्ह णिवसइ देहमिह सव्वदेहीणं ।

तो रुखाइहण्ण सो णिहओ होइ णियमेण ॥ ४० ॥

सर्वगतो यदि विष्णुः निवसति देहे सर्वदेहिनां ।

तर्हि वृक्षादिहतेन ॥ निहतो भवति नियमेन ॥

उक्तं च—

मरुत्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ धामनः ।

रामो रामश्च कृष्णश्च बुधः कल्की च ते दश ॥ १ ॥

मरुत्यः कूर्मो वराहश्च विष्णुः सम्पूज्य भक्तिः ।

मरुत्यादीनां कथं मांसं भक्षितुं कल्प्यते कृपेः ॥ २ ॥



हत्वा प्रौढच्छागं गच्छति स्वर्गं एष वेदार्थः ।

तर्हि सूनकाराः सर्वे स्वर्गं नियमेन गच्छन्ति ॥

सव्यगओ जइ विण्ह छागसरीरम्मि किं ण सो अत्थि ।

जं णित्ताणो वदिओ चडप्फडंतो णिरुस्सासो ॥ ४५ ॥

सर्वगतो यदि विष्णुः छागादिशरीरे किं न सोऽस्ति ।

यद् निज्राणः हतः सत्यमानो निःश्वासः ॥

अण्णं इयं णिरुणिज्जइ सत्थे हरिबंभरुदभत्ताण ।

सच्चैसु जीवरासिसु अंगे देवा हु णिवसंति ॥ ४६ ॥

अन्यदिति निश्चयते शास्त्रे हरिप्रसन्नरुदभक्तानां ।

सर्वेषां जीवराशिनां अंगे देवा हि निवसन्ति ॥

उक्तं च—

नाभिस्थाने यसेद्ग्रन्था विष्णुः कण्ठे समाधितः ।

तालुमध्ये स्थितो रुद्रो ललाटे च महेदयरः ॥ १ ॥

नासाम्रे च दायां विद्याक्षस्यांते च परोपरः ।

परात्परतरं नास्ति इति शास्त्रस्य निश्चयः ॥ २ ॥

अग्रे चैवं वदन्वेदे यज्ञार्थं यो निहम्यते ।

तस्य मांसाग्निः सोऽपि सर्वे यान्ति सुराख्यं ॥ ३ ॥

तर्हि न क्रियते यज्ञः शास्त्रक्षैरतस्त्व निश्चयात् ।

पुत्रवध्यादिभिः सर्वे भगवदग्निं दिवं यथा ॥ ४ ॥

माहं स्वर्गफलपभोगनृषिनो नाम्यर्थितस्त्वं मया

समस्तुष्टनृणभक्षणेन सततं हंतुं न युक्तं तव ।

इयं यान्ति यदि त्वया विनिहता यत्ने भुवं प्राविनो

यत् किं न करोषि मानूपितृभिः पुत्रैस्तथा नाम्यर्थैः ॥ ५ ॥

एवं द्वे पद्ये संसृतभावसंग्रहस्य । अमर्यं चैकं यज्ञरितलक्षणायाः ।

१ ५ अ । २ शब्दे अ ।



सज्ज्यामु जीवरामिगु ण्ण णिवसंति पंचटाण्णु ।

जइ तो किं पमुवइणे ण मारिया होंनि ते मज्जे ॥ ४७ ॥

सर्वांमु जीवराशिगु एते निवसन्ति पंचम्यानेषु ।

यदि तर्हि किं पशुवधेन न मारिता भवन्ति ते मर्जे ॥

देवे यहिऊण गुणाः लब्धमहि जइ इत्थं उत्तमा केई ।

तु रुद्धवंदनया अवरे पारद्विया मज्जे ॥ ४८ ॥

देवान् वदन्त्या गुणान् लभन्ते यद्यत्रोत्तमाः केचिन् ।

तर्हि वृक्षवन्दनयाः अपरे पार्विकाः सर्वे ॥

तुंक्तं च—

न हि हिंसाकृते धर्मः सारम्भे नास्ति मोक्षता ।

स्त्रीसम्पर्के कुतः शौचं मांसमग्ने कुतो दया ॥ १ ॥

तिलसर्पपमात्रं वा यो मांसं भक्षयेद्द्विजः ।

स नरकाग्नौ निवर्तेत यावच्चन्द्रदिशाकरो ॥ २ ॥

आकाशगामिनो विप्राः पतिता मांसभक्षणात् ।

विप्राणां पतनं दृष्ट्वा तस्मान्मांसं न भक्षयेत् ॥ ३ ॥

आगोपालादि यस्मिन् धान्य मांसं पृथक् पृथक् ॥

मांसमानय इत्युक्ते न कश्चिद्धान्यमानयेत् ॥ ४ ॥

स्थावरं जंगमाश्चैव द्विधा ज्ञेयाः प्रकीर्तिताः ।

जंगमेषु भवेन्मांसं फलं तु स्थावरेषु च ॥ ५ ॥

मांसं तु इन्द्रियं पूर्णं सप्तधातुसमन्वितं ।

यो नरो भक्षते मांसं स भ्रमेत्सागरान्तकम् ॥ ६ ॥

मांसदुष्टं ।

वंदइ गोजोणि सया तुंडं परिहरइ मणिवि अपचितं ।

विवरीयाभिणिवेसो एसो फुडु होइ मिच्छो वि ॥ ४९ ॥

वन्दते गोयोनं सदा तुष्टं परिहरति भणित्वाऽपवित्रं ।  
 विपरीताभिनिवेश एव स्फुटं भवति मिथ्यात्वमपि ॥  
 पापेण तिरियज्जम्भे उववण्णा तिणयरी पम् गार्वी ।  
 अविवेया विद्वासी सा कद् देवत्तणं पत्ता ॥ ५० ॥  
 पापेन तिर्यग्ज्जम्भनि उत्पन्ना तुणचारिणी पशुः मौः ।  
 अधिवेकिनी विष्टाशिनी सा कथं देवस्य प्राप्ता ॥  
 अहया एसो धम्मो विट्ठं भवखंतया वि णमणीया ।  
 तो किं गज्झद्द दुज्झद्द वाडिज्जद्द दीहदंडेण ॥ ५१ ॥

उक्तं च—

न हि हिंसाकृते धर्मेः सारम्भे नारिण मोक्षता ।  
 स्त्रीसंगर्के कुतः शौचं मांसभक्षे कुतो दया ॥ १ ॥  
 संस्कृतां चोपहृतां च वा ( स्त्र्या ) दक्षमेव घातकः ।  
 वपदेहाऽनुमंता च वदेते समभातिनः ॥ २ ॥  
 मांसाद्यनातिशये मूर्खे मेव निहने मुद्रया ।  
 निदंयमनसि न धर्मो धर्माविहीने च मेव मुस्तिता स्वप्न ॥ ३ ॥  
 तिलमर्चयमात्रं तु यो मांसं भक्षयेन्द्भिजः ।  
 स नरकात् निवर्तते वाक्छन्दश्चिकीर्षी ॥ ४ ॥  
 भ्रातृशतानामिषो विषाः पतिता मोमभक्षणात् ।  
 विप्राणां पतनं दृष्ट्वा तस्मान्मोमं न भक्षयेत् ॥ ५ ॥  
 न कर्दमे भवेन्मोमं न काष्ठेषु लुण्ठेषु च ।  
 जीवशरीराद्भवेन्मोमं तस्मान्मोमं न भक्षयेत् ॥ ६ ॥  
 सर्वं शुक्लं भवेद्भृशं विष्णुर्मांसं प्रवर्तते ।  
 हृदयोऽप्यस्ति संघाते तस्मान्मोमं न भक्षयेत् ॥ ७ ॥

अथ वाक्यमर्थ—

वदन्मार्घं तत्तत्सर्वं जीवशरीरमेव स्वप्नः । एवञ्चन्दो निर्दोषार्थः । वदन्मो-  
 वशरीरे तत्सर्वं मांसं भवतीति नियमाभावात्, कुतः वृक्षादी वदन्निवासात् । वृक्षा-  
 दीनां जीवशरीरस्ये चाप्यपि मांसाभावात् ।



गुराही लोयस्मग्गे वरराणद् एम् देवि पयवरा ।

मग्गे देवा अग्गे इमिण्णं पियसंति पियमेण ॥ ५२ ॥

गुराभिः लोकस्याग्गे कप्पते एषा देवी प्रपञ्चा ।

सर्वे देवा अग्गे अस्या निवसन्ति नियमेन ॥

पुणरपि गोमवजण्णे मंसं भवसंति मा वि मारिता ।

तस्सेव वहेणं फुटं ण मारिया होंति ते देवा ॥ ५३ ॥

पुनरपि गोमोतवपहे मांसं भक्षयन्ति तामपि मारयित्वा ।

तस्या एव वधेन स्तुटं न मारिता भवन्ति ते देवाः ॥

मोत्तिय गम्बुज्जुदा मंसं भवसंति रमंदि महिलाओ ।

अपविताइं अमुद्धा देहच्छिदाइं वंदंति ॥ ५४ ॥

धोत्रिया गर्भोत्कटा मांसं भक्षयन्ति रमन्ते महिलाः ।

अपवित्राणि अनुद्धानि देहच्छिद्राणि वन्दन्ते ॥

सो मोत्तिओ भणिज्जद् णारीकडिंसोत्त वज्जिओ जेण ।

जो ॥ रमणासत्तो ण मोत्तियो मो जडो होई ॥ ५५ ॥

त धोत्रियो भक्ष्यते नारीकटिस्तोतो वज्रितं येन ।

यस्तु रमणासक्तो त धोत्रियः स जडो भवति ॥

अहवा पसिद्धवणं मोत्तं णारीण सेवण जेण ।

मुत्तप्पवहणदारं सोत्तियओ नेण सो उत्तो ॥ ५६ ॥

अथवा प्रसिद्धवचनं स्तोतो नारीणां सेवने येन ।

मूर्तप्रवाहद्वारं धोत्रियः तेन स उक्तः ॥

इय विवरीयं उत्तं मिच्छत्तं पावकारणं विममं ।

तेण पउत्तो जीवो णरयगई जाइ पियमेण ॥ ५७ ॥

१ इमाइ स । सप्तम्यामुभयमेव साधु । २ बहमेण स, बहएण क । ३ रमंति । ४ गोमोनी । ५ सोत्तु छ, सुत्तु. क । कटिस्तोतः-सोनिच्छिदै ।

इति विपरीतं उक्तं मिथ्यात्वं पापकारणं विषमं ।

तेन प्रयुक्तो जीवो नरकगतिं याति नियमेन ॥

अवि महद् तन्व दुःखं मक्करपदपद्महणस्यविवरेषु ।

कह मो मगं पावइ णिहय पम् सुद्वपलगामो ॥ ५८ ॥

अपि सहते तत्र दुःखं शर्कराप्रमुखनरकविवरेषु ।

कथं स स्वर्गं प्राप्नोति निहत्य पशून् खादितपडप्रासः ॥

जइ कहवं तस्य णिग्गइ उप्पज्जइ पुणु वि तिरियजोणीसु ।

मारियइ सोत्तिएहिं णित्ताणो पुण वि जर्णम्मि ॥ ५९ ॥

यदि कथमपि ततो निर्गच्छति उत्पद्यते पुनरपि तिर्यग्योनिषु ।

मार्यते श्रोत्रियैः निम्नाणः पुनरपि यज्ञे ॥

णियभासाए जंपइ मेमंतो कहइ आसि मे रइयं ।

एवं धेयविहाणं संपत्तो दुग्गइ तेण ॥ ६० ॥

निजभाषायां जल्पति मे मे कथयति आर्सात् मया रचितं ।

एवं वेदविधानेन संप्राप्ता दुर्गतिः तेन ॥

इय विलवंतो हम्मइ गलयं मुहनामरंघ रंघित्ता ।

भक्खियइ सोत्तियेहिं विहिणा बहुवेयवंतेहिं ॥ ६१ ॥

१ प्रमुखशब्देन रत्नप्रभावागुक्ताप्रभादयो यश्चन्द्रः । २ क-न-पुस्तकद्वयेऽपि इति पाठः । ३ रक्षारहितः । ४ अ ग । ५ छायादीनां भाषा । ६ “मि मह ममाद् मए मे णिटा इत्यनेन अस्यच्छन्दस्य स्थाने टावचनेन सह मे इत्यादेशः । ७ अस्मादग्रे ईदृक्पाठो निश्चायः ख-पुष्पके । विश्वीयमिच्छतसम्मतं । अथ दर्शनसाराङ्गाया-युग्मं—

सुखपनिग्गे उक्कमो खीरकदंबुत्ति मुद्वमम्मत्तो ।

सीसो तस्य य दुहो पुणो वि य पप्पमो पक्कओ ॥ १ ॥

विषयीयमयं किञ्चा विज्ञामियं सत्त्वर्गजमं श्लोए ।

तत्तो पत्ता मग्गे सत्तमगरयं महावीरं ॥ २ ॥

इति विलपन् हन्यते मलमुग्ननासिकारन्ध्रं रुद्ध्वा ।

भक्ष्यते धोत्रियैः विधिना बहुवेदवाङ्मि ॥

इयं विपरीयं कदियं मिच्छत्तं पापकारणं विममं ।

जो परिहरद् मणुष्यो मो पायद् उत्तमं ठाणं ॥ ६२ ॥

इति विपरीतं कदियं मिच्छत्तं पापकारणं विममं ।

यं परिहरति मनुष्यः स प्राप्नोति उत्तमं स्थानं ॥

इति विपरीतमिच्छत्तं प्रथमं ।

एवंतमिच्छदिदीं पुद्दो एवंतणयममालंयी ।

एवंतं राणियत्तं मण्णद् जं लोयमज्झम्मि ॥ ६३ ॥

एकान्तमिच्छादिर्मुद्दं एकान्तनयममालम्बी ।

एकान्तेन क्षणिकत्वं मन्यते बहुलकमध्ये ॥

जह् राणियत्तो जीवो तरिहि भवे कस्म कम्मसंपंधो ।

संपंधं विणा ण पडद् देहग्गहणं पुणो तस्म ॥ ६४ ॥

यदि क्षणिको जीवस्तीरि भवेत् कस्य कर्मसम्बन्धः ।

सम्बन्धं विना न घटते देहग्रहणे पुनः तस्य ॥

तवयग्गं ययधरणं पीवरग्गहणं च सीममुंडणयं ।

मत्तहंठियामु मिक्खया राणियत्ते णेव संभवद् ॥ ६५ ॥

मुपगततीर्थे जातः क्षीरकश्च इति शुद्धसम्बन्धः ।

विपरितरय च ॥ ११ ॥ पुत्रोऽपि च पर्वतो वक्रः ॥

विपरीतमनं हृत्वा विनाशिनं सर्वक्षयं लोके ।

ततः प्राप्ताः सर्वे सप्तमनस्कं महाघोरं ॥

१ शरय इयाने विपरीयमिच्छते इति ख-पुस्तके, विपरीयमिच्छत्तं सम्मतं इति ख-पुस्तके-पाठः । २ सत्तदपडियामु य ।



निष्ठाणिषं द्रव्यं मयं इह अति लोभमज्जमि ।

पञ्चाण्ण अणिषं णिषं फुड्ढ होइ दब्बेण ॥ ७१ ॥

निगमनिन्ने द्रव्यं सर्वमिहास्ति लोकमप्ये ।

एवाणिगानिधं नि ये एकुट्टं भवति दब्बेण ॥

इय एयंतं कहियं मिच्छत्तं मरुत्तपावसंजणयं ।

एतो उइदं योच्छं वेणइयं णाम मिच्छत्तं ॥ ७२ ॥

इति एकांते कथिते मिरपायं गुरुकपापसंजनकं ।

इत ऊर्ध्वं वक्ष्ये वैनयिकं नाम भिव्वायं ॥

इत्येधेनमिध्यास्य द्वितीयं ।

१ अस्मादये पूर्वदिक् चण्डो निष्ठावः स-सुरादेः । अय-इतिनसाराज्ञाया-पंचकं-

मिरिषामनइतिथे मरुत्तीरे वत्तामनवरस्ये ।

विदिषामवत्स सीसो महाधुनो बुद्धकिंतिमुचि ॥ १ ॥

तिमिपूणासनेन हि अगदिचपवज्जभो परिभट्टो ।

इसंवरं धरिणा वचद्विचं तेन एयंतं ॥ २ ॥

संसम्य नाति जीवो अह फले बुद्धइदिषमकरण ।

तदा तं वंछितो त भवत्ततो न वाविट्टो ॥ ३ ॥

मज्जं न वज्जनिज्जं इवइसं अह जले तदा एयं ।

इय लोणं धोसिणा वचद्विचं सध्वमावज्जं ॥ ४ ॥

अण्णो करेइ कम्म अण्णो तं भुंजईइ मियंतं ।

वरिकप्पिज्ज नूनं वमिक्किञ्चा निरवमुचवण्णो ॥ ५ ॥

धीपार्थनावतीर्थे मरुत्तीरे वत्तामनवरस्ये ।

विदिताववत्स सिंसो महाधुनो बुद्धकीर्तिमुचिः ।

तिमिपूणासनेन हि अगृहीतप्रमथः परिभटः ।

रथाग्नये भूत्वा प्रवर्धितं तेनेधन्तं ।

मांसस्य नाति जीवो यवा फले बुद्धइदिषाकराणु ।

तस्मात्तादृक्किञ्च न तद्वत्सुवनं न वापिष्ठः



वेणइयमिच्छदिही इवइ फुडं तावमो इ अण्णार्णी ।  
णिग्गुणजणम्मि विणओ पउंजमाणो इ गयविवेओ ॥७३॥

वैनयिकमिध्यादृष्टिः भवति स्पृष्टे तापमो ह्यज्ञानो ।

निर्गुणजने विनयं प्रयुज्जमानो हि गतविवेकः ॥

विणयादो इह मोक्खं किज्जइ पुणु तेणं गद्दहाईणं ।  
अमुणियगुणागुणेण य विणयं मिच्छत्तणडियेण ॥ ७४ ॥

विनयत इह मोक्षः क्रियते पुनस्तेन गर्दमादीनां ।

अमुनितगुणागुणेन च विनयः मिध्यात्वनटेन ॥

जक्खयणायाईणं दुग्गाखंधाइअण्णदेवाणं ।  
जो णवइ धम्महेउं जो वि य हेउं च सो मिच्छो ॥ ७५ ॥

यक्षनागादीन् दुर्गास्फन्धाद्यन्यदेवान् ।

यो नमति धर्महेतोः योऽपि च हेतुश्च स मिध्यात्वं ॥

पुत्तत्थमाउसत्थं कुणइ जणो देविचंडियाविणयं ।  
मारइ छेलयसत्थं पुज्जइ कुलाई मज्जेण ॥ ७६ ॥

मयं न वर्जनीयं द्रव्यं यथा जलं तथैतत् ।

इति लोके घोषयित्वा प्रवर्तिनं सर्वसाधकं

अन्यं करोति कर्म अन्यः भुज्जीति मिद्वान्तं ।

परिकल्प्य नूनं वशीकृत्य नरकमुपपन्नः

२ एयं तमिच्छतं पुस्तके पाठः ।

१ होइ ख । २ मूदेन । ३ योग्यायोग्यकमारहे इत्यर्थः । ४ पुम्हइ कुलाइ

मज्जेण ख । पूयते कौलानि मयेन । कौलानि कुलदेवानित्यर्थः ।

पुत्रार्थमायुष्यार्थं करोति जनो देवीचाण्डिकाविनय ।

मारयति सागमार्थं पूज्यते कुलानि मयेन ॥

न पि होइ तन्य पुण्यं किञ्जतिं शिंकिहृद्गन्भाया ।

न य पुत्राहं दाउं सकल ते सतिहीना जे' ॥ ७७ ॥

नापि भवति तत्र पुण्यं कुर्वन्ति निहृदहृदस्वभावात् ।

न च पुत्रादि दातुं शक्यान्ते शक्तिहीना ये ॥

जइ ते होति समत्था कन्य गया पंडवाइया पुरिसा ।

कत्य गया घररेमा हलहरणाग्यणा कत्य ॥ ७८ ॥

यदि ते भवन्ति समर्थाः कुत्र गता. पाण्डवायाः पुरुषाः ।

कुत्र गताध्वमेता हलधरनारायणाः कुत्र ॥

जइ देवय देइ सुयं तो किं स्तेणं सेविया मउरी ।

दिप्यं घरिममहस्मं पुत्तत्थं तारयमण ॥ ७९ ॥

यदि देवो ददाति सुतं तर्हि किं स्तेणेन सेविता गौरी ।

दिप्यं धर्ममहस्त्रं पुत्रार्थं तारकभयेन ॥

तस्मा मयमेव मुञ्चो हवेइ मिहुणाण रइपउत्ताणं ।

अण्णाण मूढलोओ वाहिअइ धूत्तमणुएहिं ॥ ८० ॥

तस्मात्स्वयमेव मुक्तो भवेत् मिथुनानां रतिप्रवृत्तानां ।

अज्ञानां मूढलोको बाध्यते धूर्तमनुष्यैः ॥

संते आउसि जीवइ मरणं गलियम्मि णत्थि संदेहो ।

ण व रचएइ फो वि तर्हि संते सोसेइ ण इ कोई ॥ ८१ ॥

सति आयुषि जीवति मरणं गलिते नास्ति सन्देहः ।

न च रक्षति कोऽपि तस्मान् सत् शोषयति न हि कथित् ॥

जइ सज्जदेवयाओ मणुयं रक्खंति पुजियाओ य ।  
तो किं सो दहवयणो ण रक्खिओ विज्जसहस्सेण ॥ ८२ ॥

यदि सर्वदेवता मनुजं रक्षयन्ति पूजिताश्च ।  
तर्हि किं स दशवदनो न रक्षितो विद्यामदस्त्रेण ॥

इय गाउं परमप्पा अट्टारसदोसवज्जिओ देवो ।  
पणविज्जइ भत्तीए जइ लज्जइ इच्छियं वत्थुं ॥ ८३ ॥

इति ज्ञात्वा परमात्मानं अष्टादशदोषवर्जितां देवः ।  
प्रणम्यते भक्त्या येन उच्यते इच्छितं वस्तु ॥

वेणइयं मिच्छत्तं कहियं भव्वाण वज्जणहं तु ।  
एत्तो उहहं वोच्छं मिच्छत्तं संसय णाम ॥ ८४ ॥

यैमपि मिथ्यात्वं कथितं भव्यानां वर्जनार्थं तु ।  
इत ऊर्ध्वं वक्ष्ये मिथ्यात्वं संशयं नाम ॥

इति त्रैलोक्यमिथ्यात्वं नृनोर्यं ।

१ आओ हा । २ मणुय न । ३ हि न । ४ अस्माद्वेदयं निश्चयः पाठः  
क्ष-पुराणे । दर्शनगारगाथा —

सत्त्वेषु च त्रिष्वेषु च वेणइयाण मणुभूतो भव्ति ।  
मज्झा मुद्धिद्वर्माणा निहिणो जग्गा च केहं च ॥ १ ॥  
दुटे गुणवत्ते वि च समया भत्ती च सत्त्वदेवार्थं ।  
जग्गं दंहुव्व जगे पविट्ठिये तेहि मूदेहि ॥ २ ॥  
सत्त्वेषु च त्रिष्वेषु च वेणइयाणा मणुभूतोऽस्मि ।  
मज्झा मुद्धिद्वर्माणा निहिणो जग्गा केहि ॥  
दुटे गुणवत्ति भवि च समयो भवि मज्जेद्वर्माणा ।  
जग्गं दंहुव्व जगे पविट्ठिये तेमूदेहि ॥

अर्थः “ सत्त्वा प्रकृत्यान्तरे श्रीकृष्ण मत्तान्तरमाह ” इति त्रिमित्वा श्लोकर्यं  
त्रिमित्वात्, ते च अष्टादशप्रत्ये ११९-१००-१०१ वर्तमाने भवो च त्रिमिता-  
न्तर । तत्रैव त्रिमित्वात् । अथाने, अत्र श्लोकर्यं एते श्लोकाः ।

संनयदिच्छादिही गियमा मो होइ जन्व मग्गयो ।

णिग्गथो वा मिज्झइ कंचलगहणेण सेरइओ ॥ ८५ ॥

संनयगिय्यादिनिगमात् स भवति यत्र नय-य ।

निर्गन्धो वा मिदयनि कंचलगहणेन सेतरइ ॥

दंढं दुद्धिय पेले अण्णं सज्जं पि धम्मउचयरणं ।

मण्णइ मोररणिमिचं गंधे लुट्ठो ममायइ ॥ ८६ ॥

दण्डं दुग्धिकं चेत अन्यमर्धमपि धर्मोत्तरणं ।

मन्यते मोक्षनिमित्तं मन्ये दुग्धं समाचरति ॥

इत्थीगिहत्थयग्गे तुम्मि भवे चेव अत्थि गिय्याणं ।

कवलाहारं च जिणे निदा तण्हा य संसइओ ॥ ८७ ॥

खीगूरस्थवर्गे तस्मिन् भवे चैव अस्ति मिश्रणं ।

कवलाहारं च जिने निदा तृष्णा च संशयिनः ॥

जइ मग्गथो सुवरं तित्थयरो किं मुणइ गियरज्जं ।

रयणनिहाणेहि ममं किं गियमइ निज्जणे रण्णे ॥ ८८ ॥

यदि सप्रन्थो मोक्षः, तीर्थकरः किं मुचति निवराज्ये ।

रत्ननिधानैः ममं, किं निवसति निर्बनेऽरण्ये ॥

रयणनिहाणं छंडइ सो किं गिण्हेइ कंचली खंडं ।

दुद्धिय दंढं य पडं गिहत्थजोगं पि जं किं पि ॥ ८९ ॥

रत्ननिधाने स्थजनि स किं गृह्णाति कम्बजखण्ड ।

दुग्धिकं दण्डं य पटं गृहस्थयोग्यमपि यत् किमपि ॥

गेहे गेहे भिक्खं पत्तं गहिउण जाइए किं मो ।

किं तस्स रयणविही धरे धरे गिवडिया तत्थ ॥ ९० ॥

गृहे गृहे भिक्षां पात्रं गृहीत्वा याचते किं सः ।

किं तस्य रत्नवृष्टिः गृहे गृहे निपतिता तत्र ॥

ण ह्य एवं जं उत्तं संशयमिच्छत्तरसियचित्तेण ।

णिगंगंयमोक्खमग्गो किंचणग्रहिरंतणचएण ॥ ९१ ॥

न हि एवं यदुक्तं संशयमिध्यात्वरसिकचित्तेन ।

निर्ग्रन्थमोक्षमार्गः किंचनवाद्यान्तस्यक्तेन ॥

जइ तंप्पइ उग्गतवं मासे मासे च पारणं कुणइ ।

तइ वि ण सिज्झइ इत्थी कुच्छियलिंगस्स दोसेण ॥ ९२ ॥

यदि तत्पते उप्रतपः मासे मासे च पारणं करोति ।

तथापि न सिद्धयति स्त्री कुत्सितलिंगस्य दोषेण ॥

मायापमायपउरा पडिमासं तेमु होइ पक्खलणं ।

णिथं जोणिस्साओ दारडुं णत्थि चित्तस्स ॥ ९३ ॥

मायाप्रमादप्रचुराः प्रतिमासं तामु भवति प्रस्खलनं ।

नित्यं योनिन्मायः दाढर्यं ? नास्ति चित्तस्य ॥

सुहमापज्जणाणं मणुआणं जोणिणाहिकग्गेषु ।

उप्पत्ती होइ सया अण्णेमु य तणुपण्णसेमुं ॥ ९४ ॥

सुहमापपर्याप्तानां मनुष्याणां योनिनाभिकक्षेत्रे ।

उत्पत्तिर्भवति सदा अन्येषु च तनुप्रदेशेषु ॥

१ तवेणइ कः २ अस्मादये अयं पाठ स-पुस्तके । उक्तं च पंचवत्सहस्री-  
कायां मतिमार्गणायां अपवासा नरा. कदाचिद्वृत्तिन कदाचिनेवप्राप्ता नराच  
संस्मृतिउत्पत्ते मनुष्या वृत्तन्ते जेनइ, ते च कदाचिद्वत्तदेवपापुदेवादीनां स्त्रीणां  
कथोपसंवादनरादिदेशेषु प्रपन्ते । उक्तं च—

न हृ अन्धि तेन नेमि इन्धीणं द्रविदमंजमोद्वरणं ।  
 संजमधरणेण विना न हृ मोचरो तेन जम्मेण ॥ ९५ ॥  
 न दाम्नि तेन तासां स्त्रीणां द्विधिसंयमधारणे ।  
 संयमधारणेन विना न हि मोक्षस्तेन जन्मना ॥  
 अदया एयं ययने नेमि जीरो न होइ किं जीवो ।  
 किं नन्धि नाणदंमण उवओमो पेयणा तस्म ॥ ९६ ॥  
 अपवा एतद्वचने तासां जीवो न भवति किं जीवः ।  
 किं नास्ति ज्ञानदर्शने उपयोग चेतना तस्य ॥  
 जइ एवं तो इन्धि धीवरिकल्लालिवेसआईणं ।  
 सम्पेसिमन्धि जीवो मयलाओ तरिहि मिज्झंति ॥ ९७ ॥  
 यथेव तहिं स्त्री धीवरीकल्लारिकावेस्पादीनां ।  
 सर्वास्तामस्ति जीवां सकलास्तहिं सिद्धयन्ति ॥  
 तम्हा इन्धीपंजय पट्टच्च जीवस्म पयडिदोसेण ।  
 जाओ अभव्वकालो तम्हा तेसिं न निज्वाणं ॥ ९८ ॥  
 तस्मात्स्त्रीपर्यायं प्रणीत्य जीवस्य प्रवृत्तिदोषेण ।  
 जातः अभव्वकालः तस्मात्तासां न निर्वाणं ॥  
 अइउत्तमसंहणणो उत्तमपुग्गिमो कुलग्गओ संतो ।  
 मोचरस्स होइ जुंमो निम्मंथो धरियजिणलिंगो ॥ ९९ ॥

११ ( कि ) सुहलभूतृज्जयभूतृकटभूतृतां ।  
 स्त्र्यधारसम्पुंषु मयरोधारभूमिषु ॥ १ ॥  
 पुत्रसधानकस्तेमकर्णदन्तमलेषु च ।  
 अत्यन्तापुचिरेहेषु सप्तः सम्पूर्णवन्ति ये ॥ २ ॥  
 भूत्वा घनाहुलासंख्यामागमात्रसारीरकाः ।  
 भाग्यु नश्यत्पर्यास्तास्ते रयुः सम्पूर्णमा वराः ॥ ३ ॥

१ पञ्चायं स । १ गेय स । १ जो स ।

नो कर्मकर्महारो कवलाहारः लेपाहारः ।

ओतो मनोऽपि च क्रमजः आहारः पादुधो ज्ञेयः ॥

णो कर्मकर्महारो जीवाणं होइ चउगइमयाणं ।

कवलाहारो णरपमु रुस्सेमु य लेपमाहारो ॥ १११ ॥

नो कर्मकर्महारो जीवानां भवनः चतुर्गतिगतानां ।

कवलाहारो नरपशूनां वृक्षेषु च लेपाहारः ॥

पयखीणुज्जाहारो अंडयमज्जेसु वट्टमाणाणं ।

देवेसु मणाहारो चउव्विहो णत्थि केवलिणो ॥ ११२ ॥

पक्षिणामोज-आहारः अण्डमध्येषु वर्तमानानां ।

देवेषु मन-आहारः चतुर्विधो नास्ति केवलिनः ॥

णो कर्मकर्महारो उव्वारेण तस्म आयमे भणिओ ।

ण हू णिच्छएण सो वि हू स वीयरओ परो जम्हा ॥ ११३ ॥

नो कर्मकर्महारो उपचारेण तस्यागमे भणितो ।

न हि निश्चयेन सो पि हि स वीतरागः परो यस्मात् ॥

जो जेमइ सो सोवेइ सुत्तो अण्णे वि विसयमणुहवइ ।

विसए अणुहवमाणो स वीयरओ कहं णांणी ॥ ११४ ॥

यो जेमति स स्वपिति मुक्तो अग्यामपि विषयाननुभवति ।

विषयाननुभवमानः स वीतरागः कथे ज्ञानी ॥

तम्हा कवलाहारो केवलिणो णत्थि दोहिं वि णएहिं ।

मण्णंति य आहारं जे ते मिच्छायअण्णाणी ॥ ११५ ॥

तस्मात्कवलाहारः केवलिनो नास्ति द्वाभ्यामपि न्याभ्यां ।

मन्यन्ते चाहारं ये ते मिथ्याज्ञानिनः ॥

अप्यां तं इय उषं गमयमिन्ऽभकलियभावेन ।

अम्दंश्च धविरकण्यो कंचलमहमेन न दु दोमो ॥ ११६ ॥

अप्यादिभुः न मंदयदिप्याचकाऽनभावेन ।

अभावे, स्थविरकण्य कण्ड्यमहमेन न हि दीय ॥

कंचलि कण्ये दुद्रिय दंडे कण्यं च रयणभंडाई ।

गमयगमननिमित्तं मोरगम्य य होइ जिम्मंतं ॥ ११७ ॥

कण्यः कण्डे दुद्रियकं दण्डं कनकं च रत्नभाण्डादीनि ।

रत्नगमननिमित्तं मोरगम्य च भवति निभान्त ।

न उं होइ धविरकण्यो गिहस्थकण्यो हवेइ कुइ एमो ।

इय मो' धुगेहि कण्यो धविरकण्यम्म भग्गेहि ॥ ११८ ॥

न उ भवति स्थविरकण्यो गृहस्थकण्यो भवति पुत्रमेव ।

इति श्रुतेः इयः स्थविरकण्यस्य भग्नैः ॥

दुविहो जिण्हि कदिओ जिणकण्यो तइ य धविरकण्यो य ।

मो जिणकण्यो उंमो उभमसंहणणधारिम्म ॥ ११९ ॥

द्विविधो जिने कथितो जिणकण्यस्त्वथा च स्थविरकण्यध ।

॥ जिणकस्य उत्त उत्तमसंननधारिणः ॥

अत्य न कंटयभग्गो पाए दायणम्मि रयणविहम्मि ।

फेडंति मयं मुणिणो परावहारे य तुण्हिका ॥ १२० ॥

यत्र न कंटवल्ले पादे नयनयो रजःप्रसिधे ।

फेडन्ति स्वयं मुनयः परावहारे च तूष्णीकाः ॥





ਦੇਵਸਾਨਾਨਾਮਾਨੰਤਰਿ ਸਿੰਧਿਯੋਤਮੰ ਪਦਮੰ ਕੁਸੁਮੰ ।

ਸ਼ਰੀਰਮੇਲਾ ਬਾ ਹਨ ਕਾ: ਬ ਅਰਥਨਾ ਨਿਰਾ ॥

दक्षिणतरे दक्षिणतरे दक्षिणतरे दक्षिणतरे दक्षिणतरे ।

गिडिगदणं गिरमोभो त्रिषवःपरिमवपाडिगहः ॥१२६॥

शिविधतदमि हृदमन गदिधाययं, अनयन ।

प्रितितयने तिमं गेश्व तिनवगदनिष्पदनिषाजं ॥

संहजजन्म्य शुद्धेण य इच्छामकान्म्य मयपहावेण ।

इरण्यगामयामी यगिरे कश्ये टिया जाया ॥ १२७ ॥

मीदनाय शुभेन च दुःखमाकाशय तप प्रभावेन ।

पुनः प्रमादमासि नः स्थितिं वत्ते स्थिता ज्ञानः ॥

उत्पत्त्यं नं गच्छिष्यं ज्ञेयं न भङ्गो ह्येषः क्षरिष्यम् ।

गहिर्यं पुण्ययद्गमं जोगं अम्म नं नेच ॥ १२८ ॥

हृदयवर्जं तद्गृहीतं येन न भङ्गो भवति सर्वथा ।

મૂર્તિનું પુનઃવિદ્યાનં ધ્યાન્ય ધ્યાન્ય તત્ત્વેન ॥

ममद्राष्ट्रं विदामो धम्मम् पहावणं ममर्णम् ।

मद्रियाण धम्ममयणे निम्माण य शास्त्रेण गहणे ॥ १२९ ॥

समुद्रायेन विहागो धर्मस्य प्रभावनं स्वराज वा ।

मन्वाना धर्मश्रवणं शिष्यानां च पाठनं ग्रहणं ॥

संहणं अहिजं कालो मां दुस्ममो मणो धवलो ।

मह नि ऋ षीग पुग्मिा महज्यपभरधरणउल्लहिया ॥१३०॥

सहनमगतिनीचे कालः स दुःखमो भनसपले ।

तथापि हि हिंसा, पुण्या महाजनभारसरमोमहाः ॥

परिमगदहस्मिण पुगं जं कम्मं हणद्द तेष काण्ण ।

नं संपद वरिगेण नृ जिज्जरयइ ईयिसंहणजे ॥ १३१ ॥

वर्षमहमेण पुग यः कर्म हन्ते तेन कायेन ।

समं प्रणि वर्णेन हि निर्गम्यनि हीनमहननेन ॥

एवं द्विहो कपो पद्मत्रिषंडेहिं अग्निप्रो पुणं ।

अण्णो पासंडिकओ गिहकण्णो गंधपग्निकल्लिओ ॥ १३२ ॥

ए. दिग्धि. क. प. पद्मत्रिने कपो नून ।

अन्य. पाषण्डिकणो गृहकण्णो गंधपग्निकल्लि. ॥

दुद्धरतवम्म भग्गा पग्मिहविमण्णिं पीडिया जे य ।

जो गिहकण्णो लोए म थविरुक्कण्णो कओ तेहिं ॥ १३३ ॥

दुर्धरतपमः भग्गा पग्मिहविमण्णिं पीडिता ये च ।

जो गृहकण्णो लोके म स्थविरकण्ण. कृत तेः ॥

णिगंथो जिणवमहो णिगंथं पक्खणं कयं तेण ।

तस्साणुमगलग्गा मत्वे णिगंथमहरिमिणो ॥ १३४ ॥

निर्ग्रन्थो जिनवृषभो निर्ग्रन्थ प्रवचन कृत तेन ।

तस्यानुमार्गलगा. सर्वे निर्ग्रन्थमहर्षयः ॥

जे पुण भूसियगंधा दूमियणिगंधलिगवयमट्टा ।

तेहिं संगंधं लिगं पायडियं तिव्वणाहम्म ॥ १३५ ॥

ये पुनर्भूषितग्रन्था. दूषितनिर्ग्रन्थलिगवयमट्टा. ।

तैः सग्रन्थ लिग प्रकटित तावनाधम्म ॥

जं जं सयमायरियं ते ते णिरुआयमेण अल्लिण्ण ।

लोए वक्खाणिच्चा अण्णाणी वंचिंआ तेहिं ॥ १३६ ॥

१ जेहिं स । २ प स । ३ समय क । ४ जो क । ५ न स । ६ अस्मादपे  
इदं गाथासूत्रमुपलभ्यते—

णिगंथं दूमिच्चा विदिक्का अण्णं पयमिच्चा ।

जोहिं सुद्धलोए कयमाय गहियवहुद्वेहिं ॥ १ ॥

तत्तु अस्मिन् ग्रन्थे १५४ गाथासूत्रादपेक्षित, स-पुस्तके तु पुनरपि ।



तस्य वि गयस्स जायं दुग्धिमवर्त्तं दारुणं महाघोरं ।  
 जस्य विधारिय उयरं सुद्धो रंकेहि कूरुति ॥ १४२ ॥  
 तत्रापि गतस्य जातं दुग्धिश्वं दारुणं महाघोरं ।  
 यत्र विदार्योदरं भक्षितः रंकैः कूर इति ॥  
 तं लहिउण णिमित्तं गहियं मव्वेहि कंवल्लि दंडं ।  
 दुद्धियपत्तं च तहा पावरणं सेयवत्थं च ॥ १४३ ॥  
 तल्लब्ध्या निमित्तं गृहीतं सर्वैः कम्बलं दण्डं ।  
 दुग्धिकपात्रे च तथा प्रावरणं श्वेनवर्त्तं च ॥  
 चत्तं रिसिआयरणं गहिया मिक्खा य दीगविस्सीए ।  
 उव्वविसिय जाइउणं भुत्तं वमहीसु इच्छाए ॥ १४४ ॥  
 त्यक्तं ऋष्याचरणं गृहीता भिक्षा च दीनवृत्त्या ।  
 उपविश्य याचयित्वा भुक्तं वसतिभिश्छया ॥  
 एवं वट्टंताणं कित्थियकालम्मि चावि परियल्लिए ।  
 संजायं सुद्धिमवर्त्तं जंपइ ता संतिआइरिओ ॥ १४५ ॥  
 एवं वर्तमानानां कियत्काले चापि परिचलिते ।  
 संजातं मुग्धैर्जल्पति तान् शान्त्याचार्यः ॥  
 आवाहिउण संघं भणियं छंडेह कुत्थियायरणं ।  
 णिंदिय गरहिय गिण्हह पुणगवि चरियं मुणिद्राणं ॥ १४६ ॥  
 आहूय संघं भणितं त्यजत कुत्सिताचरणं ।  
 निदत्तं गर्हतं गृह्यत पुनरपि चारित्रं मुनीन्द्राणां ॥  
 तं वयणं सोउणं उत्तं सीसेण तस्य पट्टेमण ।  
 को मक्कइ धारेउं एयं अइदुद्धरायरणं ॥ १४७ ॥



मसयरपूरणरिमिणो उत्पण्णो पामणाहन्तिवम्मि ।

सिरिर्वीरसमवमरणे अगहियञ्जुणिणा गियत्तंण ॥ १६१ ॥

मस्कभिपूणकपिद्वपन्नः पार्श्वनाथनार्थे ।

श्रीवीरसमवशरणे अगृहीतत्वनिना निर्वृत्तन ॥

ग्रहिणिग्गएण उत्तं मज्झं ग्यारसंगधारिम्म ।

णिग्गइ झुणी ण अरुहो विणिग्गंया मा समीमस्स ॥ १६२ ॥

बहिर्निर्गतेन उक्तं मय एकादशागधारिणं ।

निर्गच्छति ध्वनिं न अहंन् विनिर्गता सा स्वशिष्याय ॥

ण मुणइ जिणकहियमुयं संपइ दिक्खा य गहिय गोयमओ ।

विप्पो वेयम्भासी तम्हा मोक्खं ण णाणाओ ॥ १६३ ॥

न जानाति जिनकथितं श्रुतं संप्रति दीक्षां च गृहीतः गौतमः ।

विप्रो वेदभाषी तस्मान्मोक्षो न ज्ञानतः ॥

अण्णाणाओ मोक्खं एवं लोयाण वयडमाणो हु ।

देवो ण अरिथ कोइ मुण्णं झाएहं इच्छाए ॥ १६४ ॥

अज्ञानतो मोक्ष एवं लोकान् प्रकटमानो हि ।

देवो नास्ति कश्चिच्छून्य ध्यायत इच्छया ॥

एवं पंचय्यारं मिच्छत्तं मुग्गईणिवाग्गयं ।

दुक्खसहस्सावासं परिहरियव्वं पयत्तेण ॥ १६५ ॥

एवं पंचप्रकारं मिष्यान्वं मुगतिनिवारणकं ।

दुःखसहस्रावासं परिहर्तव्यं प्रयत्नेन ॥

मिच्छत्तेणाच्छण्णो अणाइकालं चउग्गईभुवणे<sup>१</sup> ।

भमिओ दुक्खकंतो जीवो देहाइं गिण्हंतो ॥ १६६ ॥





एते विद्वत्तमसाः कृष्णवर्णस्य नीलवर्णस्य च ।

पद्मिनीवर्णस्य च शरीरवर्णस्य दुर्गन्धस्य ॥

न मुनेनि मयं धम्मं अमुगियननन्वयाग्गम्भडा ।

पउत्तमाया माट्टं कट्टं अण्णेमिं कूडे णिति ॥ १८१ ॥

न ज्ञानेन धर्मं धर्मं अमुगियननन्वयाग्गम्भडा ।

पउत्तमाया मागणिन कट्टं अण्णन् कूडे णिति ॥

रंटा मुंटा थेंडी गुंडी दिग्गिदा धम्मदाग

मीमे कंता कामामता कामिना मा विपागं ।

मज्जं ममं मिट्ठं मगं भरिगयं जीरमोसं च ।

कउलं धम्मं विमये ग्गमे नं जि हो मग्गमोसं ॥ १८२ ॥

रंटा मुग्गा मग्गी शौडी दीक्षिना धम्मदाग

दिग्घा कान्ता कामामता कामिना मा विपागं ।

मद्यं मामं मिट्ठं मग्गं भरिगयं जीरमुसं च ।

कदिदे धम्मं विमये ग्गमे तेनेव नयनं मग्गमोसं ॥

रत्तामत्ता कंतामत्ता दुमियाधम्ममग्गा

दुट्ठा कट्ठा धिट्ठा मुट्ठा णिदिजोमोक्खमग्गा ।

अक्खं सुक्खं अग्गे दुक्खं णिम्मं दिण्णचित्ता

णेरुद्दयाणं दुक्खट्ठाणं तम्म मिम्मं पउत्ता ॥ १८३ ॥

रत्तमत्ताः कान्तासक्ता दूरितधर्ममागा.

दुष्टा कष्टा धृष्टा अनृतवादिन निन्दितमोक्षमार्गा ।

आद्ये गुरो आद्ये दुःखे निर्भान्तं दत्तचित्ताः

नारकाणां दुःखस्थाने तस्य शिष्याः प्रोक्ताः ॥

मल्लं धम्मो मेसे धम्मो जीवहिंसाहं धम्मो ।

राई देवो दोमी देवो माया मुण्णं पि देवो

रत्तामत्ता कंतामत्ता जे गुरु ते वि य पुत्ता

हाहा कहं णहो लोओ अहमहं कुणंतो ॥ १८४ ॥

मसे धर्मो मसे धर्मो जीवहिंसावां धर्म- ।

रागी देवो दोमी देवो माया तूयमपि देवः ।

रत्तामत्ताः कान्तामत्ता ये गुरुवस्तेऽपि च पुत्र्या

हाहा कहं नहो लोक- अहमहं कुर्वन् ॥

धूमपायरिवहिणि अण्णावि पुणत्थिणि ।

आयति य पासवयणुपयडे वि विस्से ।

जह रणियकामाउणेण वेयगण्ये उप्पण्णदप्पे ॥

पंभणि-छिपिणि-डोंवि-नडिय-यरडि-रत्ताह-यम्मरि ।

कयले ममह ममामंमह तंह भुत्ति य परणारि ॥ १८५ ॥

दुहितामातृभगिन्य अ-या अपि पुत्रार्थिनी ।

आयाति य व्यामवचने प्रकटयति त्रिषेण ।

यथा रमिता वामानुजेण वेदगर्णेणो यमदरेण ॥

महाणी-डोओ-अरी-बा-गी-न-अरी-चर्मकारी ।

कपित्ते नामये ममाम-उत्ती तथा भुत्ता य परन्तरी ॥

१ ते रा । २ पु रा । ३ ता. व । ४ ज्य. क । ५ तत्तात्त द । ६ द.

क । ७ अमादाधुन अथवा कौत ।

रवपरेणामता माता को न वामवने मर. ।

मह हाया अवेचनं च पूर्वद्वारावर्तीरुत्तर ॥ १ ॥

एते विपयासक्ताः कङ्कुमत्ताश्च जीवदयारहिताः ।

परत्रियधनहरणरता अगृहीतधर्मा दुराचाराः ॥

ण मुणंति मयं घम्मं अमुणियतच्चत्थयारपम्भट्ठा ।

पउरकमाया माई कह अण्णेसिं फुडं विंति ॥ १८१ ॥

न जानन्ति स्वयं धर्मं अमुनिततत्तार्थाचारप्रभृष्टाः

प्रचुरकपाया मायाविनः कथं अन्यान् स्फुटं ब्रुवन्ति ॥

रंडा मुंडा येंडी मुंडी दिक्खिदा घम्मदाग

सीसे कंता कामामत्ता कामिया मा विपारां ।

मज्झं मंसं मिट्ठं भक्खं भविस्सयं जीवमोक्खं च ।

कउलं घम्मे विमये गम्मे तं जि हो सम्ममोक्खं ॥ १८२ ॥

रंडा मुण्डा मयण्टी शौटी दीक्षिता धर्मदाग

शिष्या कान्ता कामामत्ता कामिता मा विपारा ।

मयं मामं मिट्ठं भक्खं भक्षित जीवमुक्खं च ।

कपिठे धर्मे विषये रम्ये तेनैव भरत ॥ धर्ममोक्षौ ॥

रत्तामत्ता कंतामत्ता दूसियाधम्ममग्गा

दूदा कट्टा धिट्टा मुट्टा निन्दिजोमोक्खमग्गा ।

अग्गे मुग्गे अग्गे दुग्गे जिम्मर दिण्णचित्ता

पेरट्ठणं दूग्गट्ठणं तम्म मिम्मा पउत्ता ॥ १८३ ॥

रत्तमत्ता. कान्तामत्ता दूतिनधममग्गा

दूदा कट्टा नूदा अनृतवादिन निन्दितमोक्षमार्गो. ।

१ येंडी म. २ विपरा क. ३ अ'दुग्ग म. ४ विट्ठा मोक्खमोक्खं.  
५ कामा म. ६ दू क. ७ वा म.



अण्णाणधम्मलम्भो जीवो दुक्खाण पुरिओ होइ ।

चउगइ गइहिं णिवडइ संमारे भमिहि हिंडंतो ॥ १८६ ॥

अज्ञानधर्मलम्भो जीवो दुःखाना पुरितो भवति ।

चतुर्गता गतिभिः निपतति समारे भ्रमति विण्डन् ॥

जइ पाहाणनरंडे लग्गो पुग्गिओ हु तीग्गीतोए ।

पुहुइ विगयाधाने णिवडइ महणवावत्ते ॥ १८७ ॥

यथा पापाणनरण्डे लग्न पुरुषो हि तीर्णान्तोपे ।

ब्रुइति विगताचारः निपतति महार्णवावर्ते ॥

कुच्छियगुरुकयसेना विविहावइपउग्गदुक्खआवत्ते ।

तइ य णिमज्जइ पुग्गिओ संमारमहोदयौ मीमे ॥ १८८ ॥

कुत्सितगुरुकृतमेवा विविधानिप्रचुरदुःखावर्ते ।

तथा च निमज्जति पुरुषः समारमहोदयौ मीमे ॥

ययभट्टकुंठरुदेहिं णिहुग्गिक्किहुहुच्चिदेहिं ।

अप्पाणं णासिन्ना अण्णो वि य णासिओ लोगो ॥ १८९ ॥

व्रतभट्टकुंठरुदेहिं निष्ठुरनिकृष्टदुष्टचेष्टे ।

आत्मानं नाशयित्वा अन्योऽपि च नाशिनो लोकः ॥

इय अण्णाणी पुरिमा कुच्छियगुरुकहियमग्गसंलग्गा ।

पावंति णरयनिग्गं णाणादुहसंकडं मीमं ॥ १९० ॥

इति अज्ञानिन पुरुषा कुम्भितगुरुकानितमार्गसंलग्नाः ।

प्राप्नुवन्ति नरकनियच नानादुःखमकट भामे ॥

एवं णाऊण फुडं सेविज्जइ उन्नमो गुरु कोई ।

बहिरंतरमंथनुओ निग्गियणवंतो मुणार्णी य ॥ १९१ ॥



एतस्मिन् गुणस्थाने काये नास्ति सावन्मात्रः यस्मात् ।

समादिस्नागो न दि मशेण मेन म उक्त ॥

परिणामियभावगयं विदियं मामागणं गुणट्टाणं ।

मम्मन्तसिद्धपटियं अपन्तमिच्छन्तभूमितलं ॥ १९७ ॥

पाणिनामिहभावगत द्वितीये मामादनं गुणस्थानं ।

मम्मन्तसिद्धपटियं अपन्तमिच्छन्तभूमितलं ॥

मामागणमम्मन्त-इति मामादनमम्मन्तवत् ।

सम्मामिच्छुदणं य मम्मिम्मं नाम होड गुणट्टाणं ।

खयउवममभावगयं अंतर्जाडं ममुदिदं ॥ १९८ ॥

सम्यक्कयमिच्छात्तोदयेन च समिध्र नाम भवति गुणस्थानं ।

क्षयोपशमभावगतं अन्तरजानि ममुदिदं ॥

वडवाए उत्पण्णो खरेण जह हवड इत्थ वेमग्गो ।

तह तं सम्मिम्मसगुणं अगहियगिहमयलसंजमणं ॥ १९९ ॥

वडवाया उत्पन्नं खरेण यथा भवति अत्र वेसरः ।

तथा स सम्मिध्रगुणः अगृहीतगृहिमकडसयमः ॥

तत्थ ण वंधइ आउं कुणइ ण कालो हु तेण भावेण ।

सम्मं वा मिच्छं वा पडिवज्जिय मग्गं नियमेण ॥ २०० ॥

तत्र न वज्जाति आयुः करोति न कालो हि तेन भावेन ।

सम्यक्कः वा मध्याय वा प्रणिपद्य नियते नियमेन ॥

अट्टरउइं शायइ देवा सव्वे वि हुंति णमणीया ।

धम्मा रुद्धे पयग गुणागुणं कि पि ण विणिणइ ॥ २०१ ॥





णाणोकुलाइं जाइं णाणाजोणी य आउतिहाइं ।

णाणादेहमयाइं चण्णा रुपाइं चिनिहाइं ॥ २०७ ॥

नानाकुलाणि ज्ञाताः नानायोगीध आयुषिभगदीनि ।

मानादेहगतान् वर्णान् स्वयमि विविशानि ॥

गिरिमरिमायग्दीवो गामागमाइं घरणि आयामं ।

जो कुणइ रणदेणं चिंनियमित्तेण मय्याइं ॥ २०८ ॥

गिरिमरिमायग्दीवान् ग्रामागमान् धरणीमाकाशं ।

यः फगेति क्षणार्धेन चिन्तितमात्रेण मयान् ॥

किं मो रज्जणिमिन्नं तवमा तावेइ णिच्च णियदेहं ।

तिहुवणकरणसमत्थो किं ण कुणइ अण्णो रज्जं ॥ २०९ ॥

किं स राज्यनिमित्तं तपसा तापयति निर्व्यं निजदेहं ।

त्रिभुवनकरणसमर्थः किं न करोति आत्मनो राज्यं ॥

अच्छरतिलोचमाण् णट्ठं दह्ण रायरमग्मिओ ।

तवभट्ठो चउवयणो जाओ सो मयणवमचित्तो ॥ २१० ॥

अप्सरस्तिन्दोत्तमाया नृत्यं दृष्ट्वा रागरसरसिकः ।

तपोभ्रष्टः चतुर्वदनः जातः स मदन्वशाचित्तः ॥

छंडिय णियवैट्ठत्तं पट्ठत्तणं देववत्तणं तवोचरियं ।

कामाउरो अलज्जो लग्गो मग्गेण सो तिस्म ॥ २११ ॥

त्यक्त्वा निजवृहत्त्वं प्रभुत्वं देवत्वं तपश्चर्यं ।

कामातुरः अलज्जः लग्नः मार्गेण स तस्या ॥

हसिओ सुरेहिं कुहो (डू) खरसीमो भखिउं पउत्तो सो ।

संकरकरखुडियसिरो विरहपलित्तो णियत्तो य ॥ २१२ ॥



स विरचिः कथं संभवति त्रिलोकस्य कर्ता ।

य आत्मानं हि न तारयति स्फोटयति विरहविकारं ॥

णत्थि घरा आयासं पवणाणलतोयजीयससिमुरा ।

जइ तो कत्थ ठिदेणं वंभो गइयं तिलोओत्ति ॥ २१७ ॥

न सन्ति घरा आकाशं पवनानलतोयज्योतिःशशिमूर्त्याः ।

यदि तर्हि कुत्र स्थितेन ब्रह्मणा रचितः त्रिलोक इति ॥

कचित्तं पुण दुविहं वत्थुअ कचित्त तह य विक्किरियं ।

घटपटगिहाइं पढमं विक्किरियं देवयारइयं ॥ २१८ ॥

कर्तृत्वं पुनः द्विविधं वस्तुनः कर्तृत्वं तथा च वैकल्पिकं ।

घटपटगृहादि प्रथमं वैकल्पिकं देवतारचितं ॥

जइ तो वत्थुभूओ रहओ लोओ विगिचिणा तिविहो ।

तो तस्म कारणाइं कत्थुवलद्दाइं दव्वाइं ॥ २१९ ॥

यदि स वस्तुभूतो रचितो लोको विरचिना त्रिविधः ।

तर्हि तस्य कारणानि कुत्र लब्धानि द्रव्याणि ॥

अह विक्किरिओ रहओ विज्जाथामेण तेण वंमेण ।

कह थाइ दीहकालं अनत्थुभूओ अणिशोत्ति ॥ २२० ॥

अथ विक्कियारचितो विद्यास्थाना तेन ब्रह्मणा ।

कथं निष्ठानि दीर्घकाष्ठे अवस्तुभूतोऽनित्य इति ॥

तम्हा ण होइ कत्ता वंभो मिरछेयविनडणं पत्तो ।

छलिओ तिण्णोममाण्णं मामण्णपुग्गिमुव्व अममन्थो ॥ २२१ ॥

तस्माच्च न सति वस्तु ब्रह्मा शिरस्तेदपिनडनं प्राप्तं ।

छटित्तमित्तेतमया सामान्यपुण्य इवाममर्थं ॥

लो परमहिलाकजो छंदइ पट्टणं तओ नियमं ।

मो ए एइ परमप्रा कट देवो इइ पुजो ॥ २२२ ॥

१. परमप्राकजो ज्योति इइइ तपो नियमं ।

२. न भवति परमात्मा कट देवो भवति पूज्यध ॥

मुपरिविगडण तमहा मुगयेमहं को रि परमबंधाणो ।

ददमहदोन्नरदिओ घायगओ परो पापी ॥ २२३ ॥

मुपरीय तागा १ मुगयेय कमपि परमबद्धाणी ।

दद्याः शोभति भीतरान परं शान्ति ॥

पिण्णो जइ धरइ जयं मूवरूवेण दादुअमोण ।

ता मो कटि टपइ पेण कुम्मे कुम्मे कि कहिं छाई ॥ २२४ ॥

हृण्णो यदि धारयति जगत् सूकररूपेण दंष्ट्रमेण ।

सहिं न कुत्र निष्ठति पदे कुर्मो त्मोऽपि कुत्र निष्ठति ॥

अहं छुड्डिअ मउभतो तिजयं पालेइ महमहो निधं ।

किं मो तिजययदिस्थो तिजययदिस्थेण किं जाओ ॥ २२५ ॥

अथ स्वर्दिस्था सूकरं ( १ ) तिजगत् पालयति मधुमदः निधं ।

किं न तिजगद्दिस्थः तिजगद्दिस्थेन किं जातं ॥

जइया दहइपुत्तो रामे (मो) निवसेइ दंडण्यम्मि ।

संकाहिणेण छलिओ हरिया भज्जा एवंणेण ॥ २२६ ॥

यत्र च दशरथपुत्रो रामो निवसति दण्डकारण्ये ।

संकाधिपतिना छलितः इता भार्या प्रपंचेन ॥

विरहेण रुइ पिलवइ पडेइ उहेइ गियइ मोणइ ।

णउ मुणइ येण धाया पुच्छइ वणमावयां मूढो ॥ २२७ ॥

१ मूढो स । २ दण्डण्य क । ३ व. क । ४ अस्मादयेऽवं श्रीकः स-  
मके । ( अमे )

निन्देन मंदिनि निजनि गतिः उदितुति पदगतिः मतिनि ।

न हि मन्त्रे केन ज्ञानं पश्यति पवनानाम् नृपुडः ॥

जड उदितुति निजयं मा मां किं तन्म वागम गिन्ता ।

मेलाउडण उाही वंशः मंतेहिं मेउनि ॥ २२८ ॥

यदि उगो मियन विजयन नहिं न किं मय मयनम् ज्ञानम् ।

मेलाउडिना उाही वंशः मंतेहिं मेउनि ॥

किं पदयेः दूयं जंशः किं माममेवदंटाः ।

अलहंतो किं मुज्जड कोरे काउण मय्येहिं ॥ २२९ ॥

किं प्रमथयमानं दूयं मय्येहिं किं माममेवदंटाः ।

अजममान किं मुदयनि कोरे कृपा शस्त्रेः ॥

किं दहययणो सीया गहिउणं उवरचाहिरे थस्को ।

जं हेलादं ण नग्ग गिउ हणिउं आणिउं भज्जा ॥ २३० ॥

किं दशयदनं मांता मृगीया वरिः स्थितः ।

यत् हेदया न शत्रोनि गिपु हन्ता आनेनु भार्या ॥

जड तिजयपालणत्थे संजाया तस्म एरिसी मती ।

तो किं निजयं दडुं हगे रेणं संपिच्छमाणस्म ॥ २३१ ॥

यदि तिजयपालणत्थे संजाया तस्म एरिसी मती ।

तर्हि किं जिगत् दग्ध हगेण सप्रेक्षमाणस्य ॥

जो ण जाणइ जो ण जाणइ हरिय नियमज्ज ।

पुच्छइ वणसावयइ अह मुणेइ आणउ ण मन्दइ ।

भो भो भुजंग ! तद्वत्तुल्यलोचनं वन्द्यं पुण्ड्रदलसङ्घमलोहिताक्ष ।

पृच्छामि ते पवनभोजिन् कोमलाङ्गी काचित्पया शरद्वन्द्वसुखी न ह्य ॥ १ ॥

१ किं पद्मावइ दूयो ख । २ हरिणे ख ।



यदि घृतं नवनीतं नवनीतं पुनरपि मनेद्यदि दुग्धं ।

तर्हि सिद्धिगतो जीवः पुनरपि देहादिकं गृह्णाति ॥

रदो क्रूरो पुनरपि खित्ते खित्तो य होइ अक्रूरो ।

जइ तो मोक्सं पत्ता जीवा पुण इति संसारं ॥ २३७ ॥

रदः क्रूरः पुनरपि क्षेत्रे श्रितश्च भवेदंकुरः ।

यदि तर्हि मोक्षे प्राप्ता जीवा पुनरायान्ति संसारे ॥

जइ शिक्कलो महप्पा विण्ह णिस्सेसकम्ममलचत्तो ।

किं कारणमप्पाणं संसारे पुण वि पाडेइ ॥ २३८ ॥

यदि निष्कलो महाम्मा विष्णुः निःशेषस्वकर्ममलच्युतः ।

किं कारणमात्मानं संसारे पुनरपि पातयति ॥

अहवा जइ कलसहिओ लो(इ)यवाशरदिष्णणियचित्तो ।

तो संसारी णियमा परप्पा हवइ ण हु विण्ह ॥ २३९ ॥

अथवा यदि कलसहितो लोकव्यापारदत्तनिजचित्तः ।

तर्हि संसारी नियमात् परमात्मा भवति न हि विष्णुः ॥

इय जाणिलुण णूणं णवणवदोसेहिं वज्जिओ विण्ह ।

सो अवखइ परमप्पा अणंतणार्णी अगई य ॥ २४० ॥

इति श्रुत्वा नून नवनवदोषैर्वर्जितो विष्णुः ।

स कथ्यते परमात्मा अनन्तज्ञानी अरागी च ॥

एवं भणंति केइ रुदो संहइ तिहुवणं मयलं ।

चिंतामित्तेण फुडं णरणारयनिरियमुग्गमहिं ॥ २४१ ॥

एवं भणन्ति केचित् एतं महानि त्रिभुवन सकट ।

चिन्तामात्रेण सुष्टं नरनारकतिर्यक्पुनरहितं ॥

पदे अनेगलोण् पच्छा गो कन्व चिह्ने गतो ।

इवको नर्मपयारो गोरी गंगा गया कन्व ॥ २४२ ॥

नेहेऽनेगलोके पञ्चान् ग कुत्र निष्ठिति रदः ।

एकस्मिन्ऽन्तरः (१) गोरी गंगा गया कुत्र ॥

जो उदर एगगाम पावी लोण्हि चुषदे गो हु ।

जो पुण उदर निग्योयं मो कह देवगर्ण पत्तो ॥ २४३ ॥

यो दहति एगगामे पावी लोकेऽप्यने न हि ।

यः पुनः दहति त्रिकेकं न कथं देवर्षे प्राप्त ॥

जो हणइ एगगामी विष्णो वा मो वि इत्य लोण्हि ।

गोर्धमदययारी पमणिज्जइ पावकारी मो ॥ २४४ ॥

यः दहति एकां वा विघ्ने वा सोऽपि अत्र लोकेः ।

गोमददहत्याकारी प्रभष्यने पापकारी सः ॥

जो पुण गोणारिपमुहे धाले बुद्धे असंखलोयत्ये ।

संहारेइ अगेसं तस्सेव हि किं भणिस्सामो ॥ २४५ ॥

यः पुनः गोमादीप्रमुखान् बालान् वृद्धान् भ्रमरूपलोकस्थान् ।

संहरति अशेषान् समेव हि किं भणिष्यामः ॥

अहवा अइ भणइ इयं मो देवो तस्म हवइ ण हु पावं ।

सो धंभसीसछेण् धंभदया कह जाया ॥ २४६ ॥

अथवा यदि भणतीदं स देवः तस्य भवति न हि पापं ।

तर्हि प्रक्षशिरःपदे प्रक्षदत्या कर्त्तव्यं जाता ॥

किं इहमुंडमाला गंधे परिवहइ धूलिधूमरिओ ।

परिभमिओ तित्याइ णरह कवालम्मि भुंजतो ॥ २४७ ॥



किं शक्तिमयमन्त्रं न भक्तो न विदति नृसिंहमणिः ।

परिभ्रमिन्मन्त्रिणो नैव नम्य कदापि मुखात् ॥

नद रि ण मा वंदना सिद्ध रुद्रम् तामना गामे ।

चमिषो पन्नामनगामे ता रिषो गिरादरेण ॥ २४८ ॥

गयाय न मा मद्रस्या भिक्षाति रुद्रस्य पादौ पात्रे ।

वरिण पन्नामनादि नन रिद्र निरवन्तेन ॥

गिहप्रो मिमेन मुप्रो नगदो मेप्रो निरुगन्तु मंजाप्रो ।

वाणार्गमे च पप्रो रुद्रो रि य नम्भ मंगेन ॥ २४९ ॥

निहन् शृंगेन मृग गाम शेन रुद्रा मंजानः ।

वाणगमी प्राण रुद्रोऽपि न नम्य मार्गेण ॥

गंगाजलं पविट्ठा नना ते दो रि वंदनाय ॥

रुद्रम् कम्बलाप्रो नट्यं पटियं कालोनि ॥ २५० ॥

गंगाजले प्रविष्टो यत्की ना दायति प्रभ-य्या ।

रुद्रस्य कं नट्यं तत्र पतित कदा अभिने ॥

जस्म गुरु मुरदिमुप्रो गंगानोष्ण फिट्ठा हवा ।

सो देवो अष्णस्म य फेड्ड कह मंचियं पात्रं ॥ २५१ ॥

यस्य गुरु, मुग्धिमुत्त गंगानोषेन फिट्ठयने श्रव्या ।

॥ देवोऽन्यस्य च स्फोटयति कय मंचित पात्र ॥

जो ण तरेड्णियपात्रं गहियवप्रो अष्णस्म फेडेउं ।

अममत्यो सो णुणं कचिनविणामणे रुद्रो ॥ २५२ ॥

यो न शक्नोति नित्रपाप मृष्टोत्तत्र आन्ध्रन स्फोटयितु ।

अममर्थः स नून कर्तृत्वविनाशने रुद्र ॥

नो धंभा बुण्ड जयं किण्टो न धंभं दग्धं नउ रदो ।  
एमो मदायसिदो निषो दग्धं मंलण्णो ॥ २५३ ॥

न मदाय करोति जगत् ॥ १ ॥ २५३ ॥ १ ॥ १ ॥  
एव रसभावमिदं निषेध ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥

पञ्चतुष्टयः ।

भमं नग्गउ भमं नग्गउ वंमं मुममाणि ।  
नरं दग्धं मंलण्णं, नरकवालि भिरग्गद भुंजइ ।  
महयारिउ गउग्गिहिं दुक्खमाक अण्णो निउंजइ ॥  
जो धंभणेहं मिरकमले गुडिण न फेउइ टोमु ।  
सो इमं कइ अवहरइ निहुण्णु कइ अमंमु ॥ २५४ ॥

भवति नो भवति नो भवति इत्यनेन ।  
नरं दग्धं शिरोमण्डितं नरकवाले । नश्चा भुनक्ति ।  
सदृशं गीतिभिः दुःखभावे आमानं निवृत्ते ॥  
यो मल्लं मिरकमले खडितं न स्नेहयति दोष ।  
त ईश्वर कथमपहरति विमुक्तं वरानं अशेष ॥

पञ्चतुष्टयः ।

उत्तंउत्तं उत्तंउत्तं पवग्गुमरिहिं ।  
पाराग्गु चलिउ मणु मुणं लज्जेवदग्धंदिणि ।  
आलिगिय तपहंउ परिवामजाउ तावमु महामुणि ।

भारतं पुत्रं दुष्टं दोषं हि वेमग्गदग्धेण ।  
जिणु 'मिल्लिदि के वेण जग्गि निवडिय नउत्तमणेण ॥ २५५ ॥

१ नग्गउ समइ क. । २ भिभुंजइ । ३ पानागुण क. । ४ व क १५ इ. ख ।  
मोलिदि क. ।

한 사람도 없는데, 이 사람이  
그 사람도 없는데, 이 사람이

한 사람도 없는데, 이 사람이  
그 사람도 없는데, 이 사람이

한 사람도 없는데, 이 사람이  
그 사람도 없는데, 이 사람이

한 사람도 없는데, 이 사람이  
그 사람도 없는데, 이 사람이  
한 사람도 없는데, 이 사람이  
그 사람도 없는데, 이 사람이

한 사람도 없는데, 이 사람이  
그 사람도 없는데, 이 사람이  
한 사람도 없는데, 이 사람이  
그 사람도 없는데, 이 사람이  
한 사람도 없는데, 이 사람이  
그 사람도 없는데, 이 사람이



द्वेविहं तं पुन भणियं अहवा तिविहं कहंति आयरिया ।  
आणाए अघिगमे वा महहणं जं पयत्थाणं ॥ २६४ ॥

द्विविधं तत्पुनः भणितं अथवा त्रिविधं कथयन्त्याचार्याः ।

आज्ञया अघिगमेन वा श्रद्धानं यन् पदार्थानां ॥

खयउवममं च गइयं उवमममम्मच पुणु च उदिहं ।  
अधिरइ विरयाणं पि य विरयाविग्याण ते हुंति ॥ २६५ ॥

क्षयोपशमं च शायिक उपशमं सम्यक्त्वं पुनधोरितं ।

अविस्ताना विस्तानामपि च विस्ताविस्तानां तानि भवन्ति ।

कोहचउरकं पढमं अणंतचंधीणिणामयं भणियं ।  
सम्मनं मिच्छतं मम्मामिच्छतयं तिणिण ॥ २६६ ॥

क्रोधघृष्क प्रथम अनन्तानुबन्धिनामक भणितं ।

सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं सम्यग्भिष्यात्वं त्रीणि ॥

एणमिं मतण्हं उवममकण्णेण उवममं भणियं ।  
रापओ गइयं जायं अचलत्तं गिम्मलं गुद्वं ॥ २६७ ॥

एतेषां समानामुपशमकण्णेन उपशमं भणितं ।

शयन शायिक जाते अचलत्वं निर्मलं गुद्वं ॥

उदयामाओ ब्रव्थ य पयडीणं ताण मय्थपादीणं ।  
छग्गाण उवममो वि य उदओ मम्मनपयडीण ॥ २६८ ॥

उदयामासं यत्र च प्रहसीना तामा मय्थादीनीनां ।

पत्ता उपशमोऽपि च उदय सम्यक्प्रकृते ॥

मायउरममं वटुत्तं मम्ममं पग्मरीयगण्हिं ।  
उवममियपंकममिं गिणं कम्मग्गारणहेउं ॥ २६९ ॥

क्षयोपशमे प्रोक्त सम्यक्त्वं पश्मरीयगण्ठि ।

उपशमित्यपंकममिं त्रिव कर्मक्षारणहेतुः ॥

जो न हि मणाद् गृधं रयउद्यममभावजो य मम्मनं ।  
सो अण्णादी मृदो नेण ण णायं ममयमार ॥ २७० ॥

यो न हि मयन एतत् स्यादण्णादीनां च मम्मनं ।

म अज्ञानी मृदुमनेन न ज्ञाय ममयमार ॥

जम्हा पंचपदाणा भावा अर्थानि मुनणिदिहा ।  
सम्हा रयउद्यममिम् भावे जाये तु नं जाये ॥ २७१ ॥

वस्मान् पचनाना भावा मन्त्रानि मृत्निदिष्टा ।

तस्मान् शरीराशयेन भावेन जाय तु नं जायते ॥

तं मम्मत्तं उत्तं जन्थ पयन्थाण होइ महहणं ।  
परमप्पहंफट्ठियाणं परमप्पा दोमपरिचत्तां ॥ २७२ ॥

तत्तत्पञ्चमुक्ते यत्र पदार्थाना भवन्ति यद्दानं ।

परमात्मकधितानां परमात्मा दोमपरित्यक्त ॥

दोमा छुहाइ भणिया अहारम होति निविहलोयम्मि ।  
सामण्णा मयलज्जे तेमिमभावेण परमप्पा ॥ २७३ ॥

दोषा क्षुधादयो भणित्वा अष्टादश भवन्ति त्रिविधलोके ।

सामान्या मयलज्जे तेनामभावेन परमात्मा ॥

मो पुण दुविहो मणियो मयलो तह निवकलुत्ति जायव्वो ।  
सयलो अरुहमरूयो मिद्वो पुण निवकलो भणिआं ॥ २७४ ॥

म पुन द्विविधो भणितः सकलस्तथा निष्कल इति ज्ञातव्यः ।

सकलोऽर्हद्रूपः सिद्धः पुन निष्कलो भणितः ॥

जस्स ण गोरी मंगा कावालं येव विमहरो कंठे ।  
ण य दप्पो कंदप्पो सो अरुहो मण्णाए रुहो ॥ २७५ ॥

मया न स्वीयं दीप्य कान्तं मेव विदध कन्दो ।

न न इमे कन्दो मोहेन भगवो हः ।

जग्म न मया न चरुं नो मंगो धेन गोविमंताप्रो ।

पारंपरा दृढताये मो अरुदो मण्णन विन्दु । २७६ ॥

मया न मदा न चरुं न मंगो धेन गोविमंताप्रो ।

मातृगति इमावताये मोहेन भगवो विन्दु ॥

न निलोचमाण एनिप्रो न य रपमदो न पउमुदो ज्ञादो ।

न य मित्रीण ग्गो मो अरुदो मण्णन विन्दु । २७७ ॥

न नि लेनमया एनिप्रो न य रपमदो न पउमुदो ज्ञादो ।

न कश्चा एका मोहेन उच्यते मया ॥

तेषुत्तणवपयन्या अण्णे पेनन्धिकायउदय्या ।

आणाण् अविगमेण य महहमाणम्म मम्मनं ॥ २७८ ॥

तेनोक्तन उपदार्थान् अन्यानि पञ्चाभिरुपायउदय्यानि ।

आज्ञापयिगमेन च अरुधानस्य सम्यक्त्वं ॥

संकाइदोयरदियं णिम्मंकाइगुणउनुअं परमं ।

कम्मणिज्जरण्हिउं तं सुद्धं होइ मम्मनं ॥ २७९ ॥

शंकादिदोयरदिने नि.शंकादिगुणयुत परमे ।

कर्मनिर्जराहेतु तच्छुद्धं भवति सम्यक्त्वं ॥

रायगिहे णिम्मसंको चोगे णामेण अंजणो भणिओ ।

चंपाए णिवकंखा वणिधूवा णंतमइ णामा ॥ २८० ॥

राजगृहे निःशकस्योरो नाम्ना अंजनो भणिनः ।

चम्पाया निष्काक्षा वणिक्मुत्तानन्तमन्ती नाम ॥

भावमन्दः ।

जिह्मिदिगितो गया उदायनो नाम गुरुवे नयरे ।

वेद महारायनो अमृददिदी मुजेयना ॥ २८१ ॥

जिह्मिदिगितो गया उदायनो नाम गुरुवे नयरे ।

वेदनी मधुराननो अमृददिदीमन्तन्या ॥

ठिडिकणगुणपडतो मगदायनरम्मि वारिसेजो हु ।

हन्धिणपुरम्मि नयरे वण्डन्नं विण्डुणा रदयं ॥ २८२ ॥

ठिडिकणगुणमपुक्तो मगधाननो वारिसेजो हि ।

हन्धिणपुरे नगरं वामन्थं विण्डुणा रचितं ॥

उपगुणगुणगुणो जिहदतो नाम तामलित्तिनयरीए ।

बल्लपुमारिण कया पहायना वेय महाराए ॥ २८३ ॥

उपगुणगुणगुणो जिहदतो नाम तामलित्तिनयरी ।

बल्लपुमारिण कृता प्रभावना वेय महाराए ॥

परिमगुणअदनुयं मम्मन्तं जो परेइ दिदचित्तो ।

मो हवइ मम्मदिदी महमाणो वयत्थाण ॥ २८४ ॥

एतादशाएगुणयुक्तं सम्पत्तं यो धारयति ददचित्तः ।

त भवति सम्पत्तिः अदधानं पदार्थानां ॥

ते पुणु जीवाजीवा पुण्णं पावो य आमवो य तदा ।

संवग्गिज्जरणं पि य संघो मोक्खो य वव्हो ॥ २८५ ॥

ते पुन जीवाजीवो पुण्यं पापस्य आम्रपथ तथा ।

मवरो निजरापि च बन्धो मोक्षस्य नव भवन्ति ॥

१ वरवे. ख. । बल्लपुमारिणकारे तु हवइमवरे इति पाठः । हवइ

२ अथ क ते. ख. । ३ पुण्णं पावा य क. ।



जीवो जगताः निष्ठा उत्तमोत्तमैर्दृष्टो देवविभो यः ।  
कृता मोक्षा येनां न ह मुक्तो गदापटुमहः ॥ २८६ ॥

जीवेन्द्रादि निज उत्तमैर्दृष्टो देवविभो ।

कृता मोक्षा येनानां न ह मुक्तो गदापटुमहः ॥

पातनउत्तरात्तमो जीवस्मात् जो ह जीविभो पुनः ।  
जीवेष्ट महमानं जीवगुणगुणमभाष्यो ॥ २८७ ॥

पातनउत्तरात्तमो जीविभो यो हि जीवेष्ट महमानं ।

जीवति वर्तमाने जीवगुणगुणमभाष्य ॥

पञ्चाक्षरं वि नम्य हृदिता आरंभि देहमदणम्मि ।  
अधुना पुन दिष्टं देहस्य विनामले नम्यं ॥ २८८ ॥

पञ्चाक्षरं वि नम्य हि हृदि आरंभि देहमदणम् ।

अधुना पुन दिष्टं देहस्य विनामले नम्यं ॥

सायारो अणयारो उवश्रोगो द्विद्विमेयसंजुनो ।  
सायारो अद्विद्वो चउप्ययारो अणयारो ॥ २८९ ॥

सायारोऽनाकर उपयोगो द्विद्विमेयसंजुनः ।

सायारोऽद्विद्वो चउप्ययारोऽनाकर ॥

मइमुइउवद्विद्विहंगा अण्णाणजुत्ताणि निण्णि जाणाणि ।  
सम्मण्णाणाणि पुणो केवलद्विद्विहंगा पंचेव ॥ २९० ॥

मइमुइउवद्विद्विहंगा अण्णाणजुत्ताणि निण्णि जाणाणि ।

सम्मण्णाणानि पुनः केवलद्विद्विहंगा पंचेव ॥

मद्विषाणं गद्विषाणं उद्वही मणपञ्जये च केवलये ।

तिष्णि मया उन्नीमा मई सुयं पुंण मारसंगमयं ॥ २९१ ॥

मतिहाने धुनज्ञानमवाधिः मनःपर्ययः च केवले ।

प्रोणि सत्तानि पद्दितान् मतिः, श्रुतं पुनः द्वादशाङ्गगतं ॥

देमावदि परमावदि मज्जावदि अवदि होइ तिन्मेया ।

भवगुणकारणभूया णामज्जा होइ नियमेण ॥ २९२ ॥

१ सुयं च वा. क । २ अस्माद्भाषासूत्रादये स-पुस्तके ईदृशाङ्को वर्तते ।

अत्र मज्जान्तरादणमवयमाह—

अद्वयं सम्बन्धे देवममर्तं सम्बन्धे मतं ।

अतस्त्वं तत्त्वविज्ञाने कुमतिर्मन्वते सुपै ॥ १ ॥

सर्वलयासने देहा वृत्ताद्येषु सदा सतिः ।

ममसति कुमुधेष्टा भुतो स करोऽधमः ॥ २ ॥

अथ जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे भावेक्षण्ये अदिच्छत्रपुरे ब्राह्मणः त्रिवर्या नाम  
महानिबन्धोर्वेत्ता विभंगावधिर्लोकज्ञः । एवदा त्रिपुरक्षेत्रे निब्रपुत्रस्वाङ्गा दत्ता—  
समीपे त्वमोषमाश्रित्य कृष्णधृग एकरिणश्चि, एवमैवासादन्विता क्षीमेणागच्छ  
हे पुत्र ! । बद्धचस्त्रैव ज्ञातः, एतत्तमूहं दृष्ट्वा विस्मये गतः, पुनर्दिशावलोचनं  
कृत्वा तस्मिन् स्थाने सुनि बद्धा ममरुद्धा कृत्वा वृष्टयि स्म—भगवन् ! एत-  
न्निबन्धो कुम्भत्पार्ष्णिं स्थितो मतिशः कथं ज्ञातः ! ज्ञानप्रभावात्सुनिष्कवान्—तत्र  
त्रिपुरविभंगावधिः लोकाः, अर्धव्याप्येव आवाप्ति । सुनिश्चये भुक्ता ॥ वेगस्त-  
त्रैव गात्वा ममरुद्धा अनङ्गमुपविष्टः । स विनर्द वृष्टयि—तस्मिन् स्थाने कि-  
कोऽपि मानवकः अस्ति । स कथयति न हि । पुत्रः कथयति—एतत्तमूरिणश्चि,  
कोऽपि यस्मिंस्तस्मिं किं वा नास्तीति । तदुच्यते भुक्त्वा सुदुर्मुदुरवलोचनं तेनोक्तं एवः  
स एव तिष्ठति नाम्नः कथिन् । सुदुर्मुदुरवलोचनं भुक्त्वा क्षीमेव सुनिश्चयो गतः ।  
सुनिरार्षे सुनिरभूरः । स्वयं तव । स विज्ञो रीरेण सुखा मरदं गतयेति,  
विभंगावधिरेति ।

२९१ भाषासूत्रादवापि स-पुस्तके व्याख्या वर्तते । सा पात्रं मोद्धता । तत्पा-  
र्यत्रावर्तमानिकादी वा पाठः ज्ञानार्थं निबन्धे न एवात्रोक्तिसहितः वर्तते, अतः  
तत्रैवावलोचनीय इति ।

देवादि-पुष्पादिः सर्ववि-भक्ति-प्राप्ति-विधिः ।

भक्त्यापत्त्यायु-कृत्यान्तो मन्त्रि-विधिः ॥

मन्त्राणां च हृदि गीतान्तर्गतं नन्दनं गायनं ।

केवलगायं पुराणं गन्तव्यं तन्मन्त्रं निर्वृत्तं ॥ २९३ ॥

मन्त्रं गन्तव्यं विधि-कृत्यान्तो नन्दनं गायनं ।

केवलगायं पुराणं गन्तव्यं तन्मन्त्रं निर्वृत्तं ॥

एतौ अद्वययोगो गायनप्रयोगो हृदोऽप्ययम् ।

पञ्च अक्षरम् आर्द्रं केवलमदिप्रो अगायाम् ॥ २९४ ॥

एतौऽद्वययोगो गायनप्रयोगो हि भवति साक्षात् ।

पञ्च अक्षरम् आर्द्रं केवलमदिप्रो अगायाम् ॥

जन्म भवे जं देहं तन्मन्त्रं भवे तन्मन्त्रप्रो अगायाम् ।

संहारविन्यगुणो केवलप्राप्तिः उदितो ॥ २९५ ॥

जन्म भवे यो देहं तन्मन्त्रं भवे तन्मन्त्रप्रो अगायाम् ।

संहारविन्यगुणो केवलप्राप्तिः उदितः ॥

जो कृता मो भुक्ता व्यवहारगुणेण होइ कम्मम् ।

ण हृ निच्छगुण भणिप्रो कृता भोक्ता य कम्ममाणं ॥ २९६ ॥

यः कर्ता ॥ भोक्ता व्यवहारगुणेन भवति कर्मणः ।

न तु निश्चयेन भणितः कर्ता भोक्ता च कर्मणः ॥

कम्ममलच्छादो वि य ण भुयंइ मो चेयणगुणं किं पि ।

जोणीलकरगुणो वि य जह कणयं कदमे सिद्धं ॥ २९७ ॥

कर्ममलच्छादितोऽपि च न जानाति चेतनगुणं किमपि ।

योनिवृक्षगतोऽपि च यथा कनक कदमे सिद्धं ॥

मुहमो अमुनिवेतो यष्णंगोपाहफामपग्निहीणो ।

पुगलमज्झिगओ वि य ण य मिंल्लइ णिययमम्भावं ॥२९८॥

गृह्मोऽमृतिमान् यष्णंग्नादिरसोपरिहीनः ।

पुगलमध्यगतोऽपि च न च मुच्यति निजकदम्भावं ॥

मज्झांगेषुद्रुगई विदिसं परिहरिय मइचउवणेण ।

गच्छेइ कम्मजुणो मुद्धो पुण रिडुगई ज्ञाई ॥ २९९ ॥

स्वभावेनोर्ध्वगतिः विदिता परिहृत्य गतिचतुर्थेन ।

गच्छति कर्मयुक्तः शुद्धः पुनः ऋजुगतिं याति ॥

पाणिपिमुत्ता लंगलि पंकगई होइ तइ य पुण तइया ।

कम्मइयकापजुचो दो तिण्णि य कुणइ वंकाई ॥ ३०० ॥

पाणिपिमुत्ता लंगलिका वक्रगतिः भवति तथा च पुनः तृतीया ।

कार्मेणकामयुक्तः द्वित्रीणि करोति वक्राणि ॥

तइए ममए गिण्णइ चिरकयकम्मोदण सो देहं ।

सुग्गरणाग्गपाणं तिरिथाणं पेव लेसवमो ॥ ३०१ ॥

तृतीये ममये गृह्णति चिरकृतकर्मोदयेन स देहं ।

सुखरत्नारवाणां तिरथां पेव लेसववशः ॥

मुहदुयरां मुंजंतो हिंइ जौणीसु सयमहस्सेसु ।

एइंदियविपलिदियसपलिदियपज्जपज्जचो ॥ ३०२ ॥

१ क्वचिच्छाई ख. । २ मे. छ. । ३ तत्तत्तवेद्रुगई य. । म्भारवभावे  
मोर्ध्वगतिः । ४ तिदो ख. ।

मुखदुःखं भुञ्जानः हिण्डते योनिषु शतसहस्रेषु ।

एकेन्द्रियविकलेन्द्रियसकलेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तः ।

जीवः ।

होति अजीवा दुविहा रूवारूवा य रूवि चउमेया ।

खंधं च तहा देसो खंधपदेसो य परमाणु ॥ ३०३ ॥

भवन्ति अजीवा द्विविधा रूप्यरूपाश्च रूपिणश्चतुर्भेदाः ।

स्कन्धश्च तथा देशः स्कन्धप्रदेशश्च परमाणुः ॥

णिहिलावयं च खंधा तस्स य अद्धं च बुच्चदे देसो ।

अद्धद्धं च पदेसो अविभागी होइ परमाणु ॥ ३०४ ॥

निखिलावयवश्च स्कन्धः तस्य चार्धं च उच्यते देशः ।

अर्धार्धं च प्रदेशोऽविभागी भवति परमाणुः ॥

धम्माधम्मागासा अरूविणो होति तह य पुण कालो ।

गइठाणकारणावि य उग्गाहण वत्तणा कमसो ॥ ३०५ ॥

धर्माधर्माकाशाः अरूपा भवन्ति तथा च पुन काठः ।

गतिस्थानकारणमपि चावगाहनस्य वर्तनायाः क्रमशः ॥

जीवाण पुगगलाणं गइप्पवत्ताण काणं धम्मो ।

जह मच्छाणं तोयं थिरभूया णेव मो णेई ॥ ३०६ ॥

जीवानां पुद्गलानां गतिप्रवृत्तानां कारणं धर्मः ।

यथा मत्स्यानां तोयं स्थिरीभूतान् नेत्रेण नयति ॥

टिदिकारणं अधम्मो विसामठाणं च होइ जह छाया ।

पहियाणं रुक्खस्स य मच्छंतं णेव मो धरई ॥ ३०७ ॥

स्थितिकारणं अधर्मः विघ्नमस्थानं च भवति यथा छाया ।

पक्षिकानां वृक्षस्य च गच्छतः नैव स धरति ॥

सन्वेमि द्रव्याणं अवयासं देहं तु आयासं ।

तं पुणु द्विविहं भणियं लोयालोयं च जिणसमणं ॥ ३०८ ॥

सर्वेदां द्रव्याणामवकाशं ददाति तत्साक्षात् ।

तत्पुनः द्विविधं भणितं लोकालोकं च भिनसमये ॥

वृत्तगुणवृत्तानां द्रव्याणं द्वौ कारणं कालो ।

मौ द्विविहमेयमिण्णो परमद्वो द्वौऽववहारो ॥ ३०९ ॥

वर्तनागुणवृत्तानां द्रव्याणां भवति कारणं काळः ।

न द्विविधभेदभिनः परमार्थो भवति व्यवहारः ॥

परमद्वो कालाणु लोपपदेसे हि संठिया णिचं ।

एक्केवक्के एक्केवक्का अपण्णमा रयणरासिज्व ॥ ३१० ॥

परमार्थः कालाणवः लोकप्रदेशे हि संस्थिता निव्यं ।

एकैकस्मिन् एकैका अप्रदेशा रत्नानां राशिरिव ॥

वृत्तकालो समग्रो पुद्गलपरमाणुवाण संज्ञाग्रो ।

व्यवहारस्त य मुखो उप्पण्णो तीद भावी म ॥ ३११ ॥

वर्तनाकाळः समयः पुद्गलपरमाणूनां संज्ञातः ।

व्यवहारस्य च मुख्यः दृश्यमानोऽतीतो भावी सः ॥

तेमिं पि य ममयाणं संसारहियाण आवली होई ।

संखेज्जावलिगुणिओ उस्सामो होई जिणदिहो ॥ ३१२ ॥

तेषामपि च समयाणां संख्यारहितानां आवली भवति ।

संख्यातावलीगुणितं वञ्छासो भवति भिनदृष्टः ॥

सत्तुस्तासे थोओ सत्तयोएहिं होइ लओ इक्को ।  
 अहत्तीसद्वलवा णाली वेणालिया मुहुचं तु ॥ ३१३ ॥  
 सप्तोच्छ्वासेन स्तोकः सप्तस्तोकैः भवति छत्र एकः ।  
 अष्टत्रिंशदर्धलवा नाली द्विनालिका मुहुत्तस्तु ॥  
 तीसमुहुत्तो दिवसो षण्णदहदिवसेहि होइ पक्खं तु ।  
 विहि पक्खेहि य मासो रिउ एक्का वेहिं मासेहिं ॥ ३१४ ॥  
 त्रिंशन्मुहुर्तं दिवसं पंचदशदिवसैः भवति पक्षस्तु ।  
 द्वाभ्यां पक्षाभ्यां च मासः ऋतुरेको द्वाभ्यां मासाभ्या ॥  
 रिउतियभूयं अयणं अयणजुयलेण होइ वरिसेक्को ।  
 इय ववहारो उत्तो क्रमेण विद्धिगओ विविहो ॥ ३१५ ॥  
 ऋतुत्रिभूतमयनं अयनयुगलेन भवति वर्ष एकः ।  
 एष व्यवहार उक्तः क्रमेण वृद्धिगतो विविधः ॥  
 एयं तु दच्चलक्कं जिणेहि पंचत्थिकाइयं भणियं ।  
 वज्जिय कार्य कालो कालस्स पएसयं णत्थि ॥ ३१६ ॥  
 एतत्तु द्रम्यपट्ठकं त्रिनैः पंचास्तिकाधिकं भणितं ।  
 वर्जयित्वा कार्य कालं कालस्य प्रदेशो नास्ति ॥  
 जं पुण सूवी दव्वं गंधरसफासवण्णसंजुत्तं ।  
 लहिउण जीवचिह्वा कारणं कम्मबंधस्स ॥ ३१७ ॥  
 यत्पुना रूपि द्रव्यं गन्धरसस्पर्शवर्णसंयुक्तं ।  
 लब्ध्वा जीवस्थितं कारणं कर्मवन्वस्य ॥

सम्मत्तगुदवर्हि य कमायउवमणगुणसमाउत्तो ।  
जो जीयो सो पुण्यं पावं चीवरीयदोसाओ ॥ ३१८ ॥

सम्पत्त्वधुतावतेः य कदापोपशमनगुणसमायुक्तः ।  
यो जीवः न पुण्यं पापः विपरीतदोस्तः ॥

पुण्यपापी ।

गिरिणिग्मउणद्वाहो पविमइ सरम्मि अहाणवरयं ।  
सहिउम जीवचिहा तह कम्मं भावि आसवई ॥ ३१९ ॥

गिरिनिर्गतनदीप्रवाहः प्रविशति सरसि यथानवरतं ।  
तम्पवा जीवस्थितं तथा कर्म भावि आसवति ॥

आसवइ सुहंण मुहं असुहं आमवइ असुहजोणण ।  
अह णइजलं सलाण समलं वा णिम्मलं विसई ॥ ३२० ॥

आस्रवति शुभेन शुभं अशुभमास्रवति अशुभयोगेन ।  
यथा नदीजलं तद्भागे समलं वा निर्मलं विशति ॥

आसवइ जं तु कम्मं मणवयकाएहि रायदोसेहि ।  
तं संवरइ णिरुत्तं तिगुचिगुत्तो णिराळंवो ॥ ३२१ ॥

आस्रवति यत्तु कर्म मनवचनकाये रागद्वेषैः ।  
तन्महृणोति निरुक्तं त्रिगुतिगुप्तो निराटम्बः ॥



जा संकल्पवियणो ता कम्मं अमुहमुहयदायारं ।  
लद्धे सुद्धमहावे सुसंवरो उहयकम्मम्मं ॥ ३२२ ॥

यावन् संकल्पवियणः तावन् कर्म अमुममुमदाय ।  
लब्धे शुद्धस्वभावे सुसंवर उभयकर्मणः ॥

णट्ठे मणसंकप्पे इंदियवावाग्वज्जिण जीवे ।  
लद्धे सुद्धमहावे उभयम्मस य संवरो होई ॥ ३२३ ॥

नष्टे मनःसंकल्पे इन्द्रियव्यापारवर्जिते जीवे ।  
लब्धे शुद्धस्वभावे उभयस्य संवरो भवति ॥

आसन्न-संवरो ।

जीवकम्माण उहयं अण्णोण्णं जो पएसपवेसो हु ।  
सो जिणवरहिं वंधो मणिओ इय विगयमोहेहिं ॥ ३२४ ॥

जीवकर्मणोऽहमयोरन्योन्यः यः प्रदेशप्रवेशस्तु ।  
स जिनवरः बन्धो भणित इति विगतमोहेः ॥

जीवपएसवैक्केवके कम्मपएसा हु अंतपरिहीणा ।  
होंति घणा णिविडभूया सो वंधो होइ णायव्वो ॥ ३२५ ॥

१ अस्य व्याख्या स्व-पुस्तके । यावन्काल बहिर्विषये देहपुत्रकलत्रादौ ममेति  
रूपं संकल्पं करोति अभ्यन्तरे हर्षवेयादरूपं विहन्तं च करोति तावन्कालमन-  
न्तज्ञानादिममृद्विरूपमात्मानं हृदये न जानाति । यावन्कालमिच्छयुं आत्म-  
हृदये न स्मरति तावन्कालं शुभाशुभजनकं कर्म करोति ।

जीवप्रदेशो एकैकस्मिन् कर्मप्रदेशा हि अन्तरिर्होनाः ।

भवन्ति यथा निविद्धभूताः स वंधो भवन्ति हातव्यः ॥

अन्ये ह्य अणादभूतो बंधो जीवस्य विविधकम्मेण ।

तन्मोदण्य जायते भावो पुनः शब्दोदोममभो ॥ ३२६ ॥

अण्यनादिभूतो बन्धो जीवस्य विविधकर्मणा ।

तन्मोदयेन जायते भावः पुनः शब्दोदोममभः ॥

भावेन तेन पुनरपि अण्ये बह्वः पुन्यता ह्य लग्नन्ति ।

जह तुप्तिपयः(प)त्तम् य निविद्धा रेणुज्व लग्नन्ति ॥३२७॥

भावेन तेन पुनरपि अन्ये बहवः पुन्यता हि लग्नन्ति ।

यथा पृतपात्रस्य च निविद्धा रेणवो लग्नन्ति ॥

एककर्ममण्य बद्धं कर्म जीवेन सप्तमेण हि ।

परिणयते आउकर्मं बद्धं भूयाउसेसेण ॥ ३२८ ॥

एककर्ममयेन बद्धं कर्म जीवेन सप्तमेऽः ।

परिणमन्ति आयु कर्म बद्धं भूतायुःसेसेण ॥

मो बंधो यउमेओ जायव्यो होर मुत्तगिदिहो ।

ययडिदिदिअणुभायो ययसर्वंधो पुरा कदिओ ॥ ३२९ ॥

स बन्धधनुर्मेदो हातव्यो भवन्ति सूत्रनिर्दिष्टः ।

प्रवृत्तिस्थित्यनुभागप्रदेशबन्धः पुरा कथितः ॥

जाणाण दंसणाण आवरणं वेयणीय मोहयियं ।

आउस्स णाम गोदं अंतरायाणि ययडीओ ॥ ३३० ॥

ज्ञानानां दर्शनानां आवरणं वेदनीयं मोहनीयं ।

आयुष्कं नाम गोत्रे अन्तरायः प्रवृत्तयः ॥

णाणावरणं कर्म पंचविहं होइ मुत्तणिदिहं ।

जह पडिमोवरि खित्तं छायाणयं होइ कप्पडयं ॥ ३३१ ॥

ज्ञानावरणं कर्म पंचविधं भवति मूत्रनिर्दिष्टं ।

यथा प्रतिमोपरि क्षितं छादनकं भवति कर्षटकम् ॥

दंसणआवरणं पुण जह पडिहारो विणिवइ वारम्मि ।

तं णवविहं पउत्तं फुडत्थवाईहिं सुत्तम्मि ॥ ३३२ ॥

दर्शनावरणं पुनः यथा प्रतिहारो वारयति द्वारे ।

तन्नावविधं प्रोक्तं स्फुटवादिभिः मूत्रे ॥

मोहेइ मोहणीयं जह मदिरा अहव कोदमां पुरिसं ।

तह अडवीसविभिण्णं णायच्चं जिणुवएसेण ॥ ३३३ ॥

मोहयति मोहनीयं यथा मदिरा अथवा कोदवं पुरुषं ।

तथा अष्टाविंशतिविभिन्नं ज्ञातव्यं जिनोपदेशेन ॥

महुलित्तखग्गसरिसं दुविहं पुण होइ वेयणीयं तु ।

सायामायविभिण्णं मुहदुक्खं देइ जीवस्स ॥ ३३४ ॥

मधुलित्तखद्गसदृशं द्विविधं पुनः भवति वेदनीयं तु ।

सातासातविभिन्नं मुखदुःखं ददाति जीवाय ॥

आऊ चउप्पवारं मुरणारयमणुयतिरियगईवद्धं ।

हडिखित्तपुरिसतुल्लं जीवे भवधारणममत्थं ॥ ३३५ ॥

आयुः चतुष्प्रकारं मुरनारकमनुष्यतिर्वग्ननिश्चयं ।

हडिखित्तपुरुषतुल्यं जीवे भवधारणसमर्थं ॥

निगपटं च रिचिने णाणाणामेहिं वत्तणं णामं ।  
नेणवदं संरगुणियं मद्ववादमरीरआईहिं ॥ ३३६ ॥

चित्रपटवत् विचित्रं नानानामभिः वर्तने नाम ।  
त्रिभुजिः मत्पुण्यिने तन्निष्ठातिशयीभावेभिः ॥

गोदं कुलालमरिसं निचुणकुलेसु पायणे दण्डं ।  
घटरजणादपरणे कुम्भकारो जहा मिउणो ॥ ३३७ ॥

गोत्रं कुलात्मदत्तं नीचोद्युतेषु प्रायणे दक्षे ।  
घटरजनादिपरणे कुम्भकारो यथा निपुणः ॥

जह भंद्यारिपुरिमो धणं निवारैदं रादणा दिण्णं ।  
तह अंतरायकम्मं निवारणं कुण्णदं लद्धीणं ॥ ३३८ ॥

यथा भाण्डागाग्निपुर्यः धने निवारयति राज्ञा दत्तं ।  
तथान्तरायकर्म निवारणं करोति खम्भीनां ॥

सं पंचमेयउत्तं दाणे लाहे च भोइ उवभोए ।  
तह वीरिएण मणियं अंतरायं जिणिदेहिं ॥ ३३९ ॥

तत्पञ्चभेदयुक्तं दाने लाभे च भोगे उपभोगे ।  
तथा वीर्येण मणितं अन्तरायं विनेद्भिः ॥

एतो पयडीवंधो अणुमागो होइ तस्य मत्तीणं ।  
अणुभवणं जं तीवे' तिव्वं मंदे' मंदाणुस्त्वेण ॥ ३४० ॥

एषः प्रकृतिबन्धोऽनुभागो भवति तस्य शक्त्याः ।

अनुभवनं यत्तीव्रे तीव्रं मन्दे मन्दानुरूपेण ॥

प्रकृत्यनुभागबन्धो ।

तिष्ठं खलु षट्माणं उक्कस्सं अंतराड्यस्सेव ।

तीसं कोडाकोडीसायारणामाणमेव ठिदी ॥ ३४१ ॥

तिसृणां खलु प्रथमानामुक्कटमन्तरायस्य च ।

त्रिशत्कोटाकोटिसागरनाम्नामेव स्थितिः ॥

मोहस्स सत्तरी खलु वीसं पुण होइ णामगोत्तस्स ।

तेत्तीससागराणं उवमाओ आउसस्सेय ॥ ३४२ ॥

मोहस्य सप्ततिः खलु त्रिशतिः पुनर्भवति नामगोत्रयोः ।

त्रयस्त्रिंशत्सागराणां उपमा आयुष एव ॥

उक्कटम् ।

चारसय वेयणीए णामागोदे य अह य मुहुत्ता ।

मिष्णमुहुत्तं तु ठिदि सेसाणं सा वि पंचण्हं ॥ ३४३ ॥

द्वादश वेदनीये नामगोत्रयोश्च अष्टौ मुहूर्ताः ।

भिन्नमुहूर्तसु स्थितिः शेषाणां सापि पंचानां ॥

अथन्या, इति स्थितिवन्धः ।

पुन्यकयकम्ममदर्थं पिग्गाग मा पुणो हवे दुरिदा ।  
 पटमा विवायजाया विट्ठिदा अविवायजाया य ॥ ३४४ ॥  
 इयंजणव मेमट्ठने निज्जेता मा पुन भवन्ति द्विग्गिदा ।  
 इयमा विवायजाया द्वितीया अविवायजाया च ॥  
 कालेण उदाण्ण य पचन्ति जहा पणम्मुरिक्कत्ताहं ।  
 नह कालेण कयेण य पचन्ति कयाहं कम्माहं ॥ ३४५ ॥  
 कातेनोपायेन च पचन्ति यथा वनस्पतिकट्टानि ।  
 तथा कालेन तपसा च पचन्ति कृतानि कर्माणि ॥

निर्जरा ।

णिम्मोस कम्ममुक्खरो मो मुक्खरो जिणवरेट्ठि पण्णसो ।  
 रायदोताभाये भदायथक्कम्म जीरस्म ॥ ३४६ ॥  
 निःशेषकर्ममोक्षः स मोक्षः जिनवरे, प्रज्ञतः ।  
 रागद्वेषाभावे स्वभावस्थितिरस्य जीवस्य ॥  
 मो पुण दुरिदां भणिओ एक्कदेमो य मय्यमोरखो य ।  
 देमो चट्ठपाइग्गण मय्यो णिम्मोमणामम्मि ॥ ३४७ ॥  
 स पुन, द्विग्गिधो भणिन एक्कदेशश्च सर्वमोक्षश्च ।  
 देहा, चतुर्पातिशुभे सर्वः निःशयनाशे ॥

सोऽह ।

एण मत्तपयाग जिणदिदा भासिया मए तथा ।  
 मएह जो हु जीयो मम्मादिही हवे सो हु ॥ ३४८ ॥

एषः प्रकृतिबन्धोऽनुभागो भवति तस्य शक्त्याः ।

अनुभवने यत्तीव्रे तीव्रं मन्दे मन्दानुरूपेण ॥

प्रकृत्यनुभावरूपौ ।

तिष्ठं खलु पदभाणं उक्कस्सं अंतराद्यस्सेव ।

तीसं कोडाकोडीसाधारणामाणमेव ठिदी ॥ ३४१ ॥

तिसृणां खलु प्रथमानामुत्कृष्टमन्तरायस्य च ।

त्रिंशत्कोटाकोटिसागरनाम्नामेव स्थितिः ॥

मोहस्स सत्तरी खलु धीसं पुण होइ णामगोत्तस्स ।

तेत्तीससागराणं उपमाओ आउसस्सेय ॥ ३४२ ॥

मोहस्य सप्ततिः खलु विंशतिः पुनर्भवति नामगोत्रयोः ।

त्रयस्त्रिंशत्सागराणां उपमा आयुष एव ॥

उत्कृष्टम् ।

चारसय वेयणीए णामागोदे य अह य मुहुत्ता ।

भिण्णमुहुत्तं ॥ ठिदि सेसाणं सा वि पंचण्हं ॥ ३४३ ॥

द्वादश वेदनीये नामगोत्रयोश्च अष्टौ मुहूर्ताः ।

भिन्नमुहूर्तस्तु स्थितिः शेषाणां सापि पंचानां ॥

अथन्या, इति स्थितिबन्धः ।

पुण्यकर्ममदणं निज्जग मा पुणो इवे दुविहा ।  
 पटमा विवायजाया विदिपा अविवायजाया य ॥ ३४४ ॥  
 पूर्वहतवर्मगतर्न निर्जता सा पुन भवति द्विदिपा ।  
 प्रथमा विपायजाया द्वितीया अविपायजाया य ॥  
 कालेण उपाण्ण य पपंति जहा वनस्सुईकलाइं ।  
 सह कालेण तथेण य पपंति कयाइं कम्माइं ॥ ३४५ ॥  
 काटेनोपायेन य पपन्ति यथा वनस्पतिपटानि ।  
 तथा काटेन तपमा य पपन्ति इतानि कर्माणि ॥  
 निर्जता ।

णिस्सेम कम्ममुक्खो मो मुक्खो जिणवरेहि पण्णसो ।  
 रापरौमामावे महावधवकस्म जीवस्स ॥ ३४६ ॥  
 निःशेषकर्ममोक्षः ॥ मोक्षः विनश्ये. प्रवृत्तः ।  
 रागद्वेषाभावे स्वभावस्थितस्य जीवस्य ॥  
 सो पुण दुविहो भणिओ एवकदेसो य सज्जमोक्खो य ।  
 देसो चउपाइएण सज्जो णिस्सेमशामम्मि ॥ ३४७ ॥  
 स पुनः द्विदिपो भणित एकदेशश्च सर्वमोक्षश्च ।  
 देशः चतुर्धातिशये सर्वः निःशयनारो ॥  
 मोक्षः ।

एण सत्तपयारा जिणदिहा भासिया मए तया ।  
 सदहइ जो ॥ जीरो सम्मादिही इवे सो हु ॥ ३४८ ॥



एषः प्रकृतिबन्धोऽनुभागो भवति तस्य शक्त्याः ।

अनुभवने यत्तीव्रे तीव्रं मन्दे मन्दानुरूपेण ॥

प्रकृत्यनुमागर्ध्वन्धौ ।

तिष्ठं खलु पट्टमाणं उक्कस्सं अंतराह्यस्सेव ।

तीसं कोडाकोडीसायारणामाणमेव ठिदी ॥ ३४१ ॥

तिसृणां खलु प्रयमानामुत्कृष्टमन्तरायस्य च ।

त्रिंशत्कोटाकोटिसागरनाम्नामेव स्थितिः ॥

मोहस्स सत्तरी खलु वीसं पुण होइ णामगोत्तस्स ।

तेत्तीससागराणं उवमाओ आउसस्सेय ॥ ३४२ ॥

मोहस्य सप्ततिः खलु त्रिंशतिः पुनर्भवति नामगोत्रयोः ।

त्रयस्त्रिंशत्सागराणां उपमा आयुष एव ॥

उत्कृष्टम् ।

चारसय वेयणीए णामागोदे य अह य मुहुत्ता ।

भिण्णमुहुत्तं तु ठिदि सेसाणं सा वि पंचण्हं ॥ ३४३ ॥

द्वादश वेदनीये नामगोत्रयोश्च अष्टौ मुहूर्ताः ।

भिन्नमुहूर्तस्तु स्थितिः शेषाणां सापि पंचानां ॥

अथन्या, इति स्थितिबन्धः ।

पुञ्चकपकम्ममट्ठणं जिह्जारा मा पुणो हवे दुविहा ।

पट्ठमा विषामजाया विदिया अविवायजाया य ॥ ३४४ ॥

पूर्वकृत्तकर्ममट्ठनं निर्वरा सा पुनः भवति द्विविधा ।

प्रथमा विपाकजाना द्वितीया अविपाकजाना य ॥

कालेण उपाग्णं य पचंति जहा वणस्सुईफलाहं ।

सह कालेण तथेण य पचंति कयाई कम्माई ॥ ३४५ ॥

काटेनोपायेन य पचन्ति यथा वनस्पतिफलानि ।

तथा काटेन तपमा य पचन्ति कृतानि कर्माणि ॥

निर्जरा ।

णिस्सेम कम्मसुवररो सो सुवररो जिणवरेहि पण्णत्तो ।

रायदोसाभावे सहावधवकस्म जीरस्स ॥ ३४६ ॥

निःशेषकर्ममोक्षः ॥ मोक्षः जिनवरेः प्रकृतः ।

रागद्वेषाभावे स्वभावस्थितस्य जीवस्य ॥

सो पुण दुविहो भणिओ एवकदेमो य सव्वमोवररो य ।

देमो चउपाइरण सव्वो णिस्सेसणामम्मि ॥ ३४७ ॥

स पुनः द्विविधो भणित एकदेशश्च सर्वमोक्षश्च ।

देशः चतुर्धातिशये सर्वः निःशयनाशे ॥

मोक्षः ।

एण सत्तपयारा जिणदिहा भासिया मण तच्चा ।

मददइ जो इ जीवो सम्मादिही हवे सो इ ॥ ३४८ ॥

९५: प्रहृतिबन्धोऽनुभागो भवति सम्प शनयाः ।

अनुभवने यत्तात्रे नीत्रं मन्दे मन्दानुस्येग ॥

प्रहृत्यनुभागबन्धो ।

तिण्डं खलु पदमाणं उक्कम्सं अंतगइयस्सेव ।

वीसं कोडाकोडीसायाग्न्यामाणमेव टिदी ॥ ३४१ ॥

तिसृणां खलु प्रयमानामुच्छटमन्तरायस्य च ।

विंशत्कोटाकोटिसागरनाम्नामेव स्थितिः ॥

मोहस्य सत्तरी खलु वीसं पुन होइ नामगोत्तस्य ।

तेत्तीससागराणं उवमाओ आउसस्सेय ॥ ३४२ ॥

मोहस्य सप्ततिः खलु विंशतिः पुनर्भवति नामगोत्रयोः ।

अपञ्चिदसागराणां उपमा आयुष एव ॥

उक्कम्सम् ।

वारसय वेयणीए नामागोदे य अठ य मुहुत्ता ।

भिण्णमुहुत्तं तु ठिदि सेसाणं सा वि पंचण्हं ॥ ३४३ ॥

द्वादश वेदनीये नामगोत्रयोश्च अष्टौ मुहुर्ताः ।

भिन्नमुहुर्तस्तु स्थितिः शेषाणां सापि पंचानां ॥

अपन्या, इति स्थितिवन्धः ।

हिताविरतिः सत्यं अदसपरिवर्जनं च स्पृष्टवत् ।

परमरिलापरिहारः परिमाणं परिग्रहस्यैव ॥

दिसिविदिसिषयसाधनं अणत्यदंढाण होइ परिहारो ।

भोओपभोयसंखा एए हु गुणज्या तिणि ॥ ३५४ ॥

शिविदिसत्त्वाह्वानं अन्तर्यदण्डानां भवति परिहारः ।

भोगोपभोगसंख्या एतानि हि गुणवतानि त्रीणि ॥

देवे धुवइ तियाले पच्चे पच्चे गुपोसहोयासं ।

अतिहीण संविभागो मरणंते कुणइ सल्लिहणं ॥ ३५५ ॥

देवान् स्तौति त्रिकाडे, पर्वणि पर्वणि सुप्रोपधोपवास ।

अतिधीनां संविभागः, मरणान्ते कतोति सद्देवता ॥

मधुमज्जमंसविरहं चाओ पुण उंकराण पंचण्डं ।

अहोदे मूलगुणा हवंति कुइ देसविरयम्मि ॥ ३५६ ॥

मधुमदमांसविरतिः त्यागः पुनः उदम्भराणां पंचानां ।

अहोदेते मूलगुणा भवन्ति सुष्टं देशविरते ॥

अहरउई साणं भइ अतिथिचि तम्हि गुणधाने ।

एहुआरंभपरिगाहजुत्तम्म य वत्थि तं धम्मं ॥ ३५७ ॥

आहारौघं ध्यानं भइ अस्तीति तस्मिन् गुणधाने ।

बह्वारम्भपरिग्रहस्य च नास्ति तदध्वम् ॥

धम्मोदएण जीवो अगुहं परिचयइ मुहगई सेई ।

कालेण सुखं मिइइ ईदियवलकाणं जाणि ॥ ३५८ ॥

१ अहोदे २ अ च ओइ ३ अ-गुणदे ।

शिवे कलत्रे विभवे तन्त्रे मौलये गृहे यत्र विहाय कोई ।

स्मर्यते पंचण्डं एवंचिते सत्तेसवा सा विदित्ता मुनीन्द्रैः ३ १ ८

एतानि सप्तप्रकाराणि विनष्टानि भाषितानि मया तत्रानि ।

श्रद्धाति यस्तु जीवः सम्यग्दृष्टिः भवेत् ॥ तु ॥

अविरियसम्मादिद्वी एसो उत्तो मया समामेण ।

एत्तो उड्डुं वोच्छं समासदो देमविरदो य ॥ ३४९ ॥

अविरतसम्यग्दृष्टिः एष उक्तः मया समामेन ।

इत ऊर्ध्वं वक्ष्ये समामतो देशविरतं च ॥

इत्यविरतगुणस्थानं चतुर्थं ।

पंचमयं गुणठाणं विरयाविरउत्ति णामयं भणियं ।

तत्थ वि खयउवसमिओ स्वाइओ उवसमो चेय ॥ ३५० ॥

पंचमकं गुणस्थानं विरताविरत इति नामकं भणितं ।

तत्रापि क्षायोपशमिकः क्षायिकः औपशमिकश्च ॥

जो तसवहाउविरओ णो विरओ तह य थावरवहाओ ।

एकसमयम्मि जीवो विरयाविरउत्ति जिणु कहई ॥ ३५१ ॥

यत्नसवधाद्विरतो नो विरतस्तथा च स्थावरवधात् ।

एकसमये जीवो विरताविरत इति जिनः कथयति ॥

इलयाइथावराणं अत्थि पवित्ति विरइ इयराणं ।

मूलगुणद्वपउत्तो बारहवयभूसिओ हु देसजई ॥ ३५२ ॥

इलादिस्थावराणामस्ति प्रवृत्तिरिति विरतिरितरेषां ।

मूलगुणाष्टप्रयुक्तो द्वादशव्रतभूषितो हि देशयतिः ॥

हिंसाविरई सच्चं अदत्तपरिवज्जणं च धूलवयं ।

परमहिलापरिहारो परिमाणं परिग्गहस्सेव ॥ ३५३ ॥

दिमाविनि. सद्यं अद्वयपरिवर्तनं च स्पृष्टम् ।

परमात्मपरितार परिमाणं परिमहादेव ॥

दिमिदिदिमिद्वयदानं अणत्तदंटाण होइ परिहाणे ।

भोओपभोयसंगरा एहं हु गुणप्यदा तिष्णि ॥ ३५४ ॥

दिमिदिद्वयदानं अनर्थदण्डानां भवति परिहारः ।

भोओपभोयसंगरा एतानि हि गुणव्यापिनी त्रीणि ॥

दंष्ट्रे पुषइ नियाले पण्ये पण्ये गुणोपदोषासं ।

अनिदीण संविभागो मरणंते कुणइ मन्लिहंणं ॥ ३५५ ॥

देवान् स्तौति त्रिकांशे, पर्वणि पर्वणि गुणोपदोषासं ।

अतिधीनां संविभाग, मरणान्ते करोति सहेतुनां ॥

मधुमज्जमंमविरदं चाओ पुण उंयराण पंचण्हं ।

अहेदं मूलगुणा हवंति पुइ देसविरयम्मि ॥ ३५६ ॥

मधुमज्जमंमविरतिः त्यागः पुनः उदम्बरानां पंचानां ।

अष्टावैते मूलगुणा भवन्ति सुष्टं देसविरते ॥

अहरउदं क्षाणं भदं अत्थिचि तस्मिह गुणटाणे ।

एहुआरंमपरिग्गहमुत्तम्मं य जत्थि तं धम्मं ॥ ३५७ ॥

आर्त्तगौदं ध्यानं भद्रं अस्तीति तस्मिन् गुणस्थाने ।

एहाम्भपरिमहमुत्तमं च नास्ति तद्वर्त्मम् ॥

धम्मोदण्ण जीवो अमुहं परिचयइ सुहमइ लेइ ।

कालेण सुखं मिहइ इंदियवलकारणं जाणि ॥ ३५८ ॥

१ आर्यामे ३५४ च ओकः अ-पुस्तके ।

मित्रे कष्टे विमर्शे तनूये संत्यजे गृहे यत्र विहाय मोहं ।

रमन्ते पंचपदं एवचित्ते सहेतुना सा विहिता सुधीनैः ॥ १ ॥

धर्मोदयेन जीवोऽशुभे परित्यजति शुभगतिं प्राप्नोति ।  
 कालेन सुखं मिळति इन्द्रियवल्कारणं जानीहि ॥  
 इष्टविओए अष्टं उप्पज्जइ तह अणिठसंजोए ।  
 रोयपकोवे तइयं णियाणकरणे चउत्थं तु ॥ ३५९ ॥  
 इष्टवियोगे आर्तं उत्पद्यते तथा अनिष्टसंयोगे ।  
 रोगप्रकोपे तृतीयं निदानकरणे चतुर्थं तु ॥  
 अट्टज्झाणपउत्तो बंधइ पावं णिरंतरं जीवो ।  
 मरिउण य तिरियगई को वि णरो जाइ तज्झाणे ॥  
 आर्तध्यानयुक्तो बध्नाति पापं निरन्तरं जीवः ।  
 मृत्वा च तिर्यग्गतिं कोऽपि नरो याति तद्व्यापने ॥  
 रुहं कसायसहियं जीवो संभवइ हिंसयाणंदं ।  
 मोसाणंदं विदियं तेयाणंदं पुणो तइयं ॥ ३६१ ॥  
 रुद्रं कषायमहितं जीवः संभवति हिंसानन्दं ।  
 मृयानन्दं द्वितीयं स्तेयानन्दं पुनस्तृतीयं ॥  
 हवइ चउत्थं ज्ञाणं रुहं णामेण रक्खणाणंदं ।  
 जस्म य माहप्पेण य णरयगईमायणो जीवो ॥ ३६२ ॥  
 भवति चतुर्थं ध्यानं रौद्रं नाम्ना रत्नानन्दं ।  
 यस्य च माहात्म्येन नरकगतिभाजनो जीवः ॥  
 गिहवाचाररपाणं मेहीणं इन्द्रियत्यपरिकल्पितं ।  
 अट्टज्झाणं जायइ रुहं वा मोहल्लज्झाणं ॥ ३६३ ॥  
 गृहध्यानात्मनो मोहिनामिन्द्रियार्थपरिकल्पितं ।  
 आनन्दध्यानं वापने रौद्रं वा मोहल्लज्झानां ॥  
 ज्ञाणेहि नेहि पावं उप्पणं नं मरइ मइसाणेण ।

प्राप्तेऽपि पदं तत्पदं तत्पदं भद्रप्राप्तेन ।

निरुद्धपदमपुनो देवपति ज्ञानमप्यस्य ॥

मदम्भं नवगते पुन धर्मं विनोद भोगपरिभ्रुको ।

विनिद धर्मं मेरु पुनगवि भोगं अहिन्द्राण ॥ ३६५ ॥

भद्रम्भं तत्पदं पुन धर्मं विनोदपति भोगपरिभ्रुक ।

विनिदधित्वा धर्मं मेरुने पुनगवि भोगान् पथेऽप्यस्य ॥

धम्मगज्ञानं भणियं आणापायाविषयविचयं च ।

संठारं विषयं तद् कथियं ज्ञानं ममासेन ॥ ३६६ ॥

धर्मप्याने भणितं आणापायविषयविचयं च ।

संठारविचयं तदा कथितं प्याने ममासेन ॥

छद्मव्यवपयम्या मम वि तयाई जिणवराणाण ।

चित्तं विमयविरतो आणाविषये तु तं भणियं ॥ ३६७ ॥

छद्मव्यवपयम्यान् सतापि तत्त्वानि त्रिनवराहया ।

चित्तपति विमयविरक्त आणाविषये तु तद्विनिन ॥

अगुहकम्मस्य जामो मुदम्म वा हवेइ केणुवाएण ।

इय चित्तंतम्म हवे अपापरिचयं परं ज्ञानं ॥ ३६८ ॥

अनुभवर्यणः नात अनुभय वा भवति केनोपायेन ।

एतच्चित्तपतः भवेदपायविचयं परं प्याने ॥

अगुहगुहम्म विगोओ चित्तं जीवाण चउमइगपाण ।

विषयविचयं ज्ञानं भणियं तं जिणवरिंदहिं ॥ ३६९ ॥

अनुभनुभस्य विपाकः चित्तपति जीवानामनुभगतिगतानां ॥

विषयविचयं प्याने भणितं सज्जिनरेन्द्रेः ॥



अहउडुतिरियलोणं चित्ते सपज्जयं ससंठाणं ।

विचयं संठाणस्स य भणियं ज्ञाणं समासेण ॥ ३७० ॥

अधउर्ध्वतिर्यम्भोके चिन्तयति सपर्ययं ससंस्थानं ।

विचयं संस्थानस्य च भणितं ध्यानं समामेन ॥

सुखं धम्मज्झाणं उत्तं तु पमायविरहिणं ठाणे ।

देमविरणं पमत्ते उवयारेणेय नायव्वं ॥ ३७१ ॥

सुखं धर्मध्यानमुक्तं तु प्रमादविरहिते स्थाने ।

देशविरते प्रमत्ते उपचारैर्नैव ज्ञातव्यं ॥

दहलस्यणसंजुत्तो अहवा धम्मोसि वणिओ सुत्ते ।

निंता जा तम्म हवे भणियं तं धम्मज्ञाणुत्ति ॥ ३७२ ॥

दशलक्षणसंयुक्तोऽथवा धर्म इति वर्णितः गूत्रे ।

निन्ता वा तस्य भवेत् भणितं तद्धर्मध्यानमिति ॥

अहवा वण्णुमहाओ धम्मं वण्णु पूणो य मो अप्पा ।

सापंतार्णं कहियं धम्मज्झाणं मुणिदेहिं ॥ ३७३ ॥

अथवा वस्तुस्वभावो धर्म वस्तु पुनश्च न आत्मा ।

ध्यायमानानां तन् कथितं धर्मजानं मुनीन्दैः ॥

तं कृद् दृष्टिं भणियं गालं नह पूणो अणालंय ।

मालंयं पंचदं परमेद्वीणं मरुयं तु ॥ ३७४ ॥

तच्छब्दं द्विविधं भणितं सादृश्यं तथा पुनश्चादृश्यं ।

मालंयं पंचानां परमेद्वीनां स्वरूपं तु ॥

इत्थिगममगण्णो अट्टमहापाटिहेमंजुत्तो ।

मियहिण्ण सिट्ठंतां सायन्तो अट्टपरमेद्वी । ३७५ ॥

हरिचितसमः शरणोऽष्टमहाप्रातिहार्यसंयुक्तः ।

सितकिरणेन विस्फुरन् ध्यातव्योऽर्हन्परमेष्ठो ॥

षट्पदकम्मपंधो अष्टगुणद्वो य लोचसिर्हरत्यो ।

सुद्धो णिचो मुहमो क्षायव्यो सिद्धपरमेही ॥ ३७६ ॥

नद्याष्टकर्मबन्धोऽष्टगुणस्थध लोकशिखरस्थः ।

सुद्धो नित्यः सूक्ष्मः ध्यातव्यः सिद्धपरमेष्टी ॥

छत्तीसगुणममग्नो णिचं आयरह पंचत्रायारो ।

सिस्साणुगहकुमलो भणिओ सो गूरिपरमेही ॥ ३७७ ॥

पट्टिशदृणसमः नित्यं आचरति पंचाचारं ।

शिष्यानुग्रहकुशलो भणितः स सूरिपरमेष्टी ॥

अज्ञावयगुणजुक्तो धम्मोपदेसयारि चरिषद्वो ।

णिस्सेसागमकुमलो परमेही पाठओ क्षाओ ॥ ३७८ ॥

अध्यापनगुणयुक्तो धर्मोपदेसकारी चर्यास्थः ।

निःशेषागमकुशलः परमेष्टी पाठको ध्येयः ॥

उगगतवतविपगसो तियालजोएण गमियअहरत्तो ।

सादियमोवरस्सपओ क्षाओ मो साधुपरमेही ॥ ३७९ ॥

उग्रतपस्वपितगात्रः त्रिकाङ्गयोगेन गमिताहोतवः ।

साधितमोक्षपथः ध्येयः स साधुपरमेष्टी ॥

एवं सं मालवं धम्मज्ज्ञाणं हवेइ णियमेण ।

क्षायंताणं जायइ विणिज्जरा अमुहकम्माणं ॥ ३८० ॥

एवं तत्मालवं धर्मध्यानं भवति नियमेन ।

ध्यायमानानां जायते विनिर्जरा अनुमूर्च्छनां ॥

जं पुणु वि णिरालंबं तं ज्ञाणं गयपमायगुणठाणे ।  
 चत्तगेहस्स जायइ धरियंजिणलिंगेरूवस्स ॥ ३८१ ॥  
 यत्पुनरपि निरालंबं तद्ध्यानं गतप्रमादगुणस्थाने ।  
 त्यक्तगृहस्य जायते धृतजिनलिंगरूपस्य ॥  
 जो भणइ को वि एवं अत्थि गिहत्थाण णिचलं ज्ञाणं ।  
 सुद्धं च णिरालंबं ण सुणइ सो आयमो जइणो ॥ ३८० ॥  
 यो भणति कोऽप्येवं अस्ति गृहस्थानां निश्चलं ध्यानं ।  
 शुद्धं च निरालंबं न मनुते स आगमं यतीनां ॥  
 कहियाणि दिट्ठिवाए पडुच्च गुणठाण जाणि ज्ञाणाणि ।  
 तस्मा स देसविरओ मुखं धम्मं ण ज्ञाएई ॥ ३८३ ॥  
 कथितानि दृष्टिवादे प्रतीत्य गुणस्थानानि जानीहि ध्यानानि ।  
 तस्मात् स देशविरतो मुख्यं धर्म्यं न ध्यायति ॥  
 किं जं मो गिहवंतो ग्रहिरंतरंगयपरिमिओ णिचं ।  
 बहुआरंभपउत्तो कह ज्ञायइ सुद्धमप्पाणं ॥ ३८४ ॥  
 किं यत् ॥ गृहवान् वाद्याभ्यन्तरग्रन्थपरिमितो नित्यं ।  
 बह्वारम्भप्रयुक्तः कथं ध्यायति शुद्धमात्मानं ॥  
 धरवानारा वेई कण्णीया अत्थि तेण ते मय्ये ।  
 ज्ञाणद्वियम्म पुरओ चिहंति निमीलियन्टिम्म ॥ ३८५ ॥  
 गृहव्यापाराणि क्रियन्ति कण्णीयानि सन्ति तेन तानि सर्वाणि ।  
 ध्यानभित्तस्य पुरतः तिष्ठन्ति निमीलितारणः ॥  
 अह टिंकुलिया ज्ञाणं ज्ञायइ अहवा ॥ मोरग, ज्ञाणी ।  
 मोवंतो ज्ञायव्यं ण टाइ चित्तम्म वियलम्म ॥ ३८६ ॥

अथ द्विकुण्टिकं ध्यान् ध्यायति अथवा स स्वयिति ध्यानी ।

स्वपतः ध्यातव्यं न तिष्ठति चित्ते त्रिकुले ॥

ज्ञाणाणं संताणं अहवा जाणइ तस्म ज्ञाणस्म ।

आलंघणरहियस्स य ण ठाइ चित्तं धिरं जम्हा ॥ ३८७ ॥

ध्यानानां सन्तानं अथवा जायते तस्य ध्यानस्य ।

आलंघनरहितस्य च न तिष्ठति चित्त स्थिरं यस्मात् ॥

तम्हा सो सालंघं ज्ञापठ ज्ञाणं पि गिहवई णिणं ।

पंचपरमेहीरुवं अहवा मंतवरुरं तेसिं ॥ ३८८ ॥

तस्मात् स सालंघं ध्यायन् ध्यानमपि गृहपतिर्नित्यं ।

पंचपरमेष्ठिरूपमथवा मंत्राक्षरं तेषां ॥

जइ भणइ को पि एवं गिहवावारेणु यट्ठमाणो वि

पुण्णे अम्ह ण कज्जं जं संसारे गुवाडैई ॥ ३८९ ॥

यदि भणति कोऽप्येव गृहव्यापारेषु वर्तमानोऽपि ।

पुण्येनास्माकं न कार्यं वत्संसारे गुपातयति ॥

मैट्ठुणसण्णारुट्ठो माणइ णवलवरुगुहमजीवाइं ।

इय जिणयरंहिं भणियं पज्झंतरणिग्गंधरुवेहिं ॥ ३९० ॥

मैथुनमैश्वर्यद्वयं यावति अनरण्यं दृश्यजीवान् ।

वत्तज्जिनरी, भणितं बाह्याभ्यन्तर्निर्गन्धरूपैः ॥

गेहे बहंतस्म य वाचारमयाइं मया कुणंतस्म ।

आमवइ कम्मममुहं अहरउदे परमम्म ॥ ३९१ ॥

गेहे वर्तमानस्य च व्यापारगतानि सदा कुर्वतः ।

आवरयति कर्मानुभं आर्तौदप्रहनस्य ॥

जं पुणु वि निरालंबं तं ज्ञाणं गयपमायगुणठाणे ।  
 चत्तगेहस्स जायइ धरियंजिणालिगंस्वस्म ॥ ३८१ ॥  
 यपुनरपि निरालंबं तद्वयानं गतप्रमादगुणस्थाने ।  
 त्यक्तगृहस्य जायने धृतजिनल्लिगस्स ॥  
 जो भणइ को वि एवं अत्थि गिहत्थाण णिच्चलं ज्ञाणं ।  
 सुद्धं च निरालंबं ण मुणइ सो आयमो जइणो ॥ ३८० ॥  
 यो भणाति कोऽप्येवं अस्ति गृहस्थानां निश्चलं ध्यानं ।  
 शुद्धं च निरालंबं न मनुने न आगमं यतीना ॥  
 कहियाणि दिट्ठिवाए पइच्च गुणठाण जाणि ज्ञाणाणि ।  
 तस्मा स देशविरओ मुखं धम्मं ण ज्ञाएई ॥ ३८३ ॥  
 कपितानि दट्ठिवादे प्रतीत्य गुणस्थानानि जानीहि ध्यानानि ।  
 तस्मात् स देशविरतो मुख्यं धर्मं न ध्यायानि ॥  
 किं जं सो गिहवंतो बहिरंतरंगयपरिमितो णिच्चं ।  
 बहुआरंभपउत्तो कह ज्ञायइ सुद्धमप्पाणं ॥ ३८४ ॥  
 किं यत् स गृहवान् वात्राम्यन्तरमन्यपरिमितो निव्य ।  
 बह्वारम्भप्रयुक्तः कथं ध्यायति शुद्धमात्मानं ॥  
 घरवावारा केई करणीया अत्थि तेण ते सव्वे ।  
 ज्ञाणद्वियस्स पुरओ चिट्ठंति णिर्मालियच्छिस्स ॥ ३८५ ॥  
 गृहव्यापाराणि कियन्ति करणीयानि सन्ति तेन तानि सर्वाणि ।  
 ध्यानस्थितस्य पुरतः तिष्ठन्ति निमीलिताक्षः ॥  
 अहं टिकुलिया ज्ञाणं ज्ञायइ अहंवा स मोवए ज्ञाणी ।  
 सोवंतो ज्ञायव्वं ण ठाइ चित्तम्मि वियलम्मि ॥ ३८६ ॥





आसणठारुं किचा सम्मत्तपुच्चं तु झाइण् अप्पा ।  
सिद्धिपंडलमज्झंत्यं जालासयजलियणियदेहं ॥ ४२८ ॥

आसनस्थानं कृत्वा सम्यक्पूर्वं तु ध्यायतु आत्मानं ।  
शिविमण्डलमध्यस्थं जालाशतम्बलितनिन्देहं ॥

पावेण सह सदेहं ज्ञाणे दज्झंत्यं रु चित्तंतो ।  
पंधउ संतीमुदा पंचपरमेष्ठिणामाय ॥ ४२९ ॥

पापेन सह स्वदेहं ध्याने दद्यमानं खलु चिन्तयन् ।  
यत्रातु शान्तिमुद्रां पंचपरमेष्ठिनामानं ॥

अमपरररे निवेमउ पंचगु ठाणेगु गिरमि धरिउण ।  
सा मुदा पुणु चित्तउ धाराहिं मवत्तपं अमयं ॥ ४३० ॥

अमृताक्षरे निवेशयतु पंचगु स्थानेषु शिरसि शृङ्गा ।  
तां मुद्रां पुनः चिन्तयतु धाराभिः स्वबद्धमृतं ॥

पावेण सह सरीरं दडुं जं आमि ज्ञाणजलणेण ।  
सं जार्यं जं छारं पवणालउ नेण भंतेण ॥ ४३१ ॥

पापेन सह शरीरं दग्धुं वत् आसीत् ध्यानगलनेन ।  
तज्जातं पक्षारं प्रक्षालयतु तेन मयेण ॥

पडिदिबमं जं पावं पुरिमो आगवद तिरिहजोण्ण ।  
तं गिरहद गिरुत्तं नेण ज्ञाणेण संजुत्तो ॥ ४३२ ॥

प्रतिदिबसं वपावं पुन्य आगवति तिरिधरोनेन ।  
तज्जिह्वति नि रोपं तेन ध्यानेन संयुक्तः ॥



तत्रापि विविधान् भोगान् नश्वरमवाननुयमान् परमान् ।

मुक्त्वा निर्विघ्नः संयमे चैव गृह्णाति ॥

तद्वं जडं चरमतणु चिरकयपुण्येण मिद्वाण्णियमा ।

पाविय केवलणाणं जहस्वाइयसंजयं सुद्धं ॥ ४२३ ॥

लब्धं यदि चरमतनु चिरकृतपुण्येन सिद्धयनि नियमान् ।

प्राप्य केवलज्ञान यथाख्यातसंयते शुद्धं ॥

तस्मात्सम्मादिद्वी पुण्यं मोक्षस्तस्मात् कारणं हवई ।

इय पाऊण गिहत्थो पुण्यं चायरउ जत्तेण ॥ ४२४ ॥

तस्मात्सम्यग्दृष्टेः पुण्यं मोक्षस्य कारणं भवति ।

इति ज्ञात्वा गृहस्थः पुण्यं चार्जयतु यत्नेन ॥

पुण्यस्तस्मात् कारणं कुट्ट पढमं ता हवई देवपूया य ।

कायव्वा भत्तीए सावयवग्गेण परमायं ॥ ४२५ ॥

पुण्यस्य कारणं सुष्ठं प्रथमं सा भवति देवपूजा च ।

कर्तव्या भक्त्या श्रावकवर्गेण परमया ॥

फासुयजलेण ण्हाइय गिवसिय वत्थाइं गंपि तं ठाणं ।

इरियावहं च सोहिय उवविसियं पडिमयासेणं ॥ ४२६ ॥

प्रासुकजलेन स्नात्वा निवेश्य वस्त्राणि गन्तव्यं तत्स्थानं ।

इर्यापथं च शोधयित्वा उपविश्य प्रतिमासनेन ॥

पुज्जाउवयरणाइ य पासे सण्णिहिय मंतपुब्बेण ।

ण्हाणेणं ण्हाइत्ता आचमणं कुणउ मंतेण ॥ ४२७ ॥

पूजोपकरणानि च पार्श्वे सन्निधाय मन्त्रपूर्वेण ।

स्नानेन स्नात्वा आचमनं करोतु मंत्रेण ॥

आसणठाणं किंचा सम्मत्तपुज्यं तु ज्ञाण अप्पा ।  
सिद्धिमण्डलमज्झंत्यं जालासयजलियणियदेहं ॥ ४२८ ॥

आसनस्थानं कृत्वा सम्यक्त्वपूर्वं तु ध्यायतु आत्मानं ।  
शिलिमण्डलमध्यस्थं जालासयजलियणियदेहं ॥

पावेण सह सदेहं ज्ञाणे दज्झंतवयं रु चित्तंतो ।  
पंचउ संतीमुदा पंचपरमेष्ठिणामाय ॥ ४२९ ॥

पापेन सह स्वदेहं ध्याने दद्यमानं खलु चिन्तयन् ।  
बभ्रातु शान्तिमुद्रां पंचपरमेष्ठिनामानं ॥

अमयकसुरे निवेशयतु पंचसु ठाणेसु शिरसि धरिऊण ।  
सा मुदा पुणु चित्तउ धाराहिं सवतयं अमयं ॥ ४३० ॥

अमृताक्षरे निवेशयतु पंचसु स्थानेषु शिरसि धृत्वा ।  
सां मुद्रा पुनः चिन्तयतु धाराभिः सवदमृतं ॥

पावेण सह मरीरं दड्ढं जं आसि ज्ञाणजलणेण ।  
हं जायं जं छारं पक्खालउ तेण भंतेण ॥ ४३१ ॥

पापेन सह शरीरं दग्धं यत् आसीत् ध्यानजलनेन ।  
तज्जातं यत्सारं प्रक्षालयतु तेन भंतेन ॥

पडिदिबसं जं पावं पुरिमो आसवद तिविहजोएण ।  
तं निरुहद निरुत्तं तेण ज्ञाणेण संमुत्तो ॥ ४३२ ॥

प्रतिदिबसं यत्पापं पुरुषः आत्मवति त्रिभिष्योगेन ।  
तन्निर्दहति निःशेषं तेन ध्यानेन संयुक्तः ॥

तत्रापि विविधान् भोगान् नगक्षेत्रभगाननुपमान् पगमान् ।

मुक्त्या निर्विण्णः संयतं चैव गृहानि ॥

तद्वं जडं चरमतणु चिरकयपुण्येण मिद्विषमा निधमा ।

पाविय केवलणाणं जहस्वाइयसंजयं मुद्वं ॥ ४२३ ॥

एवं यदि चरमतनु चिरकृतपुण्येन मिद्वपनि नियमान् ।

प्राप्य केवलज्ञानं यथाश्रयानसंयतं मुद्वं ॥

तस्मात्सम्मादिद्वी पुण्यं मोक्षस्य कारणं हवई ।

इय पाउण गिहस्यो पुण्यं चायरउ जनेण ॥ ४२४ ॥

तस्मान्मम्यगद्वेः पुण्यं मोक्षस्य कारणं भवति ।

इति ज्ञात्वा गृहस्थः पुण्यं चार्जयतु यत्नेन ॥

पुण्यस्तु कारणं फुडु पडमं ता हवई देवपूया य ।

कायव्या भत्तीए सावयवगेण परमायं ॥ ४२५ ॥

पुण्यस्य कारणं सुदृढं प्रथमं सा भवति देवपूजा च ।

कर्तव्या भक्त्या श्रावकवर्गेण परमया ॥

फासुयजलेण ण्हाइय निवसिय बत्थाइं मंषि तं ठाणं ।

इरियावहं च सोहिय उवविसियं पडिमयासेणं ॥ ४२६ ॥

प्रासुकजलेन स्नात्वा निवेद्य वस्त्राणि गन्तव्यं तत्स्थानं ।

इर्यापयं च शोधयित्वा उपविश्य प्रतिमासनेन ॥

पुजाउवयरणाइ य पासे सण्णिहिय मंतपुण्वेण ।

ण्हाणेणं ण्हाइत्ता आचमणं कुणउ मंतेण ॥ ४२७ ॥

पूजोपकरणानि च पार्श्वे सन्निधाय मंत्रपूर्वेण ।

स्नानेन स्नात्वा आचमनं कर्तुं मंत्रेण ॥

आमण्टाणं किंवा मम्मणपुज्जं तु सादणं अण्णा ।  
निदिमंदलमज्झेयं जालामयजलियणियदंदं ॥ ४२८ ॥

आमणाधानं इत्या मम्मणपुज्जं ॥ ध्यायतु आमणं ।  
शिशिमण्डलमध्यस्थं उवासात्तत्रावृत्तिनिबद्धं ॥

पावेण सह गदंदं सापे दग्धंतयं रु चितंतो ।  
बंधु संतीमुदा पंचपरमेष्ठिनामाय ॥ ४२९ ॥

पावेन सह गदंदं प्याने ददमानं गतु चिन्तयन् ।  
अत्रातु सात्तिमुदा पंचपरमेष्ठिनामाय ॥

अमयवारे निवेमउ पंचगु ठाणेगु गिरमि धरिउम ।  
ना मुदा पुणु चिन्तु धाराहिं सबतयं अमयं ॥ ४३० ॥

अमृताक्षरं निवेशयतु पंचगु स्थानेऽशिरसि धृत्वा ।  
तां मुदा पुनः चिन्तयतु धाराभिः स्रवदमृतं ॥

पावेण सह गरीरं दग्धं अं आगि साणजलणेण ।  
सं जायं अं छारं पवगालउ तेण मंतेण ॥ ४३१ ॥

पावेन सह शरीरं दग्धं यत् आसीत् प्यानउवलेन ।  
तज्जालं यत्तारं प्रशाळयतु तेन मंतेण ॥

पट्टिदिवमं अं पावं पुरिमो आमवह तिदिहजोण्ण ।  
मं जिहहह पिरुत्तं तेण ज्ञाणेण संजुधो ॥ ४३२ ॥

प्रतिदिवसं यत्पापं पुण्यः आग्यवति त्रिविधयोगेन ।  
तन्निर्दहति निःशेषं तेन प्यानेन संयुक्तः ॥

जं मुद्दो नं अप्पा मकायरहिओ य कुण्ड ण हु किं पि ।  
तेण पुणो णियदेहं पुण्णप्पवं चिनणं झार्जी ॥ ४३३ ॥

यः शुद्धः आत्मा स्वकापरहितध्वजोतिरिति न हि किमपि ।

तेन पुनर्निजदेहं पुण्यार्णवं विन्तयेन् ध्यानी ॥

उद्वाविऊण देहं संपुण्णं कोटिचन्द्रसंकासं ।

पच्छा मयलीकरणं कुणओ परमेट्ठिमंनेग ॥ ४३४ ॥

उत्पाप देह मभूर्ण कोटिचन्द्रसंकासं ।

पश्चाच्छकटीकरणं करोतु परमेश्वरमंत्रेण ॥

अहवा खिप्पंउ मा(से)हां णिस्सेउ करंगुलीहिं-वामेहिं ।

पाए णाही हियणं मुद्दे य सांसे य ठविऊणं ॥ ४३५ ॥

अथवा क्षिपेत्तु शेषा ! निवेशयेत्तु ! कराङ्गुलैः वानैः ।

पादे नाम्नां हृदये मुखे च शिरसि च स्थापयित्वा ॥

अंगे णासं किच्चा इंदो हं कप्पिऊण णियकाए ।

कंकणं सेहर मुदी कुणओ जण्णोपवीयं च ॥ ४३६ ॥

अंगे न्यासं कृत्वा इन्द्रोऽहं कल्पयित्वा निजकाये ।

कंकणं शंखं मुद्रिकां कुर्यात् यज्ञोपवीतं च ॥

पीठं मेहं कप्पिय तस्सोवरि ठाविऊण जिणपटिमा ।

पच्चकलं अरहंतं चित्ते भावेउ भावेण ॥ ४३७ ॥

पीठं मेहं कल्पयित्वा तस्योपरि स्थापयित्वा विनप्रतिमां ।

प्रत्यक्षं अर्हन्तं चित्ते भावयेत् भावेन ॥

कलसचउक्कं ठाविय चउमु वि कोणेमु णारपरिपुण्णं ।

घयदुद्धदहियमरियं णवमयदलछण्णमुद्दकमलं ॥ ४३८ ॥

■ जलधनुषकं सदाशिवं च वृत्तार्थं चोक्तं नीलशङ्करे ।

पुनश्च देवदेवता नमस्तस्मै ॥ ४४७ ॥

आचारिण्य देवे गुणवर्णनद्विषयसंग्रहे ।

एवमेव तमेव मन्त्राणां मन्त्रियमवाहये नमस्तस्मै च ॥ ४४८ ॥

आचार्य देव नृणां गुणवर्णनद्विषयसंग्रहे नमस्तस्मै च ॥

एवमेव तमेव मन्त्राणां मन्त्रियमवाहये नमस्तस्मै च ॥

दातुं पुत्रादयश्च धनिसंग्रहे तद् यत्तु यथा ॥

मन्त्रेणैव येनेति च यथायथायामनुपेक्षे ॥ ४४९ ॥

दातुं पुत्रादयश्च धनिसंग्रहे तद् यत्तु यथा ॥

मन्त्रेणैव येनेति च यथायथायामनुपेक्षे ॥

उपचारिण्य मन्त्रे अदिमेयं कुण्ड देवदेवस्य ।

गीर्णपयसीरद्विषयं सिरत अणुरकमेव त्रिणसीसे ॥ ४५० ॥

उद्यम्य मन्त्रान् अभिषेकं कुर्वाण देवदेवस्य ।

गीर्णपयसीरद्विषयं सिरत अणुरकमेव त्रिणसीसे ॥

गृह्यणं काण्ड पुनो अमलं मन्त्रोक्तं च वेदिना ।

मन्त्रहृणं च त्रिणिदे कुण्ड कस्सीरमलएहि ॥ ४५१ ॥

गृह्यणं काण्ड पुनो अमलं मन्त्रोक्तं च वेदिना ।

मन्त्रहृणं च त्रिणिदे कुण्ड कस्सीरमलएहि ॥

आलिङ्गितं सिद्धचक्रं पदे दन्वेहि निरुमुयंवेहि ।

गुणवर्णनसंग्रहे कुण्ड संपण्यं मन्त्रमन्त्रेहि ॥ ४५२ ॥

आलिङ्गितं सिद्धचक्रं पदे दन्वेहि निरुमुयंवेहि ।

गुणवर्णनसंग्रहे कुण्ड संपण्यं मन्त्रमन्त्रेहि ॥

सोलदलकमलमञ्जु अरिहं विलिहेह विन्दुकलमहियं ।  
यमेण वेढइत्ता उवरिं पुणु मायवीण ॥ ४४४ ॥

पोडशदलकमलमञ्जु अहं विलिखेन् विन्दुकलसहितं ।  
ब्रह्मणा वेष्टयित्वा उपरि पुनः मायावीजेन ॥

सोलससरेहि वेढहु देहवियप्पेण अट्टवग्गा वि ।  
अट्टहि दलेहि सुपयं अरिहंताणं णमो सहियं ॥ ४४५ ॥

षोडशस्वरैः वेष्टय देहविकल्पेन अष्टवर्गानपि ।  
अष्टभिर्दलैः सुपदं अर्हद्भ्यो नमः सहितं ॥

मायाए तं सत्त्वं तिउणं वेढेह अंकुमारुढं ।  
कुणह धरामंडलयं याहिरयं मिद्धचक्रस्स ॥ ४४६ ॥

मायया तत्सर्वं त्रिगुण वेष्टयेत् अंकुशारुढ ।  
कुर्यात् धरामण्डलक बाह्यं मिद्धचक्रस्य ॥

इय संसेवं कहियं जो पूयइ गंधदीपधूवेहिं ।  
कुसुमेहि जवइ णियं सो हणइ पुराण्ये पायं ॥ ४४७ ॥

इति संक्षेपेण कथितं यः पूजयति गन्धदीपधूपैः ।  
कुसुमैः जपति नियं स हन्ति पुण्यकं पापं ॥

जो पुणु यइदा(द्धा)रो मच्चो भणिओ हु मिद्धचक्रम्म ।  
सो एइ ण उद्धरिओ इण्हि मामग्गि ण उ तस्म ॥ ४४८ ॥

यः पुनः षट्पद्वारो सर्वो भणितो हि मिद्धचक्रस्य ।  
सोऽत्र च उद्धर्तव्य इदानीं मामग्री न च तस्य ॥

जइ पुञ्जः को वि पगे उदारिणा गुरुवर्णसेण ।

अहदलपिरुषनिठणं चउग्गुणं वादिरे कंजे ॥ ४४९ ॥

यदि पूजयते कोऽपि नर उदाय गुरुवर्णसेन ।

तः इन्द्रियगुणत्रिगुण चतुर्गुण वा. कंजे ॥

मत्ते अग्नि देव पंचपरमेष्ठिमंतसंजुतं ।

लहिउण वणिवाण अहदले अहदेवाओ ॥ ४५० ॥

माते अग्नि देव पंचपरमेष्ठिमंत्रजुतं ।

लिहिता वणिवाणा अहदले अहदेवा ॥

मोलहदलेसु मोलहविज्जादेवाउ धंतमहियाओ ।

चउवीसं पगेसु य जकरा जग्गी य चउवीसं ॥ ४५१ ॥

घोटादलेसु घोटाविज्जादेवा मेरमहिता ।

चतुविंशती पगेसु य यथान् यथीम चतुविंशति ॥

एत्तीमा अमरिदां लिहं एत्तीमहेजपत्तेसु ।

नियणियमंतपउत्ता गणह्वयनण वेटेह ॥ ४५२ ॥

हात्रिस्तममंभ्रान् लिखेत् हात्रिस्तकंजारेषु ।

निजनिजमंत्रप्रमुक्तान् गणधरवटयेन वेशयेत् ॥

मत्तप्पयारहेहा सत्त पि विलिहेह वज्जसंतुत्ता ।

चउसंमो चउदारा कुणह पयत्तेण जुत्तीण ॥ ४५३ ॥

मत्तप्रकारेणा मत्तापि लिखेत् वज्रमगुक्ता ।

चतुर्दशाधतुर्दशान् कुर्यात् प्रयत्नेन मुक्त्या ॥

एवं संतुद्धारं इत्थं मइ अवरियं ममासेण ।

सेसं किं पि विहायं पाययं गुरुपमाण्ण ॥ ४५४ ॥



एवं यंत्रोद्धारं इत्थं मया कथितं समासेन ।  
 शेषं किमपि विधानं ज्ञातव्यं गुरुप्रसादेन ॥  
 अद्विविद्वाच्यणाए पुज्जेयच्चं इमं सु नियमेण ।  
 दच्चेहिं मुअंधेहि य लिहियच्चं अइपवित्तेहिं ॥ ४५५ ॥  
 अष्टविधार्चनया पूजितव्यं इदं खलु नियमेन ।  
 द्रव्यैः सुगन्धैश्च लेपितव्यं अतिपवित्रैः ॥  
 जो पुज्जइ अणवरयं पावं णिहइ आसिभवपदं ।  
 पडिदिणकयं च विहुणइ वंघइ पउराइं पुण्णाइं ॥ ४५६ ॥  
 यः पूजयति अनवरतं पापं निर्दहति पूर्वभरपदं ।  
 प्रतिदिनकृते च विहन्ति यध्नाति प्रसुगणि पुष्पानि ॥  
 इह लोए पुण मंता मय्ये मिअंति पटियमिसेण ।  
 निज्जाओ मज्जाओ हवंति कुइ माणुहलाओ ॥ ४५७ ॥  
 इहलोके पुनर्मयाः सर्वे मिदयन्ति पटितमात्रेण ।  
 विद्या मयो मवन्ति म्फुटं सानुहता ॥  
 गहभूयसायणीओ मय्ये णामंति तस्म णामेण ।  
 निश्चिगियग्णे पयटइ गुमिद्वचस्कपहायेण ॥ ४५८ ॥  
 प्रहमूर्त्ताशानिन्त्य मयो नइपन्ति तस्य नाया ।  
 निश्चिगियग्णे पयटइ गुमिद्वचस्कपहायेण ॥  
 वनियग्णे आइदी वंम जेदं य मंतिहम्माणि ।  
 माणाज्जाण इग्णं हुण्ड नं ज्ञाणजोगण ॥ ४५९ ॥  
 अइं ११५ ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ ११९ ॥  
 अइं १२० ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

एतन्नि च तत्र रिट्ता मन् भिननयं च उवषादि ।

पुञ्जा एवेऽ लोए गुरन्द्दो णग्गिदार्त्तं ॥ ४६० ॥

एतन्नि न तत्र णेयं दातुं निरं च टवणनि ।

दूजा मन्तो रं के मुक्कड्ढो नववेन्दाना ॥

किं पण्णा उणेण य मोरगे मोरगे च लम्भे जेण ।

केनियमेणं तं मुमाहिणं मिद्वक्खेण ॥ ४६१ ॥

किं वदना उतेन च मोक्षं सौम्यं च लभते येन ।

किण्णात्रमेण मुमाधिणं मिद्वक्खेण ॥

अदवा अइ अममन्थो पुञ्जइ परमेहिणं चं चरके ।

तं पापटे गु लोए इच्छिण्णकण्डाएणं परमे ॥ ४६२ ॥

अदवा एतसमर्थः पूजयेत् परमेश्वरेवकं चक्रं ।

तन् प्रकटं सप्तु लोके इच्छिण्णकण्डाएणं परमे ॥

मिररेहमिभागुणं चंदुकलादिदुण्णं संजुलं ।

मेणादिचउवरणं मुवेदिणं कामरीणं ॥ ४६३ ॥

शिशिरं कभिन्नान्धं चन्द्रकलादिदुकेन संयुक्तं ।

मायाधिकोपरिणतं मुवेदिणं कामरीणं ॥

वामदिमाई नपारं मयारमविपग्गदाहिणे भाण् ।

एहिअद्वपत्तकमलं तिउणं वेठइ मायाण् ॥ ४६४ ॥

वामदिमाई नकारं मकारमाविसर्गदशिमे भागे ।

एहिअद्वपत्तकमलं त्रिगुणं वेठयेत् मायाया ॥

पणमंति भुत्तिमेगे अरहंनपयं दलेसु मेसेसु ।

धग्गीमंठलमग्गे साण्इ गुरत्तिणं चरकं ॥ ४६५ ॥

एवं यन्त्रेण इति कथा कथिता समामेन ।

येन हिमनि स्थितं ज्ञातव्यं मुद्रमादेन ॥

अद्विदधनान् पुनश्चैवं इमं गु गिरमेन ।

इति हि मुद्राभिः य विद्विष्यन् अद्विदधेति ॥ ४५१ ॥

यन्त्रेण यन्त्रेण इति कथा कथिता समामेन ।

येन हिमनि स्थितं ज्ञातव्यं मुद्रमादेन ॥

नो पुनश्च अद्विदधेति यन्त्रेण यन्त्रेण ॥

यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण ॥ ४५२ ॥

यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण ॥

यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण ॥

यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण ॥

यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण ॥ ४५३ ॥

यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण ॥

यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण ॥

यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण ॥

यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण ॥ ४५४ ॥

यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण ॥

यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण ॥

यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण ॥

यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण ॥ ४५५ ॥

यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण ॥

यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण यन्त्रेण ॥



प्रणव इति ? मूर्तिमेकस्मिन् ? अर्हत्यर्द्रं दलेषु शेषेषु ।

धरणीमण्डलमध्ये ध्यायेत् मुरार्चितं चक्रं ॥

अह एणवण्णासे कोट्टे काउण विउलरेहाहिं ।

अयरोइअक्खराइं कमेण विण्णिसहं मव्वाइं ॥ ४६६ ॥

अथवा एकोनपंचाशान् कोष्ठान् कृत्वा त्रिपुल्लरेणामिः ।

अतिरोप्यञ्जराणि क्रमेण विनिवेशय सर्वाणि ॥

ता णिसहं जहयारं मज्झिमठाणेमु ठाइ जुत्तीए ।

वेदह वीएण पुणो इलमंडलउयरमज्झत्यं ॥ ४६७ ॥

तावत् निवेशय यथाकारं मध्यमस्थानेषु स्थापय युक्त्या ।

वेष्टय बीजेन पुनः इलामण्डलोदरमध्यस्थं ॥

एए जंतुद्वारे पुज्जह परमेहिपंचअहिहाणे ।

इच्छइ फलदायागे पावयणपडलहंतारो ॥ ४६८ ॥

एतान् पञ्चोद्धारान् पूजयेत् परमेश्विपंचाभिधानां ।

इच्छितफलदातृन् पापवनपटलहन्तृन् ॥

अट्टविहच्चण काउं पुव्वपउत्तम्मि ठांविं पडिमा ।

पुज्जेह तग्गयमणो विविहहि पुज्जाहिं भत्तीए ॥ ४६९ ॥

अष्टविचार्वनां कृत्वा पूर्वप्रोक्ते स्थापितां प्रतिमा ।

पूजयेत् तद्रतमनाः विविधाभिः पूजाभिः भक्त्या ॥

पममइ रयं असेसं जिणपयकमलेमु दिण्णजलधारा ।

भिगारणालणिग्गय भवंतभिगेहि कव्वुरिया ॥ ४७० ॥

प्रशमति रजः अशेषं जिनपदकमलेषु दत्तजलधारा ।

भृंगारनाञ्जनिर्गता भ्रमदृग् कर्तुर्गता ॥

चंदणमुग्रं धनेभ्यो जिणवरचरणेषु जो कुण्ड मरिओ ।

लहइ तणु विविरियं महाउमुग्रं धयं अमलं ॥ ४७१ ॥

चन्दनमुग्रं धनेभ्यो जिनवरचरणेषु यः करोति भव्यः ।

तमते तनुं वैविरियं स्वभासमुग्रं धयं अमलं ॥

पुष्पाणं पुञ्जेदि य अउयपुंजेदि देवपयपुग्गो ।

लम्भेति ययणिंहाणे मुग्रं वगण चरवहिंत्तं ॥ ४७२ ॥

पुष्पं पूजयेत् अथवा पुंजं देवपद्मपुत्र ।

लम्ब्यन्ते नयनिधानानि स्वशयानि चक्रमतिर्ध्व ॥

अलिपुंविण्हिं पुञ्जइ जिणपयकमलं च जाइमल्लीहिं ।

मो हयइ गुरवरिंदो रमेइ गुरतरवरवणेहिं ॥ ४७३ ॥

अलिपुंविण्हिते पूजयति जिनपदकमलं च जातिमल्लिके ।

त भवति गुरवोन्मः रमते गुग्गुनवरवनेषु ॥

दहिरीरमप्पिसंभवउत्तमचरणहिं पुञ्जण जो हु ।

जिणवरपायपओरह मो पावइ उत्तमे मोए ॥ ४७४ ॥

दधिरीरसर्पि मभवोत्तमचक्रकेः पूजयेत् यो हि ।

जिनवरपादपयोरेह ॥ प्राप्तंति उत्तमान् भोगान् ॥

कपूरतेहपयलियमंदमरुपहयणडियदीवेहिं ।

पुञ्जइ जिणपयपोमं समिमुरविममतनुं लहई ॥ ४७५ ॥

कर्पूरतेहप्रच्छलितमन्दमरुग्रहतन्त्रितदीपैः ।

पूजयति जिनपदपद्मे शशिसूर्यममतनुं लभते ॥

मिहारागअयेरुमीगियणिग्गयधूवेहिं बहलधूमेहिं ।

धूवइ जो जिणचरणेषु लहइ सुहैवत्तणं निजण ॥ ४७६ ॥

१ नयनिधाने स्त । २ पुण अवस्थये स्त । ३ जिणपदमुवसे स्त । ४ सिह्यार समुहः स्त । ५ सुहवत्तणं निजइ स्त, सुहवत्तुं सिद्धयं क ।

मिथ्यामायुर्निमित्तनिर्गमभूदः सत्त्वभूमीः ।

पूरयेत् त्रिभरणेषु तन्त्रे शुभवर्तनं विव्रमति ॥

पमेहिं ममदुःखमुत्तलेहिं त्रिणवर्णपुष्पोपरिपुष्टिः ।

पाणाकलेहिं पावद पुष्टिमो द्वियद्वयं मुक्तं ॥ ४७७ ॥

पंक ममादये ममपुष्पे त्रिभरणपुष्पपुष्टिः ।

पाणाकले पाप्मोति पुष्पे हृदयेष्टिमतं मुक्तं ॥

इय भद्रमेवअथ काऽं पुन जाह मुक्तिता य ।

जा जय जहाउता गये च अहोमं जाता ॥ ४७८ ॥

इयभद्रमेवअथ काऽं पुन जाह मुक्तिता य ।

जा जय जहाउता गये च अहोमं जाता ॥

किंवा काउत्तमं देवे साधक ममपुष्पपुष्टिः ।

ममदुःखमुत्तलेहिं त्रिणवर्णपुष्पोपरिपुष्टिः ॥ ४७९ ॥

किंवा काउत्तमं देवे साधक ममपुष्पपुष्टिः ।

ममदुःखमुत्तलेहिं त्रिणवर्णपुष्पोपरिपुष्टिः ॥

नद्वयमात्रकले के त्रिणवर्णपुष्पोपरिपुष्टिः ।

नद्वयमात्रकले के त्रिणवर्णपुष्पोपरिपुष्टिः ॥ ४८० ॥

नद्वयमात्रकले के त्रिणवर्णपुष्पोपरिपुष्टिः ।

नद्वयमात्रकले के त्रिणवर्णपुष्पोपरिपुष्टिः ।

नद्वयमात्रकले के त्रिणवर्णपुष्पोपरिपुष्टिः ।

नद्वयमात्रकले के त्रिणवर्णपुष्पोपरिपुष्टिः ॥ ४८१ ॥

नद्वयमात्रकले के त्रिणवर्णपुष्पोपरिपुष्टिः ।

नद्वयमात्रकले के त्रिणवर्णपुष्पोपरिपुष्टिः ।





इति ज्ञात्वा विशेषेण पुण्यं अत्रापेक्ष्य कारुण्यं तस्य ।

पात्रं यत्नं सकलं संयमं अद्रमते च ॥

भावह अणुव्याहं पालह सीलं च कुणह उवशमं ।

पण्ये पण्ये नियमं दिउजह अणवरह दाणाहं ॥ ४८८ ॥

भाषयेन् अणुजतानि पालयेन् शीतं च कुर्वीदुष्यमं ।

पर्वे पर्वे नियमं दद्यात् अनसते दानानि ॥

अभयपयाणं पदमं विद्विष्यं तह होइ मत्पदाणं च ।

तस्यं ओमहदाणं आहारदाणं चउत्थं चै ॥ ४८९ ॥

अभयप्रदानं प्रथमे द्वितीये भवति शास्त्रदाने च ।

तृतीये शीतप्रदानं आहारदानं चतुर्थे च ॥

मध्येमि जीतानं अभयं जो देह मत्पभीरुणं ।

मो गिष्मश्रो निलोण उल्लस्यो होइ मध्येमि ॥ ४९० ॥

मंथेना जीताना अभयं यो ददाति मत्पभीरुणो ।

मो निर्मय विष्मक इहो भवति मंथेना ॥

मुग्धदानेन च लज्जमह मद्गुणानां च श्रीद्विषमगणानां ।

वृद्धिपदेन च मद्रियं पण्यदा वरहेतले जायते ॥ ४९१ ॥

वृद्धिपदेन च लज्जमह मद्रियपुनस्ताने च श्रीद्विषमगणानां ।

वृद्धिपदेन च लज्जमह मद्रियपुनस्ताने च ॥

श्रीमद्दानेन च श्रीद्विषमगणानां मद्रियपुनस्ताने ।

वृद्धिपदेन च लज्जमह मद्रियपुनस्ताने च ॥ ४९२ ॥

॥ ४९३ ॥ ॥ ४९४ ॥ ॥ ४९५ ॥

श्रीमद्दानेन च श्रीद्विषमगणानां मद्रियपुनस्ताने ।

वृद्धिपदेन च लज्जमह मद्रियपुनस्ताने च ॥

औषधदानेन नरोऽनुलितचलपराक्रमो महामत्स्यः ।

म्याधिविमुक्तशरीरिधिरायुः स भवति तेजस्थः ॥

दाणस्माहार फलं को सपद् चण्डिउण भुवणयले ।

दिण्णेण जेण भोआ लब्धंति मणिच्छिद्या मन्वे ॥ ४९३ ॥

दानस्य आहारस्य फलं कः शङ्कोति वर्गयितुं भुवनतले ।

दत्तेन येन भोगा लभ्यन्ते मनश्छिन्ता सर्वे ॥

दायारो वि य पत्तं दाणविसेमो तद्दा विहाणं च

एण चउअदियारा णायन्ना होंति मन्वेण ॥ ४९४ ॥

दातापि च पात्रं दानविशेषस्तथा विधानं च ।

एते चतुरधिकारा ज्ञातव्या भवन्ति भव्येन ॥

दायारो उवसंतो मणवयकाण्ण संजुओ दण्डो ।

दाणे कयउच्छाहो पपटिंयवरलम्भुणो अमयो ॥ ४९५ ॥

दाता उपशान्तो मनोवचनकायेन संयुक्तो दक्षः ।

दाने कृतां साहः प्रकटितवरगुणः अमयः ॥

मत्ती तुही य रामा मद्दा मत्तं च लोहपरिचाओ ।

विण्णाणं तद्दाले मत्तगुणा होंति दायारे ॥ ४९६ ॥

भक्तिः मुष्टिः क्षमा भद्रा सत्त्व च लोभपरिचायः ।

विधानं तत्काले समगुणा भवन्ति दातारि ॥

तिवहं भणंति पत्तं मज्झिम तद् उत्तमं जहण्णं च ।

उत्तमपत्तं माह मज्झिमपत्तं च सावया भणिया ॥ ४९७ ॥

त्रिविधं भणन्ति पात्रं मध्यमे तद्योतमे जयन्वं च ।

उत्तमपात्रं मातु मध्यमपात्रं च क्षात्रका भणितः ॥

अविरड्मम्मादिद्वी जहण्णपत्तं तु अविस्सयं समये ।

पाउं पत्तविस्सेसं दिज्जह दाणाइं मत्तीए ॥ ४९८ ॥

अविगतमम्यदृष्टिः जघन्यपात्रं तु कथितं समये ।

ज्ञात्वा पात्रविशेषं दद्यान् दानानि भक्त्या ॥

मिच्छादिद्वी पुग्गिमो दाणं जो देइ उत्तमं पत्ते ।

सो पावइ वग्गमोए फुइ उत्तममोयभूमीसु ॥ ४९९ ॥

मिथ्यादृष्टिः पुण्यां दानं यो ददाति तत्तमे पात्रे ।

स प्राप्नोति परभोगान् सुष्ठु उत्तमभोगभूमीषु ॥

मज्झिमपत्ते मज्झिममोयभूमीसु पावण मोए ।

पावइ जहण्णमोए जहण्णपत्तम्म दाणेण ॥ ५०० ॥

मध्यमपात्रे मध्यमभोगभूमिषु प्राप्नोति भोगान् ।

प्राप्नोति जघन्यभोगान् जघन्यपात्रस्य दानेन ॥

उत्तमजिणे वीयं कलइ जहा लल्लकोडिगुण्णेहि ।

दाणं उत्तमपत्ते कलइ तहा किमिच्छमणिण ॥ ५०१ ॥

उत्तमजिने वीर्यं कल्पति यथा लल्लकोडिगुणेः ।

दानं उत्तमपात्रे कल्पति तथा किमिच्छमणिनेन ॥

मम्मादिद्वी पुग्गिमो उत्तमपुरिमम्म दिण्णदाणेण ।

उपपत्ताइ दिव्वाणं दइइ म महद्धिओ देओ ॥ ५०२ ॥

मम्यादृष्टिः पुण्या उत्तमपुरिमस्य दिण्णदानेन ।

उपपत्तये स्वर्गलोके भवति स महद्दिको देव ।

जहणीं उअदुमवं काटं परिगइअ अमयस्सेण ।

नइ दाणं वग्गमे कलइ मोणहि विविहेहि ॥ ५०३ ॥

॥१॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

For the first time, a study has shown that the use of a mobile phone can reduce the risk of a car accident. The study, conducted by researchers at the University of Michigan, found that drivers who used a mobile phone while driving were 23% more likely to be involved in a crash than those who did not. The researchers also found that the risk of a crash was even higher for drivers who used a mobile phone while driving in a carpool. The study was conducted over a period of 18 months and involved 1,000 drivers. The researchers used a variety of methods to collect data, including interviews, observations, and the use of a mobile phone tracking device. The results of the study suggest that the use of a mobile phone while driving can be a significant risk factor for a car accident. The researchers recommend that drivers should avoid using a mobile phone while driving, especially in a carpool. They also recommend that drivers should use a hands-free device if they must use a mobile phone while driving.

उपमन्वन्तं तु ज्ञा। उपमन्वन्तामिदं च क्षुण्णं ।

नत उग्रमदमगरे दानं विदुषेति वायजं ॥ ५०४ ॥

उपलब्ध नं. १३ काग हलसुगवाभिन ५ बटुम-३ ।

လမ်းကားတစ်လမ်းကို နှစ် နှစ်၊ ၄ နှစ်။ ။

वि. वि.पि वि द्दम्भयं विदि वि पणं तदोमयं पणं ।

नं वषं गंगारं गङ्गायं दौर्दं लिख्येय ॥ ५०५ ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

तथात्र भगवते ताम्रं भवति निम्नं ॥

वेभ्रो सिल गिदेनो तम्पहा जयपयन्वल्दस्यं ।

गुणमगलदाणां च य जीवहाणानि मय्याणि ॥ ५०६ ॥

वेदः विज्ञानमिह तत्तत्सर्वं प्रवक्ष्यामि ।

पुणमार्गणाशानान्यदि च जीवस्थानानि सर्वाणि ॥

परमपयस्य इत्ये जीववत्मान उदयमन्त्रां ।

लो जाणह मयिरेमं येयमयं होइ सं वनं ॥ ५०७ ॥

**परमाममो गुरुर्ज्ञेयः परमात्मनोः स्वभावे ।**

२० ज्ञानानि सन्निभं चैवमयं भवति तदात्र ॥

पहिग्भंतगतवना फाटो परिगइ जिणोरण्सेज ।

द्विष्टयेमचेर जाणी। पत्तं तु तयोमये भजिय ॥ ५०८ ॥

वाङ्मयानुसङ्गमा १०१ परिशिष्टानि चित्पदेशिन ।

हृदयमन्त्रो ज्ञानो पात्रं ॥ सन्तोषं भणितं ॥

१ निचि नि चिदमयं सग सा. २ भुविने. सा. ३ होति सा. ४ च व्या सा.

जह पावा णिच्छिदा गुणमइया विविहरयणपरिपुन्ना ।

तारइ पारावारे बहुजलयरसंरुडे भीमे ॥ ५०९ ॥

यथा नीः निदिउदा गुणमया विविधस्वपरिपूर्णा ।

तारयति पागवारे बहुजलचरमंरुडे भीमे ॥

तह संसारममुदे जाइजरामरणजलयराइण्णे ।

दुकरमहस्मावसे तारेइ गुणाहियं पत्तं ॥ ५१० ॥

तथा संसारममुदे जातिजरामरणजलचराकीर्णे ।

दुःखसहसाधने तारयति गुणाधिकं पात्र ॥

कुच्छिद्यं जस्मणं जीगइ तरशाणवंमचरिण्हिं ।

मो पत्तो गित्थारइ अप्पाणं चेउ दावारं ॥ ५११ ॥

कुच्छिद्यं यस्यान्ने जीर्दने तपोष्यानरप्रचयेः ।

तथापि निम्नाग्यति अश्वमानं चैव दावारं ॥

एरिमपणास्मि वरे दिज्जइ आहारदाणमणरत्तं ।

पागुयगुदं अमलं जोगं मणदेइमुसगयं ॥ ५१२ ॥

एतादृशपात्रे वरं दद्यात् आहारदानमनारयं ।

प्राप्तुकुशुदे अमलं योग्य मनोदेइमुसगरे ॥

कालस्म य अगुसं मेयागेयमं व पाऊणं ।

दायणं जइजोगं आहार मेदंनेण ॥ ५१३ ॥

कालस्य य अगुसं मेयागेयमं व पाऊणं ।

दायणं यदायं अहार मुदंनेण ॥

यत्तमेव मदातां ते दिग्गं दायणेव मर्गाण् ।

ते कम्पने मोदिव मदिपन्ति दिगयमाण ॥ ५१४ ॥



ता देहो ता पाणा ता स्वं ताम पाणविष्णाणं ।  
 जामाहागे पविमइ देहे जीवाण मुक्खयरो ॥ ५२० ॥  
 तावदेहस्तावत्पाणास्तावद् । तावज्ज्ञानविज्ञानं ।  
 तावदाहागे पविमन्ति देहे जीवानां मुक्खयरो ॥  
 आहारमणे देहो देहेण तथो तथेज रयमडणं ।  
 रयणासेण य पाणं पाजे मुक्खरो जिणो भणइ ॥ ५२१ ॥  
 आहारमणे देहो देहेन तयस्सपसा रज,सडने ।  
 रजोन,डने च ज्ञान ज्ञ ने मंशो जिणो भणति ॥  
 चउचिहदाणं उचं जं तं मयलंमवि होइ इह दिणं ।  
 मयिमेमं दिण्णेण य इस्सेणाहारदाणेण ॥ ५२२ ॥  
 चउचिहदान उक्तं यत् तं मकडनवि मरति इह दत्तं ।  
 मयिमेमं दनेन च एतेनाहारदानेन ॥  
 भुग्गारुयमग्गभयं णामइ जीवाण तेण तं अभयं ।  
 मो एव हणइ वाही उमहं तेण आहारो ॥ ५२३ ॥  
 बुभुधहणमग्गभयं नाशयति जीवानां तेन तदभयं ।  
 म एव हणति वाही अंगरे तेनाहारः ॥  
 आयागदेमय्य आहारदेम पटइ निम्मेमं ।  
 तट्ठा तं मुयदाण दिण्णं आहारदाणेण ॥ ५२४ ॥  
 आना,डने च आहारदेन पटति निःशेयं ।  
 एवमं च तं दाने दने आहारदानेन ॥  
 हवगयमोदानाहं धेर्णाग्गग्गयमोदानाहं ।  
 तिनिं ण कुणंति मया जइ तिनिं कुणइ आहारो ॥ ५२५ ॥

हृष्यग्नोदानानि धरणीरजकनकयानदानानि ।  
 तृप्तिं न कुर्वन्ति सदा यथा तृप्तिं करोति आहारः ॥  
 जह्म रक्षणां यदरे सेलेमु य उच्चमो जहा मेरु ।  
 तद् दाणाणं पयसो आहारो होइ पायव्यो ॥ ५२६ ॥  
 यथा गत्तानो वज्र ईडेपु च उच्चमो यथा मेरुः ।  
 तथा दानानां प्रवर आहारो भवति हातव्यः ॥  
 मो दायव्यो पत्ते विहाणजुत्तेण सा विही एसा ।  
 पडिगहमुयहाणं पादोदयअंचणं च पणमं च ॥ ५२७ ॥  
 दातव्यः पात्रे विधानयुक्तेन स विधिरेव ।  
 प्रतिग्रहमुद्यरधाने पादोदयमर्चने च प्रणामं च ॥  
 मणवयणकायमुद्धी एतणमुद्धी य परम कायव्या ।  
 होइ कुडं आयरणं णवज्जिहं पुज्जं कम्मणे ॥ ५२८ ॥  
 मणवयणकायमुद्धीरेवणमुद्धिध परमा फलं व्या ।  
 भवति स्पुटमाचरणं नवविधं पूर्वकर्मणा ॥  
 एवं विहिणा जुत्तं देयं दाणं तिसुद्धमसीए ।  
 वज्जिय कुच्छियपत्तं तद् य अपत्तं च निस्मारं ॥ ५२९ ॥  
 एवं विदिता युक्तं देयं दानं तिसुद्धभक्त्या ।  
 वर्जयिषा कुत्तितपात्रं तथा चापात्रं च निस्तारं ॥  
 जं रयणत्तयरेहियं मिच्छांमयकहियधम्मअणुत्तमं ।  
 जह्म वि ह्म तयइ गुपोरं तद्दा वि तं कुच्छियं पत्तं ॥ ५३० ॥  
 पदत्तत्रयरहितं मिथ्यामत्तकथिनधर्मानुत्तमं ।  
 यद्यपि हि तत्पत्ते गुपोरं तत्पत्ति तनुत्तित पात्रं ॥

१ विहिता च विहिता । २ पुत्र. त. पुत्र. ३ तद्विधं ४-गुप्तदे ।  
 ५ यम ६ ।



ता देहो ता पाणा ता रूवं ताम णाणविण्णाणं ।  
जामाहारो पविसइ देहे जीवाण सुखयरो ॥ ५२० ॥

तावदेहस्तावत्पाणास्नावद्रूपं तावज्ज्ञानविज्ञानं ।

यावदाहारो प्राविशति देहे जीवाना मुखवरः ॥

आहारसणे देहो देहेण तवो तवेण रयसडणं ।  
रयणासेण य णाणं णाणे सुखो जिणो भणई ॥ ५२१ ॥

आहाराशने देहो देहेन तपस्तपमा रत्रःसट्ठनं ।

रजोनाशेन च ज्ञानं ज्ञाने मोक्षो जिणो भणति ॥

चउविहदाणं उत्तं जं तं सयलेमवि होइ इह दिण्णं ।  
सविसेसं दिण्णेण य इक्केणाहारदाणेण ॥ ५२२ ॥

चतुर्विधदान उक्तं यत् तत्सकलमपि भवति इह दत्तं ।

सविशेषं दत्तेन च एकेनाहारदानेन ॥

भुक्खाकयमरणभयं पासइ जीवाण तेण तं अमयं ।  
सो एव हणइ वाही उमहं तेण आहारो ॥ ५२३ ॥

बुभुक्षाकृतमरणभयं नाशयति जीवाना तेन तदमयं ।

स एव हन्ति व्याधि औषधं तेनाहारः ॥

आयाराईसत्थं आहारवलेण पढइ णिस्सेसं ।  
तम्हा तं सुयदाणं दिण्णं आहारदाणेण ॥ ५२४ ॥

आचारादिशास्त्रं आहारवलेन पठति निःशेषं ।

तस्मात् तच्छ्रुतदानं दत्तं आहारदानेन ॥

हयगयगोदाणाइं धरणीग्गकणयजोणदाणाइं ।

तिचिं ण कृणंति मया जह तिचिं कृणइ आहारो ॥ ५२५ ॥

१ मयलं पि ख. । २ शुद्धपाणि । ३ धरणीरयकणयरयणदाणाई ख. ।

हयगजगोदानानि धरणीरत्नकनकयानदानानि ।

तृप्तिं न कुर्यन्ति सदा यथा तृप्तिं करोति आहारः ॥

जह्म रक्षणं वहरं सेलेसु य उन्नमो जहा मेरु ।

तह्म दाणाणं पक्वो आहारो होइ पायज्यो ॥ ५२६ ॥

यथा रत्नानां यत्र जैलेषु च उन्नमो यत्र मेरु ।

तथा दानानां प्रवर आहारो भवति ज्ञानज्य ॥

सो दायज्यो पक्वे विहाणजुत्तेण मा विही ग्मा ।

पडिगहमुचहाणं पादोदयअंघणं च पणमं च ॥ ५२७ ॥

स दातव्यः पात्रे विधानयुक्तेन स विधिं ॥

प्रतिग्रहमुचस्थानं पादोदकमर्चनं ॥ प्रणामं च ॥

मणवयणकायमुद्धी एतणमुद्धी य परम कायज्या ।

होइ फुडं आयरणं णवज्यिहं पुज्जं कम्मणे ॥ ५२८ ॥

मनवधनकायशुद्धिरेवणशुद्धिश्च परमा कर्तव्या ।

भवति स्पृष्टमाचरणं नवविधं पूर्वकर्मणा ॥

एवं विहिता जुत्तं देयं दाणं तिसुद्धभक्तीण ।

यज्जिय कुच्छियपत्तं तह्म य अपत्तं च निस्सारं ॥ ५२९ ॥

एवं विधिना युक्तं देयं दानं तिसुद्धभक्त्या ।

वर्जयिष्य कुच्छितपात्रं तथा चापात्रं च निःसारं ॥

जं रयणत्तरं हियं मिच्छोमयकहियधम्मअणुलम्भं ।

अइ वि हु तवइ गुणोरं तहा वि तं कुच्छियं पत्तं ॥ ५३० ॥

यद्गत्यपरहितं मिष्यामतकथितधर्मानुत्तरं ।

यद्यपि हि तप्यते गुणोरं तथापि तत्तुलितं पात्रं ॥

१ विहिता यः विधिना । २ पुत्रः स्वः पुण्यः । ३ गदियं ४-पुस्तके ।  
५ यमः ६ ।

जस्स ण तवो ण चरणं ण चावि जस्सत्थि वरगुणो कोइ ।  
तं जाणेह अपत्तं अफलं दाणं कयं तस्स ॥ ५३१ ॥

यस्य न तपो न चरण न चापि यस्यास्ति वरगुणः कश्चिद् ।

तज्जानीयादपात्रमफलं दानं कृतं तस्य ॥

ऊसरखित्ते धीयं मुखे रुक्खे य णीरअहिसेओ ।

जह तह दाणमवत्ते दिण्णं खु णिरत्थयं होई ॥ ५३२ ॥

ऊपरक्षेत्रे बीजं शुष्कं वृक्षे च नीराभिषेकः ।

यथा तथा दानमपात्रे दत्तं खलु निरर्थकं भवति ॥

कुच्छियपत्ते किंचि वि फलइ कुदेवेमु कुणरतिरिण्णु ।

कुच्छियभोयधरासु य लवणंघुहिकालउवहीसु ॥ ५३३ ॥

कुत्सितपात्रे किंचिदपि फलति कुदेवेषु कुनरतिर्यक्षु ।

कुत्सितभोगधरामु च लवणाम्बुधिकालोदधिषु ॥

लवणे अडयालीसा कालसमुदे य तित्थिया चेव ।

अंतरदीपा भणिया कुभोयभूमीय विस्खाया ॥ ५३४ ॥

लवणे अष्टचत्वारिंत् कालसमुदे च तावन्त एव ।

अन्तर्दीपा भणिता कुभोगभूम्या विख्याताः ॥

उप्पज्जंति मणुस्मा कुपत्तदाणेण तत्थ भूमीसु ।

जुवेलेण गेहरहिया णग्गा तरुमूलि णिवसंति ॥ ५३५ ॥

उत्पद्यन्ते मनुष्या कुपात्रदानेन तत्र भूमिषु ।

गुण्डेन गृहरहिता गग्गा तरुमूले निवसन्ति ॥

पल्लोयमआउम्मा वत्थाहरणेहि वज्जिया णिचं ।

तरुपल्लवपुण्णरसं फलाण रसं चेव भक्खंति ॥ ५३६ ॥

पन्पोषमायुः वस्त्राभरणेन धर्षिता नित्यं ।

नरुपहृत्युपरस फलाना रस चैव भक्षयन्ति ॥

दीवे कर्हि वि मणुषा मन्करगुडखंडसण्णिहा भूमी ।

भक्नुंति पुष्टिजनया अइमरसा पुव्वरुम्मेगं ॥ ५३७ ॥

द्वीपे कापि मनुजा शक्रेरागुडखण्डसन्निभा भूमि ।

भक्षयन्ति पुष्टिजनका अतिसरसां पूर्वकर्मणा ॥

केई गयसीहमुहा केई हरिमहिसकंविक्कोलमुहा ।

केई आदरिममुहा केई पुण एयपाया य ॥ ५३८ ॥

केचिन् गगमिहमुसा केचिद्धरिमहिरकपिकोड्कमुलाः ।

केचिदादर्शमुलाः केचिधुनः एकपादाश्च ॥

मममुक्कलिकण्णा वि य कण्णप्पावरणदीहकण्णा य ।

लंगूलधरा अवरं अवरं मणुषा अभासा य ॥ ५३९ ॥

राशशकुलिकर्गा धरि च कर्णप्रावरणदीर्घकर्णाश्च ।

छाहुलधरा अपरं अपरं मनुष्या अभापकाश्च ॥

एए णरा एसिद्धा तिरिया वि हवेति कुमोयभूमीसु ।

मणुमुत्तरपाहिरेसु अ असंगदीवेसु ते ह्वेति ॥ ५४० ॥

एते नराः प्रसिद्धाः तिर्यञ्चोऽपि भवन्ति कुमोगभूमिषु ॥

मानुषीसरशास्त्रे च अमंलपट्टीपेषु ते भवन्ति ॥

मय्ये मंदकसाया सय्ये निस्सेमवादिपरिहीणा ।

मरिऊण विंतरा वि ॥ जोइसुभरणेसु जायंति ॥ ५४१ ॥

सर्वे मन्दकसायाः सर्वे निःशेषव्याधिपरिहीनाः ।

मृत्वा ध्वन्तरेष्वपि हि ज्योतिर्मन्त्रेण जायन्ते ॥

तत्थ चुया पुणे संता तिरियणगं पुणं ह्वंति ते मन्ने ।  
काउण तत्थ पावं पुणो वि णिग्यावहा होंति ॥ ५४१ ॥

ततश्च्युताः पुनः मन्त निर्यङ्मरा पुनः भवन्ति ते मर् ।

श्रुत्वा तत्र पापं पुनरपि नरकपथा भवन्ति ॥

चंडालमिड्डाछिपियडोवयकल्लाल एवमाईणि ।  
दीसंति रिद्धिपत्ता कुच्छियपत्तम्म दाणेण ॥ ५४२ ॥

चण्डालमिड्डाछिपकडोवयकल्लारा एवमादिका ।

दृश्यन्ते ऋद्धिप्राप्ताः कुम्भितपात्रस्य दानेन ॥

केई पुण गयतुरया मेहे गयाण उण्णई पत्ता ।  
दिम्सांति मयलोण कुच्छियपत्तम्म दाणेण ॥ ५४३ ॥

केचिपुनः गयतुरया गृहे राज्ञा उन्नतिं प्राप्ता ।

दृश्यन्ते मर्त्यलोके कुम्भितपात्रस्य दानेन ॥

केई पुण दियलोण उयण्णा वाहणत्तणेण मे मनुया  
मोपंति जाइदुसां पिच्छिय रिद्धी मुदेयाणं ॥ ५४४ ॥

केचि पुनः स्वर्गलोके उपजा वाहनत्वेन मे मनुजा ।

भाषन्ति जानिदुसां प्रेक्ष्य ऋद्धि मुदेयानां ॥

णाउण नम्म दोमं मम्मामह मा कया वि मिरिगि  
परिहम्ह गया दूरे मुदियां वि मयिगणं व ॥ ५४५ ॥

जन्वा नम्म दोमं मम्मामहमा कदापि स्वये ।

परिहरेत् मया दूरे... मयिगणं व ॥ ५४५ ॥

पत्थरमंघा वि दोष्णी पत्थरमप्पाणये च बोलेइ ।

जह तह कुच्छियपत्तं संसारे चेव बोलेइ ॥ ५४७ ॥

प्रस्तरमध्यधि दोष्णी प्रस्तरमात्माने च निमज्जयति ।

यथा तथा कुत्तितपात्रं संसारे एव निमज्जयति ॥

णावा जह मच्छिदा परमप्पाणं च उवहिमलिलम्भि ।

बोलेइ तह कुपपं संसारमहोवही भीमे ॥ ५४८ ॥

नौर्वथा सच्छिदा परमात्मानं चोद्विषित्छिले ।

निमज्जयति तथा कुपात्रं संसारमहोदधौ भीमे ॥

लोहमए कुतरंढे लग्गो पुरिमो हू तीरिणीवाहे ।

पुट्ठइ जह तह पुट्ठइ कुपपमप्पाणजो पुरिमो ॥ ५४९ ॥

लोहमये कुतरण्डे लग्नः पुरुषो हि तीरणीवाहे ।

मज्जति यथा तथा मज्जति कुपात्रसम्मानकः पुरुषः ॥

ण लहंति फलं गरुयं कुच्छियपद्दुल्लित्तंसेविया पुरिमा ।

जह तह कुच्छियपत्ते दिष्णां दाणा मुण्येय्या ॥ ५५० ॥

न लभन्ते फलं गुरुकं कुत्तितप्रभुच्छ्रुतमेवकाः पुरुषाः ।

यथा तथा कुत्तितपात्रे दत्तानि दानानि मन्तराणि ॥

णरिय वयसीलसंजमझाणं तवणियमवेमचेरं च ।

एमेव मणइ पर्न अप्पाणं लोयमज्झम्मि ॥ ५५१ ॥

१ तथा क. । २ आलुमिअ आलिइं छिक्के छिमे परामुत्तिअ । एयेने भच्छि-  
त्तये । ३ दिष्णां दाणं मुण्येय्यं. स । ४ अरमादये मारेवा म—पुत्तये. ।

कलहमर्गवधारी दानमहादानमृणमृणुदा ।

—तथा कति कलहमर्गवधारी — लोहमर्गवधारी ॥ १ ॥

नास्ति व्रतशीलसंयमध्यानं तपोनियमव्रतचर्यं च ।

एवमेव भणति पात्रं आत्मानं लोकमध्ये ॥

मयकोहलोहगहिओ उड्डियहृत्यो य जायणार्सीलो ।

गिहवावागोमत्तो जो मो पत्तो कहं हवइ ॥ ५५२ ॥

मदकोवलोभमहिंन उड्डियहस्तथ पाचनार्सीलः ।

गृहध्यापारामकः यः स पात्रं कथं भवति ॥

हिंमाडदोमजुत्तो अट्टउदेहिं गमियअहरत्तो ।

कयविककयवट्ठो इंदिययिमणु लोहिलो ॥ ५५३ ॥

हिंमादिदोयुक्त आनंतीं गमिताहोरात्रः ।

कयविककयवर्तमान इन्द्रियविषयेषु लुब्धः ॥

उत्तमपत्तं णिंदिय गुम्हाणे अप्पयं पट्टुत्तो ।

होउं पावेग गुरु वुड्डइ पुण कुगइउवहिम्मि ॥ ५५४ ॥

उत्तमपात्रं निन्दित्वा गुरुस्थाने आत्मानं प्रदुर्गन् ।

भूया पापेन गुरुः मुह्यति पुनः कुगगुदगी ॥

जो वोलइ अप्पाणं संगारमहणवम्मि गरुवम्मि ।

मो अण्णं कह मारइ नग्गानुमगो जणं लगो ॥ ५५५ ॥

य निमज्जयति आत्मानं संसारमहासागरे गुम्हेत ।

स अन्ये कथं नारयति लब्धानुमार्गे जने लभे ।

एवं यमविमोहं णाउत्तं देह दानमनररयं ।

गियतीरमग्गमोक्कं इच्छयमाणो पयसेण ॥ ५५६ ॥

एव यमविमोहं दत्त्वा देहि दानमनररयं ।

मिदं गियतीरमग्गमोक्कं पयसेण ॥

लटिउग संपया जो देइ ण दाणाई मोहसंउण्णो ।

नो अप्पाणं अण्णे वंचेइ य णत्थि संदेहो ॥ ५५७ ॥

एवञ्चा सम्पन् यो ददाति न दानादि मोहसंउन्न ।

स आत्मानं आनना वंचयति च नास्ति मन्देह ॥

ण य देइ णेयं भुञ्जइ अत्थं गिरुण्णेइ लोहसंउण्णो ।

सो तणकयपुरिमो इय रक्खइ मस्सं परस्मत्थे ॥ ५५८ ॥

न च ददाति नैव भुजेऽर्थं निश्चिगति लोभसंउन्न ।

स तृणरुनुरूप इव रश्नति तस्य परस्वार्थे ॥

किपिणेण संचयधमं ण होइ उवयारियं जहा तम्म ।

महुपरि इय संचियमहु हरंति अण्णे मपाणेहिं ॥ ५५९ ॥

हृषणेन संचितधनं न भवति उपकारकं यथा तस्य ।

मधुक्रीड संचियमधु हरन्ति अभ्ये मप्रायेः ॥

कम्म धिरा इह लच्छी कम्म धिरं जुट्ठेणं धणं जीयं ।

इय सुणिउग सुपूरिसा दिनि गुपत्तेसु दाणाई ॥ ५६० ॥

कस्य धिरेह लक्ष्मीः कस्य स्थिरं धौनवं धनं जीयते ।

इति शास्त्रा गुपुत्तग ददति गुपात्रेषु दानानि ।

दुबारेण लहइ विणं वित्ते लद्धे वि द्दुद्धे वित्तं ।

लद्धे वित्ते वित्ते सुद्धुद्धो वनलंमो य ॥ ५६१ ॥

दुःखेन लभते वित्तं वित्ते लब्धेऽपि दुर्लभं वित्तं ।

लब्धे वित्ते वित्ते सुदुर्लभः पात्रग्राहकः ॥

चित्तं चित्तं पत्तं निण्णि वि पावेइ कइ वि अइ पुरिमो ।

तो ण लहइ अणुहलं मयणं पुत्तं कलत्तं य ॥ ५६२ ॥

१ भाष्यं वि. य. । २ नय सह भुञ्जइ च । ३ दानेह. य. । ४ मोहसं



चित्तं चित्तं पात्रं श्रीण्यपि प्राप्नोति कथमपि यदि पुण्य ।  
 तर्हि न छभतेऽनुकूलं स्वजनं पुत्रं कलत्रं च ॥  
 पण्डितमाह काळं विग्नं कुर्वन्ति धम्मदाणम्म ।  
 उवणसंति दुवुद्धिं दुग्गइगमकारया अमुहा ॥ ५६३ ॥  
 प्रतिगुणमादि कृत्या विग्नो कुर्वन्ति धर्मदानस्य ।  
 उपदिशन्ति दुर्वृत्तिं दुर्गतिगमकारकामशुभा ॥  
 सो कह सयणो भण्णइ विग्नं जो कुणइ धम्मदाणम्म ।  
 दाउण पावेपुद्धी पाउइ दुवसायरे णरए ॥ ५६४ ॥  
 स कथे एवज्जो भण्यते विग्नो यः करोति धर्मदानस्य ।  
 दत्ता पापपुद्धिं पातयति दुःखाकरे नरके ॥  
 सो सयणो सो धंभू सो मित्रो जो सहिज्जो धम्मे ।  
 जो धम्मविग्नपारी सो ससू णत्थि संदेहो ॥ ५६५ ॥  
 स एवजनः स धंभुः स मित्रे यः सहायकः धर्मे ।  
 सो धर्मविग्नकारी स शत्रुः नास्ति सन्देहः ॥  
 ते भण्णा लोपतए तेहि निरुद्धाहं कुगइगमणाहं ।  
 विने कलं विने पावित्रि जर्हि दिण्णदाणाहं ॥ ५६६ ॥  
 ते भग्वा लोकस्ये तेनिरुद्धानि कुगनिगमनानि ।  
 विने पात्रे विने प्राण्य येः दत्तदानानि ॥  
 धुनिपेण्णं दय्यं जम्म गयं नुदणं च तरपाणे ।  
 धम्मदाणं दय्यं जम्म गयं च गयं नरए ॥ ५६७ ॥  
 धुनिपेण्णं दय्यं जम्म गयं नरए ॥  
 धम्मदाणं दय्यं जम्म गयं नरए ॥

जह जह षडूर लच्छी तह तह दाणाहं देह पनेसु ।

अहवा हीमइ जह जह देह विसेसेग तह तह यं॥ ५६८ ॥

यथा यथा वर्धते लक्ष्मी तथा तथा दानानि देहि पात्रेषु ।

अथवा हीयते यथा यथा देहि मिश्रेण तथा तथा च ॥

जैहिं ण दिण्णं दाणं ण चावि पुज्जा किया जिणिंदस्स ।

ते हीणदीणदुग्गय मिश्रं ण लहंति जायंता ॥ ५६९ ॥

जैन दत्तं दानं न चापि पूजा कृता जिनेन्द्रस्य ।

ते हीनदनिदुर्गता मिश्रं न उभन्ते याचमानाः ॥

परपेसणाइ गियं करंति मत्तीए तह य गियपेट्टं ।

पूरंति ण गियषपरे परवसगासेण जीवंति ॥ ५७० ॥

परपेसणादिकं नित्यं कुर्वन्ति भक्त्या तथा च निजोदरं ।

पूरयन्ति न निजगृहे परवशमासेन जीवन्ति ॥

संधेण बहंति णरं गामत्थं दीहपंथसमसंता ।

सं चेव विण्णवंता मुहकयकरविणयसंनुत्ता ॥ ५७१ ॥

स्वच्छेन वहन्ति नरं मातार्थं दीर्घपथसमासक्ताः ।

समैव विनमन्तः मुखकृतकरविनयसंपुक्ताः ॥

पहु तुम्ह समं जायं कोमलअंगाइं मुहुमुहिपाइं ।

इय मुहपियाइं काऊं मलंति पाया सहत्थेहिं ॥ ५७२ ॥

प्रभो ! सुष्माकं समं जातानि कोमलाङ्गानि मुष्टमुष्मानि ।

इति मुखप्रियाणि कृत्वा संवहन्ते पादान् स्वहस्ताभ्यां ॥

स्वरसंति गोगवाडं छेलयगुरतुरयछेत्तगनिहाणं ।

तूणंति कप्पडाडं घडंति पिडउल्लयाडं च ॥ ५७३ ॥

रक्षन्ति गोगवादिकं अत्रागुरतुरगक्षेत्रम्वन्धियानान् ।

तूणन्ति कर्पट्टादिकं घटन्ते पिड्ढेगट्टिकानि ॥

घावन्ति सत्यहत्था उण्हं ण गणन्ति तह य सीयाडं ।

तुरयमुहफेणमिच्चा रयलित्ता गलियपासेया ॥ ५७४ ॥

घावन्ति शस्त्रहस्ता उण्हां न गणयन्ति तथा च शीनादि ।

तुरगमुखेननित्ता रज्जोलित्ता गलितप्रम्वेदा ॥

पिन्धिय परमहिलाओ घणथणमयणयणचंद्रवयणाडं ।

ताडेइ णियं सीसं झरइ हिययम्मि दीणमृहो ॥ ५७५ ॥

प्रेक्ष्य परमहिताः घनस्तनमदनयनचन्द्रवदनानि ।

ताडयति निजं शीर्षं झ्रयति ( रुदति ) हृदये दीनमुखः ॥

परसंपया णिएऊं पमणइ हा ! किं मया ण दिण्णाइ ।

दाणाइं पवरपत्ते उत्तमभत्तीय जुत्तेण ॥ ५७६ ॥

परसम्पदः दृष्ट्वा प्रमणति हा किं मया न दत्तानि ।

दानानि प्रवरपात्रे उत्तमभक्त्या युक्तेन ॥

एवं णाऊण फुडं लोहो उवसामिऊण णियचित्ते ।

णियवित्ताणुस्सारं दिज्जह दाणं सुपत्तेमु ॥ ५७७ ॥

एव शान्त्वा स्फुटं लोभं उपशम्य निजचित्ते ।

निजवित्तानुसारं देहि दानं सुपात्रेषु ॥

जं उप्पज्जइ दव्वं तं कायव्वं च बुद्धिवन्तेणं ।

छहमायगयं सव्वं पढमो भावो हु घम्मस्म ॥ ५७८ ॥

यदुत्पद्यते द्रव्यं तत्कर्मव्यं न बुद्धिमत्ता

यद्भागवतं सर्वं प्रथमो भागो हि यस्यस्य ॥

पीओ भावो गेहे दायज्यो कृदुपपोमगन्धेग ।

नदओ भावो भोणं चउन्धओ मयणवग्गम्मि ॥ ५७९ ॥

दिनीयो भागो गृहे दानव्यं कुटुम्बोपणार्यं ।

नतायो भाग भोगे चतुर्थं स्वजनयने ।

सैमा जे वे भावा ठायव्या होति ने वि पुरिसेण ।

पुज्जामहिमाकज्जे अहवा कालावकालस्म ॥ ५८० ॥

दीर्घा र्वा द्वी भागो रथारनीदी भवन तावपि पुराणेग ।

पूजामहिमकार्ये अथवा काअपनान्ताय ॥

अहवा णियं चिट्ठत्तं कस्म वि मा देहि होहि लोहिल्लो ।

सो को वि कुणउ वाऊ जह तं दव्वं ममं जाइ ॥ ५८१ ॥

अथवा निजं वित्तं / कस्यापि मा देहि भव तुभ्यः ।

स कामपि कुत उपाय यथा तद्द्रव्यं ममं याति ॥

तं दव्वं जाइ ममं जं रूणिं पुज्जामहिमदाणेहिं ।

जं पुण धरणिदत्तं णट्ठं तं जाणि णियमेण ॥ ५८२ ॥

तद्द्रव्यं याति ममं कर्त्तुं पुज्जामहिमदाने ।

यपुनः धरानिदिन नष्टं सज्जानीति नियमेन ॥

सदे ठाणाओ भुद्धइ अहवा मूसेहि णिज्जणं तं पि ।

अह भाओ अह पुचो चोरो तं लेइ अह राओ ॥ ५८३ ॥

स्वयं स्वानं विस्मरति अथवा मूर्खः नोपने तदपि ।

अथ भ्राता अथ पुत्रः चोरस्तन् गृह्णाति अथ राजा ॥

अहवा तरुणी महिला जायइ अण्णेण जारपुरिसेण ।

सह तं गिण्हिय दब्बं अण्णं देसंतरं दुट्ठा ॥ ५८४ ॥

अथवा तरुणी महिला याति अन्येन जारपुर्येण ।

सह तद्रुहोन्त्रा द्रव्यं अन्यदेशान्तरं दुष्टा ॥

इय जाणिऊण षूणं देह सुपत्तेसु चउविहं दाणं ।

जह कयपावेण सया मुचह लिप्पह सुपुण्णेण ॥ ५८५ ॥

इति ज्ञात्वा नून देहि सुपात्रेषु चतुर्विधं दानं ।

यथा कृतपापेन सदा मुच्येत लिप्येत सुपुण्येन ॥

पुण्णेण कुलं विउलं किच्ची पुण्णेण भमइ तइलोए ।

पुण्णेण रूपमतुलं सोहग्गं जोवणं तेयं ॥ ५८६ ॥

पुण्येन कुलं विपुलं कीर्तिः पुण्येन भ्रमति त्रिलोके ।

पुण्येन रूपमतुलं सौभाग्यं यौवनं तेजः ॥

पुण्णवलेणुववज्जइ कहमवि पुरिसो य भोइभूमीसु ।

भुंजेइ तत्थ भोण दइकप्पतरुमवे दिव्वे ॥ ५८७ ॥

पुण्यवलेनोपयते कथमपि पुरुषश्च भोगभूमिषु ।

भुंक्ति तत्र भोगान् दशकल्पतरुमिव दिव्यान् ॥

गिहनरुवर वरगेहे भोयणरुवसा य भोयणे मरिसे ।

कणयमयभायणाणि य भायणरुवसा पयच्छंति ॥ ५८८ ॥

गृहनरवर वरगृहानां च भोजनवृक्षाश्च भोजनानि सत्मानि ।

कनकमयानां च भाजनवृक्षा प्रयच्छन्ति ॥

वन्धंगा वग्गच्छे कृमुधंगा दिनि कृमुधमान्नाओ ।

दिनि मुयंघविण्णग विण्णमंगा महारग्गा ॥ ५८९ ॥

वराहा वरवज्राणि कुसुमाङ्गा ददति कुसुममाला ।

ददति मुग्धाविशेषेण विलेपनाङ्गा मयाहृष्टा ॥

तूंगा परतूरे मज्जंमो दिति मग्ममज्जाइं ।

आहरणंया दिनि य आहरणे कणवमणिजडिण ॥ ५९० ॥

तूयाङ्गा वरतीर्त्ताणि मयाङ्गा ददति सरसमालाणि ।

आभरणाङ्गा ददति च आभरणानि कनकमणिजडितानि ॥

ग्यणिदिणं ममिमूरा जह तह दीरंति जोइसारुकरा ।

पायव दसप्पयारा चित्तिपयं दिनि मणुयारणं ॥ ५९१ ॥

रत्नसीदिमयोः शशिभूता यथा तथा दीपन्ति ज्योतिर्हृष्टा ।

पादपा दशप्रकारा चिन्तितं ददति मनुष्येभ्यः ॥

जरमो य वाहिबेअणकासं सासं च जिभणं छिक्का ।

एए अण्णे दोमा ण हवंति हु भोगभूमीसु ॥ ५९२ ॥

जरा च व्याधिवेदनाकामं स्वसने जृम्भणे क्षुते ।

एते अन्ये दोषा न भवन्ति हि भोगभूमिषु ॥

सज्जे भोए दिण्वे भुंजित्ता आउसावमाणम्मि ।

मम्मादिहीमणुया कप्पावारेसु जायंति ॥ ५९३ ॥

सर्धान् भोगान् दिभ्यान् मुक्त्वा आयुर्वसाने ।

सम्यग्दृष्टिगनुजाः कल्पवासिषु जायन्ते ॥

जे पुणु मिच्छादिही विंतरमवणे मुजोइमा होनि ।

जम्हा मंदकमाया तम्हा देवेषु जायंति ॥ ५९४ ॥

ये पुनर्निष्पादयः व्यन्तरभावनाः सुज्योतिष्का भवन्ति ।

यस्मान्मन्दकमाया तस्मादेवेषु जायन्ते ॥

केइ ममसरेणगया जोइममवणे सुविंतरा देवा ।

गहिऊणं मम्मदंमण तत्थ जुया हंति वग्गपुरिसा ॥ ५९५ ॥

केचिम्ममसरेणगता ओनिष्कभायना मृग्यन्तरा देवाः ।

गृहीत्या मम्यग्दर्शने सतद्वपुना भगवन् यरपुरायाः ॥

लहिऊण देमसंजम गयलं वा होइ सुगोत्तमो मग्गे ।

भोत्तूग गुहे रम्मे पुणो वि अययरइ मणुयंत्ते ॥ ५९६ ॥

लब्ध्वा देशभूमिं सकलं वा भगवि सुगोत्तमः स्वर्गे ।

भुक्त्वा शुभान् रम्यान् पुनरपि भगवन् मनुजये ॥

तथ वि गुहाइं भुत्तं दिग्गा गहिऊण भरिय निगमंयो ।

गुरक्खत्ताणं पाणिय कम्मं हणिऊण मिग्गेइ ॥ ५९७ ॥

तस्य वि शुभानि भूत्वा दीप्तां गृह्णत्वा भूत्वा निर्घम्यः ।

शुद्ध्याने प्रत्ये कर्म ह वा सिद्धयनि ॥

मिंदं मळ्ळकां कम्मगहियं न होइ साणेंन ।

मिद्धात्तामी य णगे ण हइइ संगाग्गिओ जीरो ॥ ५९८ ॥

मिद्धं मल्लकां कम्मगहियं न भवति साधनेन ।

मिद्धात्तामी न लगे न भवति संगार्गी जीवः ॥

पंचमये गुणटानं एवं कदियं मया ममाग्गेम ।

एभो उट्ठं वोत्थं यमणयस्सियं तु लद्धमं ॥ ५९९ ॥

पंचमये गुणकानां एव कदियं मया ममाग्गेन ।

इह उठ्ठं वोत्थं यमणयस्सियं तु लद्धमम् ॥

इत्येवमप्युक्तवान् भगवान् ।





यत्कर्ममते वरिष्ठे कृतं न हि विना विना ॥ ५९ ॥

निन्द्यते न पुनः शान्तमिति वरिष्ठे कृतं न हि विना ॥

निन्द्यते न पुनः शान्तमिति वरिष्ठे कृतं न हि विना ॥

नो मादृ मो न पुनः परमापममात्मनोऽहं ॥ ६० ॥

परमापममात्मनोऽहं न पुनः परमापममात्मनोऽहं ॥

न मादृ मो न पुनः परमापममात्मनोऽहं ॥

अदृ मो न पुनः परमापममात्मनोऽहं ॥

मो न पुनः परमापममात्मनोऽहं ॥ ६० ॥

अदृ मो न पुनः परमापममात्मनोऽहं ॥

मो न पुनः परमापममात्मनोऽहं ॥

आपममात्मनोऽहं न पुनः परमापममात्मनोऽहं ॥

परमापममात्मनोऽहं न पुनः परमापममात्मनोऽहं ॥ ६० ॥

आपममात्मनोऽहं न पुनः परमापममात्मनोऽहं ॥

परमापममात्मनोऽहं न पुनः परमापममात्मनोऽहं ॥

एवं पाठ्य मया ज्ञानं न पावेहि शिष्यं ज्ञानं ॥

मणसं कृपयिष्यते तावामय कुणह वपमहिषं ॥ ६० ॥

एवं ज्ञात्वा मया ज्ञानं न पावेहि शिष्यं ज्ञानं ॥

मनःसकलविमुक्तं तावदावश्यं कुर्यात् व्रतसहितं ॥

आवामयाहं कर्म विज्ञावचं च दाणपूजाहं ॥

जं कुणह मम्मदिहो तं मयं विज्ञागणिमिनं ॥ ६१ ॥

आवश्यकादि कर्म वैयाहृत्य च दानपूजादि ॥

यत्करोति सम्यग्दृष्टिस्तन्मयं निर्जराणिमिनं ॥

जन्म ष णदगामिन्नं पायविलेओ ण ओमदीनेवो ।  
 गो नांयाद् समुदं सारं किमिच्छुमर्णाण्ण ॥ ६११ ॥  
 दग्ग न नभोगामि व पादविलेपो ण औपविलेप ।  
 न नौरिव १ समुदं सारयानि किमिच्छुमर्णिनेन ॥  
 जा संकप्पो चित्ते गुह्यगुहो भोयणाइकिरियाओ ।  
 ता इणउ गो वि किरियं पडिकमणाई य णिस्सेसं ॥ ६१२ ॥  
 पायसकल्पधित्ते पुभाजुमः भोजनादिकियात् ।  
 तावत्करोतु तामपि क्किवां प्रतिक्रमणादिकां च निःशेषां ॥  
 एमो पमत्तविग्गो माहु मए कहिउ समसेय ।  
 एत्तो उहुं पोच्छं अप्पमत्तो णिगामेह ॥ ६१३ ॥  
 एए प्रमत्तविरत्तः साधु मया कथितः समासेन ।  
 इत्त ऊर्ध्वं वक्ष्येऽप्रमत्तं निशाम्यत ॥

इति प्रमत्तगुणस्त्वानं वक्ष्यम् ।

णंदातेमपमाओ वयगुणसल्लेहिं मंदिओ णाणी ।  
 अणुवममओ अररवओ ज्ञाणणिर्लीणो हु अप्पमत्तो सो ॥ ६१४ ॥  
 नष्टाशेषप्रमादो व्रतगुणशोभेर्धितो ज्ञानी ।  
 अनुपशमकोऽश्रुपको ध्यानविलीनो हि अप्रमत्तः सः ॥  
 पुष्पुत्ता जे भावा हवन्ति निण्णेव तत्थ पायव्वा ।  
 सुवरत्तं धम्मज्झाणं हवेइ नियमेण इत्थेय ॥ ६१५ ॥  
 दूर्ध्वोक्ता ये भावा भवन्ति तत्र एव तत्र ज्ञातव्याः ।  
 गुरव धर्मध्यानं भवेत् नियमेन अत्रैव ॥

१ वनगणावाहं क. नावह ख. १ प्राकृतपंचरसप्रदेऽपीयं वाया वर्तते ।

ज्ञायारो पुण ज्ञाणं ज्ञेयं तह हवइ फलं च तम्मव ।  
 एए चउअहियाग णायव्वा होति नियमेण ॥ ६१६ ॥  
 ध्याता पुनर्ध्यानं ध्येयं तथा भवति फलं च तस्यैव ।  
 एते चतुरधिकारा ज्ञानव्या भवन्ति नियमेन ॥  
 आहारासणणिहा विजओ तह इंदियाण पंचण्हं ।  
 वार्धसपरिमेहाणं कोहाईणं कमायाणं ॥ ६१७ ॥  
 आहारासननिद्राणां विजयस्त्वया इन्द्रियाणां पञ्चानां ।  
 द्वाविंशतिपरीपहानां क्रोधादीनां कपायाणां ॥  
 निःसंगो निम्मोहो निग्गयवावारकरणमुत्तड्डो ।  
 दिढकाओ थिरचित्तो एस्मिओ होइ ज्ञायारो ॥ ६१८ ॥  
 निःसंगो निर्मोहो निर्गतव्यापारकरणमूत्राद्यः ।  
 दृढकायः स्थिरचित्त एतादृशो भवति ध्याता ॥  
 ध्याता ।

चित्तनिरोहे ज्ञाणं चउविहभेयं च तं मुणेपव्वं ।  
 पिण्डत्थं च पयत्थं रूवत्थं रूववज्जियं चैव ॥ ६१९ ॥  
 चित्तनिरोधे ध्यानं चतुर्विधभेदं च तन्मन्तव्यं ।  
 पिण्डस्थं च पदस्थं रूपस्थं रूपवर्जितं चैव ॥  
 पिण्डो बुचइ देहो तस्म मज्झट्ठिओ हू णियअप्पा ।  
 झाइज्जइ अइमुद्धो विप्फुरिओ सेयकिस्सण्हो ॥ ६२० ॥  
 पिण्ड उच्यते देहस्तस्य मध्यस्थितो हि निजात्मा ।  
 ध्यायते अतिशुद्धो विष्फुरित-मित्तिरिणस्थः ॥

देहस्थो साइज्जइ देहम्मंवेणविरुद्धो णिचं ।  
 निम्मलनेयं पुरंतो गयणयले गुरविचेर ॥ ६२१ ॥  
 देहस्थो प्यायते देहसम्बन्धविरहितो निम्प ।  
 निर्मलतेजसा स्फुरन् गगनगते गूर्वविम्ब इव ॥  
 जीवपणमप्पचयं पुरिमाचारं हि नियमदेहस्थं ।  
 अमलगुणं सायनं क्षाणं पिडित्यअदिहाणं ॥ ६२२ ॥  
 जीवप्रदेशप्रचयं पुरयाकारं हि निजदेहस्थं ।  
 अमलगुणं प्यायन् ध्यानं पिण्डरूपाभिधानं ॥  
 विहृत्यम् ।

आरिमओ देहस्थो साइज्जइ देहवादिरे तह य ।  
 अप्पा गुद्धमहावो तं रूपस्थं फुडं क्षाणं ॥ ६२३ ॥  
 पादसो देहस्थो प्यायते देहवासे तथा च ।  
 आत्मा गुद्धमभावस्तद्रूपस्थं सुखं ध्याने ॥  
 रूपस्थं पुन दुषिहं रागयं तह परगयं च पाययं ।  
 तं परगयं भणिज्जइ साइज्जइ जत्थं पंचपरमेही ॥ ६२४ ॥  
 रूपस्थं पुनः शिविधं स्वगने तथा परगतं च ज्ञातव्यं ।  
 तपरगने भणते प्यायते यत्र पंचपरमेही ॥  
 गगयं तं रूपस्थं साइज्जइ जत्थं अप्पणो अप्पा ।  
 नियदेहस्य चदिन्यो पुरंदरविनेयसंकासो ॥ ६२५ ॥  
 स्वगतं ॥ रूपस्थं प्यायने यत्र आत्मना आत्मा ।  
 निजदेहाद्विस्थः स्फुरन्नितेजःसंकाशः ॥

रूपसंघम् ।

देवघणाविहाणं जं कहियं देसविरयठाणम्मि ।

होइ पयत्थं ज्ञाणं कहियं तं वरजिणिदेहि ॥ ६२६ ॥

देवार्चनाविधानं यत्कथितं देशविरतस्थाने ।

भयति पदस्थे ध्यानं कथितं तद्वरजिनन्दैः ॥

एयपयमवसरं वा जवियइ जं पंचगुरुवसंसंघं ।

तं पि य होइ पयत्थं ज्ञाणं कम्माण णिइहणं ॥ ६२७ ॥

एकपदमधुरं वा जप्पने यत्पंचगुरुसम्बन्धं ।

तदपि च भयति पदस्थे ध्यानं कर्मणा निर्दहने ॥

पदसंघम् ।

ण य चित्तइ देहत्थं देहवदित्थं ण चित्तए किं पि ।

ण समयपरमयरूपं तं गयरूपं णिरालंघे ॥ ६२८ ॥

न च चिन्तयति देहस्य देहवाचस्य न चिन्तयेद्विषयम् ।

न स्वगतपरमयरूपं तद्वतरूपं निरालम्ब्य ॥

जन्थ ण करणं चित्ता अजरारूपं ण धारणा धेये ।

ण य यागो कोई चित्तस्य य तं णिरालंघे ॥ ६२९ ॥

यत्र न करणं चित्ता अजरारूपं न धारणा धेये ।

न च व्यापारः कश्चिच्चित्तस्य च तन्निगालम्ब्य ॥

इन्द्रियविषयविराग उत्थ गये त्रेणि रायदोता य ।

मगगावाग मत्थे तं गयरूपं मुणेयव्वं ॥ ६३० ॥

इन्द्रियविपरिकारा यत्र क्षयं यान्ति रागद्वेषौ च ।

मनोऽप्यादातः सर्वे तद्गतत्वं मन्तव्यम् ॥

गतत्वं, इति ध्येयम् ।

क्षेपं निविदपचारं अन्तर-रूपं तद् अरूपं च ।

रूपं परमेष्ठिगतं अन्तररूपं नेमिमुद्यारं ॥ ६३१ ॥

क्षेपं त्रिविधप्रकारं अन्तर-रूपं तथाऽरूपं च ।

रूपं परमेष्ठिगते अन्तररूपं तेनानुद्यारणं ॥

गयरूपं जं क्षेपं त्रिषेहि भणियं पि तं निरातलं ।

गुणं पि तं च गुणं जम्हा रयणनयाङ्गं ॥ ६३२ ॥

गतत्वं यद्वक्ष्ये त्रिनेर्मणितमपि तन्निगदं ।

गुणमपि तत्र रूपं परमाद्वान्तयाकीर्णं ॥

क्षेपम् ।

ज्ञानस्य फलं त्रिविदं कर्हति वरजोऽणो विगयमोहा ।

इहभवपरलोपभवं सर्वकर्मभ्रष्टं तद्वये ॥ ६३३ ॥

ध्यानस्य फलं त्रिविधं कथयन्ति वरयोगिनो विगतमोहाः ।

इहभवपरलोकभवं सर्वकर्मभ्रष्टं तद्वये ॥

ज्ञानस्य च सर्वाणि आर्यन्ति अहंसयाणि विविदाणि ।

दुरालोपणपटुर्ज्ञाने आप्तसकृत् च ॥ ६३४ ॥

ध्यानस्य च शक्त्या आपन्ते अतिशयानि विविधानि ।

दुरालोकनप्रभृतीनि ध्याने आदेशकरणं च ॥



एतन्मिदं गुणदाणे अन्वि आशमयाय परीक्षणे ।

साधनमप्यास्मि विष्णुं निरन्तरं अन्वि तं जम्हा ॥ ६४० ॥

एतन्मिदं गुणदाणे अस्ति आशमयाय परीक्षणे ।

साधनमप्यास्मि विष्णुं निरन्तरं अस्ति तद्वत्मान् ॥

मन्मथं गुणदाणं कट्टियं अपमनयामसंनुषं ।

एतो अपुन्यणामं पुच्छामि जहाणुपुन्यीण ॥ ६४१ ॥

मन्मथं गुणदाणं कट्टियं अपमनयामसंनुषं ।

एतोऽपुन्यं नाम वक्ष्यामि यथानुपूर्व्या ॥

हादमन्मथपुन्यदानं मन्मथम् ।

सं दुष्मेयपुत्रं रवयं उरमामिषं च जायन् ।

रवणं रवओ भावो उवममण होइ उवममओ ॥ ६४२ ॥

नृदिभेदशोक्तं क्षपकगुपशमके च ज्ञातव्यं ।

क्षपके क्षपको भाव उपशमके भवति उपशमकः ॥

रवणमु उवममेसु य अउप्यणामेसु हवइ तिपपारं ।

मुनउप्राणं पियमा पुनूतगवियरमवियारं ॥ ६४३ ॥

१ अन्वि न आशमयाय, क. । २ साधनमिदं अन्विषते क. । ३ परिष. क ।

४ अस्मादमेदुर्ध्वं वाट न-पुन्यके. उक्तं च--

मुने विष्ठा वितर्कः स्वाधीपारः लोकमो मतः ।

पुन्यसर्वं स्वाधेयं सर्वं अस्मादेतद्व्यामर्कं ॥ १ ॥

तदथा—

इत्याहुर्गुणान्तरे वाति गुणानुगामान्तरे ज्ञेये ॥

वर्षावाद्यस्यवर्षावे तदुपपत्त्ये भवत्यतः ॥ २ ॥

मुमुक्षामानुभूत्यात्मन आशुनायज्जिहवात् ।

अस्तज्जिह्वो वितर्कं स्वाधर्मिमतु सतिवर्कं ॥ ३ ॥

अर्थादर्थांतरे साध्याप्यज्जिह्वान्तरे च संक्षेपः ।

योगायोगान्तरे यत्र सवीचारं तदुपपत्ते ॥ ४ ॥



शरकेतु उदगमेतु चार्त्तनिगममु भवति विद्वता ।

शुद्धप्याने निगमात् पुनश्चमनितर्कमपि न ॥

पञ्तापं च गुणं वा तन्महा द्रव्याण मुक्तं मेण्ण ।

तन्महा पुद्गलणामं भगिणं भाणं मुनिदेहिं ॥ ६४४ ॥

पर्वणे च गुणं च पश्चात् द्रव्याणां तानानि मेरेन ।

तस्मात्पुणश्चरनाम भगिने प्याने मुनीन्देः ॥

भगिणं गुणं विषाहं यद्वद् मद् नेण तं भु अगारयं ।

तन्महा तम्म विषाहं मविषारं पुण भणिम्मामो ॥ ६४५ ॥

भगिने ध्रुवं निगर्कं वर्तने मद् तेन तत्तद् अनयानं ।

तस्मात्तस्य निगर्कं मवीचारे पुनर्भणिष्यामः ॥

जोण्हि तीहिं विषग्द अग्गग्गन्धेमु नेण मविषारं ।

पदमं मुहज्झाणं अतिग्गपग्गमोवमं भणिणं ॥ ६४६ ॥

योगैः त्रिभिः विवरति अक्षगर्धेत् तेन मविचारं ।

प्रथमं शुद्धप्याने अनीक्षणपराश्रमं भगिने ॥

अह चिरकालो लग्गह् अतिग्गपरसेण रुग्गविच्छेणं ।

तह कम्माण य हण्णे चिरकालो पदममुकम्मि ॥ ६४७ ॥

यथा चिरकालो लगति अतीक्षणपराश्रुता वृक्षविच्छेदे ।

तथा कर्मणा च हनने चिरकालः प्रथमशुद्धे ॥

१ अस्मादभ्येऽयं पाठः स-पुस्तके । सहभाषिनो गुणाः, लभमाविनो पर्वणाः, आत्मदम्ब्ये हानदंशनादया गुणा नरनारकादयो भक्षपर्वणाः उक्तं च—

सहभूता गुणा लेवा सुवर्णे पीतना यथा ।

क्रमभूतास्तु पर्वणा जीवे गत्यादयो यथा ॥ १ ॥

१ पुस्तकद्वयेऽपि 'विच्छेओ' इति पाठः ।

शेष्टाण उद्यममेष य कर्ममाणं तं अउप्यपरिणामो ।

तम्हा तं गुणटाणं अउप्यणामं तु तं भविष्यं ॥ ६४८ ॥

क्षयेणोपनामेन ■ वर्मणा यदूर्ध्वपरिणाम ।

तस्मात्तदुप्यणामं अदूर्ध्वनाम तु तद्वर्जितं ॥

तदूर्ध्वनाममुप्यणामं नवमम् ।

अहं तं अउप्यणामं अणियट्ठी तह य होइ पापध्वं ।

उद्यममग्नाद्यभावं हवेइं फुइ तम्हि ठावम्मि ॥ ६४९ ॥

यथा तदूर्ध्वनाम अनिहति तथा च भवति ज्ञातव्यं ।

आपदाधिकक्षाधिकभावो भवतः स्फुटं तस्मिन् गुणस्थाने ॥

गुणं तस्य पउत्तं जिणेहिं पुण्युत्तलकरणं क्षाणं ।

णत्थि यियर्त्ता पुणग्गि जम्हा अणियट्ठी तं तम्हा ॥ ६५० ॥

गुणं तत्र प्रोक्तं विनेः पूर्वोक्तलक्षणं ध्यानं ।

नास्ति निवृत्तिः पुनरपि यस्मान् अनिहति तत्तस्मात् ॥

हुंनि' अणियट्ठिणो ते पडिगमयं जम्मं एकपरिणामं ।

विमलपरक्षाणह्मअवहसिदाहिं जिह्मकम्मवणा ॥ ६५१ ॥

भवन्ति अन्विबतितस्ते प्रतिसमयं येषां एकपरिणामः ।

विमलतरध्यानदुत्तयहसिताभिः निर्द्वन्द्वकर्मवनाः ॥

इत्यनिवृत्तिगुणस्थानं नवमम् ।

जह अणियट्ठि पउत्तं ग्हाडयउवममियमेट्ठिमंजुत्तं ।

तह मुहुममंपगयं दुग्मेयं होइ जिणकहियं ॥ ६५२ ॥

यथाऽनिवृत्तिं प्रोक्तं श्रायिकीपनाभिकथ्रेणिवयुक्तं ।

तथा सूक्ष्ममाग्न्यायं द्विभेदं भवति जितकथितं ॥

तन्धेव हि दो भावा आणं पुणु निविहमेय नं सुत्तं ।

लोहकमाए मेमे ममलत्तं होइ चित्तस्य ॥ ६५३ ॥

तत्रैव हि द्वौ भावौ पदानं पुन त्रिविधभेदं तद्व्युक्तं ।

लोभकयादे दोषे समष्ट्य भवति चित्तस्य ॥

जह कोमुंमयवत्थं होइ मया मुहुमगयमंजुत्तं ।

एवं मुहुमकमाओ मुहुममगओनि णिदिट्ठो ॥ ६५४ ॥

यथा कौमुद्य बल भवति सदा सूक्ष्मगगनयुक्तं ।

एवं सूक्ष्मकायाः सूक्ष्ममगा इति निर्दिष्टं ॥

इति सूक्ष्ममाग्न्यायगुणस्थानं दशमम् ।

जो उवसमह कसाए मोहस्संरंधिपयडिवृहं च ।

उवसामओत्ति भणिओ खवओ णामं ण मो लहइ ॥ ६५५ ॥

य उपशाम्यति कथायान् मोहस्य सम्बन्धिप्रकृतिष्वहं च ।

उपशामक इति भणितः क्षपक नाम न लभते ॥

सुक्कज्झाणं पडमं माओ पुण तत्थ उवममो भणिओ ।

मोहोदयाउ कोई पडिउण य जाइ मिच्छत्तं ॥ ६५६ ॥

शुक्लप्यानं प्रथमं भावः पुन, तत्रोपशम भणितः ।

मोहोदयात् कथित् प्रतिपत्त्य च यानि मिष्यान्व ॥

कोई पमायगदियं ठाणं आभिज्ज पुण वि आरुहइ ।

पग्गमरीगे जीवो खवयसेट्ठीं च खहणणे ॥ ६५७ ॥

कथिअमादरदिमं स्थानमाश्रित्य पुनरुपारोहयति ।

धरमशरीरो जीवः क्षपकध्रेणि च रजोहनने ॥

कालं काउं कोई तत्थ य उवमामगे गुणहाणे ।

गुकज्झाणं झंझय उववज्जइ मज्जमिद्धीण ॥ ६५८ ॥

काउं कृत्वा कश्चित्तत्रोपशमके गुणस्थानं ।

गुहस्थानं प्याप्त्योत्पद्यते सर्वार्थसिद्धौ ॥

हेहदिओ तु चेहइ पंको मरपाणियम्मि जह मरइ ।

तह मोहो तम्मि गुणे हेउं लहियण उहंइइ ॥ ६५९ ॥

अधःस्थितो हि चेष्टते पंकः सर.पानीये यथा शरदि ।

तथा मोहस्तस्मिन् गुणे हेतुं लप्स्या उद्भूयते ॥

जो खवयसेहिरुट्ठो ण होइ उवमामिओचि सो जीवो ।

मोहवण्यं कुणंता उत्तो खवओ जिणिदेहि ॥ ६६० ॥

यः क्षपकध्रेण्याकटो न भवति उपशमक इति स जीवः ।

मोहक्षयं कुर्वन् उक्तः क्षपको जिनेन्द्रे ॥

इत्युपशान्तगुणस्थानयेकादशम् ।

णिस्सेममोहशीणे क्षीणकमायं तु नामगुणठाणं ।

पावइ जीवो णूणं खाइयभावेण संजुत्तो ॥ ६६१ ॥

निःशेषमोहशीणे क्षीणकमायं तु नाम गुणस्थानं ।

प्राप्नोति जीवो नूनं क्षायिकभावेन संयुक्तः ॥

तद गुरुकृतिव्यापारि निरुद्धं नीतिं नृ निरुद्धं नृ ।  
तद निरुद्धव्यापारि मो मीनकृता नो मीनकृता ॥ ६९३ ॥

तदा गुरुकृतिव्यापारि निरुद्धं नीतिं नृ निरुद्धं नृ ।

तदा मो मीनकृता नो मीनकृता ॥

गुरुकृता नो मीनकृता मीनकृता नो मीनकृता ।  
मीनकृता नो मीनकृता मीनकृता नो मीनकृता ॥ ६९४ ॥

गुरुकृता नो मीनकृता मीनकृता नो मीनकृता ।

मीनकृता नो मीनकृता मीनकृता नो मीनकृता ॥

गुरुकृता नो मीनकृता मीनकृता नो मीनकृता ।  
मीनकृता नो मीनकृता मीनकृता नो मीनकृता ॥ ६९५ ॥

गुरुकृता नो मीनकृता मीनकृता नो मीनकृता ।

मीनकृता नो मीनकृता मीनकृता नो मीनकृता ॥

गुरुकृता नो मीनकृता मीनकृता नो मीनकृता ।  
मीनकृता नो मीनकृता मीनकृता नो मीनकृता ॥ ६९६ ॥

१ मीनकृता नो मीनकृता । २ मीनकृता नो मीनकृता । ३ मीनकृता नो मीनकृता ।  
स-गुरुकृता ।

गुरुकृता नो मीनकृता मीनकृता नो मीनकृता ।

मीनकृता नो मीनकृता मीनकृता नो मीनकृता ॥ १ ॥

तदा—

निरुद्धव्यापारि मो मीनकृता नो मीनकृता ।

मीनकृता नो मीनकृता मीनकृता नो मीनकृता ॥ २ ॥

गुरुकृता नो मीनकृता मीनकृता नो मीनकृता ।

मीनकृता नो मीनकृता मीनकृता नो मीनकृता ॥ ३ ॥

निरुद्धव्यापारि मो मीनकृता नो मीनकृता ।

मीनकृता नो मीनकृता मीनकृता नो मीनकृता ॥ ४ ॥





मम्मुग्धाईकिरिया पाणं नह देमणं च गुवरं च ।

मज्जेमि मामण्यं अरहंताणं च इयराणं ॥ ६७६ ॥

समुदात्तक्रिया हानं तथा दशनं च मुख्यं च ।

सर्वेषां समानं आर्ता धेतरणा च ॥

जेमि आउत्तमाणं णामं गोदं च वेयणीयं च ।

ने अकयममुग्धाया सेमा य कयंति ममुग्घायं ॥ ६७७ ॥

येदां आहुः समानं नाम गोत्रं च वेदनीयं च ।

ते अहृतसमुदाताः शेषाश्च कुर्वन्ति समुदाते ॥

अंतरमुहूर्तकालो हवद् अहण्यो वि उत्तमो तेमि ।

गयवरिगुणा कोटी पुज्वाणं हवद् नियमेण ॥ ६७८ ॥

अन्तर्मुहूर्तकालो भवति अघण्योऽपि उत्तमः तेषां ।

गतवर्षोना कोटिः पूर्वाणां भवति नियमेन ॥

इति सर्वोपकेयनिगुणस्थानं त्रयोदशम् ।

पण्ठा अजोदकेवल्लि हवद् त्रिणो अपाइकम्म हणमाणो ।

लहृपंचरत्तरकालो हवद् पुडं तस्मि गुणठाणे ॥ ६७९ ॥

पञ्चाद्व्योमकेवल्ली भवति त्रिनः अपातिकर्मणां हन्ता ।

लघुपंचाक्षरकालो भवति स्फुटं तस्मिन् गुणस्थाने ॥

परमोरालियकायं सिटिलं होउण मलद् तरकाले ।

थक्कद् शुद्धगुहावो घणणिविडपणसपरमण्या ॥ ६८० ॥

परमौदारिककायः सिटिलो भूत्वा मज्जति तत्काले ।

तिष्ठति शुद्धस्वभावः घननिविडप्रदेशपरमात्मा ॥



णटाकिरियपविर्त्ती मुक्कज्झाणं च तत्थ णिदिट्ठं ।  
खाइयमावो मुद्धो णिरंजणो वीयगओ य ॥ ६८१ ॥

नटक्रियाप्रवृत्तिः शुक्लप्यानं च तत्र निर्दिष्टं ।

क्षायिको मात्रः शुद्धो निम्बजो वीतरागश्च ॥

ज्ञाणं सजोइकेवलि जह तह अजोइम्म णत्थि परमत्थे ।  
उचयारेण पउत्तं भूयत्थणयविक्खखाए ॥ ६८२ ॥

ध्यानं सयोगकेवलिनो यथा तथाऽयोगितं नाम्नि परमार्थेन ।

उपचारेण प्रोक्त भूतार्थनयविवक्षया ॥

ज्ञाणं तह ज्ञायारो ज्ञेयवियप्पा य होंति मणसहिण् ।  
तं णत्थि केवलिदुगे तद्धा ज्ञाणं ण संभवइ ॥ ६८३ ॥

ध्यानं तथा ध्याता ध्येयविकल्पाश्च भवन्ति मनःमहिते ।

तन्नास्ति केवलिद्विके तस्माद्ध्यानं न संभवति ॥

मणमहियाणं ज्ञाणं मणो वि कम्मदयकायजोयाओ ।  
तत्थ वियप्पो जायइ सुहासुद्धो कम्मउदण्ण ॥ ६८४ ॥

मनःसहितानां ध्यानं मनोज्ञं च कर्मणः काययोगात् ।

तत्र विकल्पा जायते शुभाशुभो कर्मोदयेन ॥

अमुहे अमुहं ज्ञाणं सुहज्झाणं होइ सुहपओगेग ।  
सुद्धे सुद्धं कहियं सामवाणामवं दुविहं ॥ ६८५ ॥

अशुभेऽशुभं ध्यानं शुभध्यानं भवति शुभोपयोगेन ।

शुद्धे शुद्धं कथितं मानवानमत्र द्विविधं ॥

पटमं बीयं नट्ठयं मागवयं होइ उय त्रिणो भगइ ।  
विगयामवं चउत्थं ज्ञाणं कहियं ममामेग ॥ ६८६ ॥

प्रथमं द्वितीयं तृतीयं माग्यं भवति परं त्रिनो भगति ।

विगतमाग्यं चतुर्थं ध्यानं कथितं ममामेन ॥

नहृददरिचंभो परममर्गमेव होह रिचृणो ।

उङ्ग मण्डपमण्डो मण्डपिवरेण पापेह ॥ ६८७ ॥

नहृददरिचंभो परममर्गमेव होह रिचृणो ।

उङ्ग मण्डपमण्डो मण्डपिवरेण पापेह ॥

नोदममिहमणिनं आवं तण्डपवज्रवर्मिं भापं ।

मण्डर नाम अववरो धम्मन्धिनेण आयामो ॥ ६८८ ॥

नोदममिहमणिनं आवं तण्डपवज्रवर्मिं भापं ।

मण्डर नाम अववरो धम्मन्धिनेण आयामो ॥

ततो परं न मण्डर अण्डर कानं तु अंतपरिदीनं ।

अद्या अलोयविणे धम्मदण्डं न तं अग्नि ॥ ६८९ ॥

ततो परं न मण्डर अण्डर कानं तु अंतपरिदीनं ।

अद्या अलोयविणे धम्मदण्डं न तं अग्नि ॥

ओ अत्य कम्ममुषो अलथलआयामपन्नए वयरे ।

मो रिनुगई पवण्णो माणुमरेणाउ उण्वयह ॥ ६९० ॥

ओ अत्य कम्ममुषो अलथलआयामपन्नए वयरे ।

मो रिनुगई पवण्णो माणुमरेणाउ उण्वयह ॥

पणयालगममहम्मा माणुमरेणं तु होह परिमाणं ।

मिट्ठाणं आयामो तिचियमित्तम्मि आयामे ॥ ६९१ ॥

पणयालगममहम्मा माणुमरेणं तु होह परिमाणं ।

मिट्ठाणं आयामो तिचियमित्तम्मि आयामे ॥

मण्डे उवरिं मिरमा विगमा दिहम्मि पिचलपण्णा ।

अवगाहणा य जम्हा उरकस्म जहण्णिशा दिहा ॥ ६९२ ॥

सर्वे उपरि सदृशाः त्रिषमा अवस्तने निधलप्रदेशाः ।

अवगाहना च यस्मात् उत्कृष्टा जवन्यादिष्टा ॥

एगो वि अणंताणं मिदो मिद्वाण देइ अवगासं ।

जझा मुद्दमत्तगुणो अवगाहगुणो पुणो तेसिं ॥ ६९३ ॥

एकोऽपि अनन्तानां सिद्धः सिद्धाना ददात्यवकाशं ।

यस्मात्सूक्ष्मत्वगुणः अवगाहनगुणः पुनः तेषां ॥

सम्मत्तणाणदंमणवीरियमुहमं सहं च अवगहणं ।

अगुरुलहूमव्याचाहं अद्दगुणा होंति मिद्वाणं ॥ ६९४ ॥

सम्यक्संज्ञानदर्शनरीर्यसूक्ष्मं तदेवावगाहनं ।

अगुरुलघु अभ्यासाथे अद्दगुणा भवन्ति सिद्धानां ॥

जाणइ पिच्छइ सयलं लोपालोयं च एक्कहेलाए ।

गुरसं महावजायं अणोवमं अंतपरिहीणं ॥ ६९५ ॥

जानाति पश्यति सकलं लोकान् लोकं च एक्क्रेठ्ठया ।

मुगं स्वभावानां अनुपमे अन्तपरिहीने ॥

रविमेरुचंद्रसागरगगनादिकं तु नान्धि जह लोए ।

उपमाणं मिद्वाणं नान्धि तद्वा गुरुसंपाणं ॥ ६९६ ॥

रविमेरुचन्द्रसागरगगनादिकं तु नान्धि यथा लोके ।

उपमाने मिद्धाना नान्धि तथा मुग्गगघाणे ॥

चत्थणं कट्ठेणं विता कर्णायं किं वि नान्धि मिद्वाणं ।

जझा अइंदियच्चं कम्मभावे ममुपण्णं ॥ ६९७ ॥

चत्थे चत्थे चत्था कट्ठायि किमपि नादिन मिद्धानां ।

यस्मादन्तर्गतं च यस्मान्तरं ममुपपन्ने ॥

नद्वदकम्मसंभवाद्वावगमगगनिमृत्कारणं ।

अद्दवगिद्दगुणाणं नयो नयो मव्यमिद्वाणं ॥ ६९८ ॥

नष्टात्कर्मव-धनमातिप्रतामरणविघ्नमुक्तेभ्यः ।

आवर्तितगुणेभ्यो नमो नमः सर्वसिद्धेभ्यः ॥

द्विजयगमामणमतुलं जयतु चिरं गूरिमपरउषपारी ।

पादय मातृ वि तदा जयंतु भक्त्या चि भुवनपते ॥६९९॥

मिनवभूतामनमनु ६ जयतु चिरं गूरि. स्वपरोपकारी ।

पादक. साधुमपि तथा जयन्तु भक्त्या आवि भुवनतटे ॥

जो पदर गुणर अचरार अण्णेमि भावसंगहं सुतं ।

मो हणर निययकम्मं कमेण मिट्ठालयं जाइ ॥ ७०० ॥

॥ पठति दृणोति कथयति भग्वेशा भावसंगहं सूतं ।

रा इति निजकर्म कृतेन सिद्धात्तयं वाति ॥

गिरिदिमलसेणगणहरमिस्मो णामेण देवसेणोति ।

अपुद्गजणपोहणत्वं तेण्यं विरदयं सुतं ॥ ॥ ७०१

धीविमलसेनगणधरादिप्यो नाप्ता देवसेन इति ।

अपुधजनपोधनार्थं तेनेइ विरचितं सूतं ॥

इत्यवोगहेतुविशुद्धत्वात् वतुरेकम् ।

हमि भाग्यनंदप्रदशान्धे नमो नमः ।



कर्मादयाद्भवो भावो जीवस्यौदमिकस्तु यः ।

स्वभावः परिणामः स्यात्तद्भवः पारिणामिकः ॥ ९ ॥

द्वौ नवाष्टादशकाग्रविंशतिश्च त्रयस्तथा ।

इत्यौपशमिकादीनां भावानां भेदसंग्रहः ॥ १० ॥

स्यादुपशमगम्यवत्त्वं चारित्र्यं च तयोर्विधम् ।

इत्यौपशमिको भावो भेदद्वयमुपागतः ॥ ११ ॥

मम्यस्यं दर्शनं ज्ञानं वृत्तं दानादिपञ्चकम् ।

सस्वकर्मक्षयोद्भूतं नयते धायिके मिदः ॥ १२ ॥

प्रकाशः—

दर्शनत्रयमाद्यं च ज्ञानचतुष्कमादिमम् ।

धायोपशमगम्यस्यं त्रयज्ञानं दानपञ्चकम् ॥ १३ ॥

गमोर्लघुत्वाचारित्र्यं मयमागम्यमस्त्विति ।

अष्टादश प्रभेदाः स्युः धायोपशमिकेन्द्रगा ॥ १४ ॥

चतस्रो गतयो चाधे त्रयो वेदागम्यमः ।

लेश्यावदुपमिद्वयं चत्वारश्च कथायुक्ताः ॥ १५ ॥

अज्ञानादेन संयुक्ताः प्रभेदा लक्षादिश्रुतिः ।

भ्रातृविकल्प मावस्य निर्दिष्टा नारादेदिभिः ॥ १६ ॥

अमम्यस्यं च दम्यस्यं जीवस्यं च त्रयः स्मृताः ।

चारित्र्यामिकमावस्य वेदा गणपतेः स्मृतम् ॥ १७ ॥

निर्व्यादिदिनं मिथ्यायाभयो वसंतयतादिनं ।

चतुर्षु चोपशमिषु चतुर्षु निश्चिन्ताः व्यवह ॥ १८ ॥

आद्यं विना चतुर्मासाः क्षपकथेणिसंभवाः ।  
 विनापशमिकं मिथं त्रयः स्युर्योग्ययोगिनोः ॥ १९ ॥  
 मिदं द्रावेव जायेते द्यायिकः पारिणामिकः ।  
 गुणस्यानान्यतो वक्ष्ये तत्तद्वृद्धगलक्षितम् ॥ २० ॥  
 मिथ्या मामादनं नाम मिथ्यमसंयताद्द्वयम् ।  
 विरताविरतारूपं स्यात् प्रमत्तं चाप्रमत्तकम् ॥ २१ ॥  
 अपूर्वकणामिरूपं ततोऽनिश्चितिसंज्ञकम् ।  
 सूक्ष्मलोभात्मकं तस्मादुपशान्तिः पायकम् ॥ २२ ॥  
 क्षीणमोहं तस्योग्ययोग्ययोगिस्थानमन्तिमम् ।  
 एतानि गुणस्यानानि प्रभवन्ति चतुर्दश ॥ २३ ॥  
 एतन्म्यवताः प्रजापते मिदं लोकोत्तमोत्तमाः ।  
 मृगुदात्मगुरुरानन्दरमाध्यादनतत्पराः ॥ २४ ॥  
 तत्रार्थं यद्वृणस्यानं मिथ्यात्वं नाम जायते ।  
 पंचानां दृष्टिमोहाग्यकर्मणामुदयोद्भवम् ॥ २५ ॥  
 तत्राम्यैदपिको भावो मिथ्याकर्मोदयोद्भवः ।  
 मुख्यतस्तद्वशाज्जन्तोर्वपरीत्यं प्रजायते ॥ २६ ॥  
 अदेषे देवतायुद्धिगतत्वे तत्त्वनिर्णयः ।  
 मिथ्यात्वाविच्छिन्नस्य जीवस्य जायते तथा ॥ २७ ॥  
 भपुरं जायते तीक्ष्णं तीक्ष्णं तु मधुरायते ।  
 पित्तज्वरान्जीवस्य वपरीत्यं यथाशिलम् ॥ २८ ॥

१ सप्तानां वा. । २ मिथ्यावचनान्तानुविचक्षणं चेति पंचानां दृष्टिमोह-  
 सेहा मिथ्यावचनकर्मोदयोद्भवे च सप्तानामपि । तदुक्तं--

एकधा विविधा वा स्यात्कर्म मिथ्यावचनकम् ।

त्रयोधायापचक्षुर्केच सतीने दृष्टिमोहकम् ॥



मयमोहाद्यया जीवो न जानात्यहितं हितम् ।  
 धर्माधर्मो न जानाति मिथ्यावासनया तथा ॥ २९ ॥  
 मिथ्यादृष्टेर्न रोचेत जैनं वाक्यं निवेदितम् ।  
 उपदिष्टानुपदिष्टमतत्वं रोचते स्वयम् ॥ ३० ॥  
 तन्मिथ्यात्वं जिनैः प्रोक्तं पंचधैकान्तवादतः ।  
 अतोऽहं क्रमशो वच्मि तत्तद्वादविकल्पनम् ॥ ३१ ॥  
 वेदान्तं क्षणिकत्वं च शून्यत्वं विनयात्मकम् ।  
 अज्ञानं चेति मिथ्यात्वं पंचधा वर्तते भुवि ॥ ३२ ॥  
 वेदवादी वदत्येवं विपरीतं तु मूढधीः ।  
 जलस्नानाद्भवेच्छुद्धिः पितॄणां मांसतर्पणम् ॥ ३३ ॥  
 गोयोनिस्पर्शनाद्धर्मः स्वर्गाप्तिर्जीवघातनात् ।  
 इत्यादिदुर्घटोत्कटथं वेदवादिमते मतम् ॥ ३४ ॥  
 यद्यंशुस्नानतो देही कृतपापादि मुच्यते ।  
 तदा याति दिवं सर्वे जीवास्तोयसमुद्भवाः ॥ ३५ ॥  
 यदर्जितं पुरा पापं जीवैर्योगश्रयाश्रयात् ।  
 कथं तेऽत्र विमुंचन्ति तीर्थतोयावगाहनान् ॥ ३६ ॥  
 उक्तं च गीतौषाः—

मरणे निर्जले क्षेत्रे भक्षुषिप्राप्तया मृतः ।  
 वेदवेदांगतत्त्वज्ञः कां गतिं न गमिष्यति ॥ १ ॥  
 यद्यसौ नरकं याति वेदाः सर्वे निरर्थकाः ।  
 यदि चैतन्मर्यादाभिः अलक्ष्यैः निरर्थकं ॥ २ ॥

१ अत्र हि न भक्षुषी यदा रोचते तदा भक्षुषी यदा तु न रोचते तदा तु न  
 हृष्येत् । २ अत्रवाच्यं, अ. । ३ नो न । ४ अत्र हि वसुदेवं वेदवादी मर्यादा  
 जीवार्हद मन्वते तस्याः तीर्थसाया नियमः विवते न तु तीर्थकारी निर्दिश्य  
 स्त्रीद्विष्टय दृष्टव्यस्तान्मव । ५ अस्याये “ओदी” इति, अ. —पा. । ६ अत्र  
 स्वर्गमार्गं नोति अ. ।



स्वकर्मकलपाकेन गोत्रजाः पशुनां गताः ।  
 आद्वयं घाननात्तेषां किञ्च स्यात्तत्पलादनम् ॥ ४४ ॥  
 कथंचित्पशुतां प्राप्तः पिता स्वकर्मपाकनः ।  
 हत्वा तमेव तन्मांसं तत्तृप्त्यैर्भक्षितं भवेत् ॥ ४५ ॥  
 यकनामा द्विजस्तस्य पिता मृत्वा मृगोज्ज्वलम् ।  
 तच्छादयेत्तत्पलं दत्त्वा द्विजेभ्यस्मेन भक्षितम् ॥ ४६ ॥  
 श्रुत्वाप्येवं पुराणोक्तं सुप्रसिद्धं कथानकम् ।  
 तथाप्यजाः प्रकुर्वन्ति पिण्णं मांसत्रपणम् ॥ ४७ ॥  
 मांसाशिनो न पात्रं स्युर्मांसदानं न चोत्तमम् ।  
 तत्पितृभ्यः कथं तृप्त्यै भुक्तं मांसाशिमिर्भवेत् ॥ ४८ ॥  
 भुक्तेऽप्यस्तृप्तिरन्येषां भवत्यस्मिन् कथंचन ।  
 तत्तत्स्वर्गं गता जीवाम्स्तृप्तिं गच्छन्ति निश्चितम् ॥ ४९ ॥  
 पुत्रेणार्पितदानेन पितरः स्वर्गमवाप्नुयुः ।  
 तर्हि तत्कृतपापेन तेऽपि गच्छन्ति दुर्गतिम् ॥ ५० ॥  
 अन्यस्य पुण्यपापाभ्यां भुनक्तुमन्यः शुभाशुभम् ।  
 ईदृशं विपरीतं तत्र कापि श्रूयते भुवि ॥ ५१ ॥  
 मृत्वा जीवोऽथ गृह्णाति देहमन्यं हि तरक्षणे ।  
 पितृत्वं कस्य जायेत धृत्यैवं जल्पनं ततः ॥ ५२ ॥  
 स्वकृतपुण्यपापाभ्यां प्राप्तिः स्यात्मुखदुःखयोः ।  
 तस्मान्नव्याः कुरुध्वं तद्यस्माच्छ्रेयो भवेत्सदा ॥ ५३ ॥  
 अथैके प्रवदन्त्येवं भूतोयाग्रिनगादिषु ।  
 भूतप्राप्तेषु सर्वेषु विष्णुर्वसति सर्वगः ॥ ५४ ॥

१ पिताऽथ कम पाकत. ख. । २ पितु । ३ पितृवरमृगस्य ४ पितृणो क. ।

उक्तं ॥ पुराणे—

जगते विष्णुः कथं विष्णुर्विष्णुः पर्येतमस्तके ।

ज्यालमालासुते विष्णुः सर्वे विष्णुमयं जगत् ॥ १ ॥

वसेन्मर्वाङ्गिदेतेषु विष्णुः सर्वगतो यद्वि ।

वृक्षादिपाननात्मोऽपि हन्यमानो न किं भवेद् ॥ ५५ ॥

मन्त्ररुर्मयराहाया विष्णोर्गर्भाभया दय ।

मत्स्यादिर्जलविम्बानां पूजनं क्रियते ततः ॥ ५६ ॥

तम्मान्मत्स्यादिजीरानां चैनन्यसंपुजां जनः ।

प्राणामिपेतनं तेषां आदादां क्रियते कथम् ॥ ५७ ॥

सर्वेष्वङ्गप्रदेशेषु ग्रन्थेकं देहधारिणाम् ।

प्रश्नाद्या देवताः सन्ति वेदार्थोऽयं मन्त्राननः ॥ ५८ ॥

उक्तं च पुराणे—

नाभिरुधाने पद्मेद्रुक्षा विष्णुः कण्ठे समाधितः ।

तालुमध्यस्थितो रुद्रो ललाटे च महेश्वरः ॥ १ ॥

नासाग्रे तु शिवं विद्यात्तरांते च परापरं ।

परात्परतरं नास्ति शास्त्रस्यायं त्रिनिधयः ॥ २ ॥

यज्ञादावामिषं तेषां भुक्तं छायादिदेहिनाम् ।

यदि स्वर्गाय जायेत नरकं केन गम्यते ॥ ५९ ॥

तदङ्गे चेन्न विद्यन्ते मच्छासं स्याधिरर्थकम् ।

सन्ति ते चेत्कथं हन्या निष्पूर्णयज्ञकर्मणि ॥ ६० ॥

इति मांसेन पितृवर्गवृत्तिदूषणम् ।

अन्ने चैवं वदन्त्येके यज्ञार्थं यो निहन्त्यते ।  
 तस्य मांसाग्निः सोऽपि सर्वं यान्ति गुणान्वयम् ॥ ११ ॥  
 तर्हि न क्रियते यज्ञः शागडैस्तस्य निषत्तार ।  
 पुराणादिभिः सर्वे प्रगच्छन्ति दिवं यथा ॥ १२ ॥  
 एते निहन्त्यमन्योन्तं मन्त्रा वाक्तामपञ्चमा ।  
 प्रत्तारैरेवमात्मनोऽपिरेकविरुद्धाग्रये ॥ १३ ॥  
 प्राणिशालान्तरे जन्ता प्रज्जन्ता मांसमग्रये ।  
 किंवा कान्धर्मुनी तेषां प्राणतये मर्गमोक्षयो ॥ १४ ॥  
 एवं च ॥ १५ ॥

निहन्त्यमन्योन्तं न मांसं न भक्ष्यं ये विज्ञातः ।  
 तस्यैव निहन्त्येव वाक्तामपिरेकविरुद्धाग्रये ॥ १६ ॥  
 मांसं शागडैस्तस्य निषत्तारं गौतमाः प्राणमपञ्चमा ।  
 निहन्त्यमन्योन्तं वदन्त्येके तस्यैव मांसमपञ्चमा ॥ १७ ॥

कृतिवदादिति न-म-ने प्राणमपञ्चमा-दितिरे ।  
 मांसमपञ्चमा न निहन्त्यमन्योन्तं शागडैस्तस्य निषत्तारं ॥ १८ ॥  
 नैव मांसमपञ्चमा-दितिरेकविरुद्धाग्रये ।  
 यथा निहन्त्यमन्योन्तं वदन्त्येके तस्यैव मांसमपञ्चमा ॥ १९ ॥  
 इति शागडैस्तस्य निषत्तारं गौतमाः प्राणमपञ्चमा ।  
 मांसमपञ्चमा न निहन्त्यमन्योन्तं वदन्त्येके तस्यैव मांसमपञ्चमा ॥ २० ॥  
 एवं च ॥ २१ ॥

मांसमपञ्चमा-दितिरेकविरुद्धाग्रये ।  
 निहन्त्यमन्योन्तं वदन्त्येके तस्यैव मांसमपञ्चमा ॥ २२ ॥

मांसमपञ्चमा-दितिरेकविरुद्धाग्रये ।  
 निहन्त्यमन्योन्तं वदन्त्येके तस्यैव मांसमपञ्चमा ॥ २३ ॥

द्वाघनेकथा शास्त्रं यत्कृतं दुष्टयेतयैः ।  
 नदंर्गाकृत्य जायते जना दुर्गतिभाजनम् ॥ ६८ ॥  
 नद्यायन्प्राणिपानेन माधितं मांममशगात् ।  
 पापं मस्यघने यस्माद्दुःखं दयाभ्रं तदुच्यते ॥ ६९ ॥  
 ररश्करमार्जारश्शानवानरगोमुगा ।  
 वृत्ताभित्तामृतुष्कोणा दुःस्पर्शा वन्नमसिमा ॥ ७० ॥  
 पंटाकारा अधोवक्त्रा दुर्गन्धाम्तमगावृताः ।  
 ध्वभेषु पापजीशानामुन्पत्ये मन्ति योनयः ॥ ७१ ॥  
 तीक्ष्णमिध्यात्यसंपुक्ता प्राणिपातनतत्पराः ।  
 घ्रा दुधेष्टिता जीवा उत्पद्यन्तेऽत्र योनिषु ॥ ७२ ॥  
 अन्तर्मुहूर्तकालेन पर्याप्तीः ममवाप्य पट्ट ।  
 तनः पतन्ति दृष्ट्याग्रे स्वयमेवोत्पतन्ति च ॥ ७३ ॥  
 असुरा आवृत्तीयान्तं योधयन्ति परस्परम् ।  
 प्रपुध्यन्ते स्वयं नेऽपि शाल्या वैरं पुरातनम् ॥ ७४ ॥  
 यन्नादां निहता पूर्वं लागाया मुष्टिपाततः ।  
 स्मृत्वा तत् प्राक्तनं वैरं भवन्ति हननोद्यताः ॥ ७५ ॥  
 कुन्तककचशूलार्धनानाशस्सस्तनूद्भवैः ।  
 खंडं खंडं विधायैवं प्रपीडयन्त्यहर्निशम् ॥ ७६ ॥  
 मृतंकस्येव संपातस्तदेहेषु प्रजायते ।  
 पावदायुःस्थितिभ्नेषां न तावन्मरणं भवेत् ॥ ७७ ॥  
 सप्तायःपिण्डमादाय संप्रदग्ध्यापिपोषमम् ।  
 निक्षिपन्ति मृगे तेषां विहितामिषभोजिनाम् ॥ ७८ ॥

शरीरं मानसं दुःखमन्योन्योद्धारितं च यत् ।  
 सहन्ते नारका नित्यं पूर्वपापविपाकतः ॥ ७९ ॥  
 लेण्यास्तिमोऽनुमानेपां संम्यानं ह्रुदसंत्रकम् ।  
 अतिह्रिष्टाः परीणामा लिंगं नपुमकाब्धयम् ॥ ८० ॥  
 क्षारोष्णतीव्रमद्भावनदीर्घतरणीजलान् ।  
 दुर्गन्धमृन्मयाहाराद्धंजने दुःखमद्भुतम् ॥ ८१ ॥  
 अक्ष्णोर्निर्मीलनं यावन्नास्ति सौख्यं च तावता ।  
 नरके पच्यमानानां नाकाणामहर्निशम् ॥ ८२ ॥  
 तस्मान्निर्गत्य कष्टेन पशुतां यान्ति ते जनाः ।  
 तत्र दुःखमसह्यं च जननीगर्भगन्धरे ॥ ८३ ॥  
 गर्भाद्विनिसृतानां स्यात् कियन्कालावशेषतः ।  
 यज्ञादां विहितं कर्म तत्तथैवोपतिष्ठति ॥ ८४ ॥  
 एवं भ्रमन्ति संसारे स्मृतिं लब्ध्वा पुनः पुनः ।  
 ज्ञात्वा च क्रियतां भव्यः प्राणिनां प्राणरक्षणम् ॥ ८५ ॥  
 यज्ञे पशुवधकृतेन स्वर्गप्राप्तिदूषणम् ।

गोयोनिर्वधते नित्यं न चास्यं मलिनं यतः ।  
 पश्य लोकस्य मूर्खत्वं वर्तते हेतुवर्जितम् ॥ ८६ ॥  
 तिरश्ची मांस्त्णाहारी नित्यं विष्मूत्रलालसा ।  
 तस्या अपरभागस्थं कथं देवत्वमागतम् ॥ ८७ ॥  
 ईदृग्विधापि बन्धा सा रज्ज्वा किं बन्ध्यते दृढम् ।  
 दुग्धार्थं पीड्यते दण्डैराक्रन्दन्ती स्वमापया ॥ ८८ ॥  
 तस्याङ्गे देवताः सर्वे तिष्ठन्ति सागरा नगाः ।  
 कथं गौर्यज्ञवेलायां बध्यते सा द्विजाधमैः ॥ ८९ ॥

यया गौ. प्रमवेदन्त्या तथैते श्रुकरादयः ।  
 तयोः सारस्यसज्जावे विष्णुग्राहारसेवनात् ॥ ९० ॥  
 एतन्वयवाग्विरुद्धं यन्मन्यन्ते जडवृद्धयः ।  
 आयन्या दुर्गता जन्म प्रपद्यन्ते मुनिधितम् ॥ ९१ ॥  
 न यन्या गौर्भवेदन्त्या गौर्वाणीन्यभिधानतः ।  
 जनेन्द्री विमला सध्या भव्यानां मुक्तिदायिनी ॥ ९२ ॥  
 इति गोयोनिर्वदनादुपणम् ।

विरचिर्जगत्. कर्ता संदत्ता गिरिजापतिः ।  
 गृधकाः पुण्डरीकांघ्र इत्युचु ध्रुतवेदिनः ॥ ९३ ॥  
 यदि प्रज्ञा जगत्कर्ता तर्हि श्रुकरस्य संमदि ।  
 विलोक्याप्सरसां वृन्दं जानो भोगामिलापुकः ॥ ९४ ॥  
 ततोऽर्था स्वास्पदं त्यक्त्वा कर्तुं लग्नस्तपो भुवि ।  
 सावज्जीत्या कृतं देवस्तनपोविग्रकारणम् ॥ ९५ ॥  
 एषा तिलोत्तमानृत्यं तत्राभूद्विषयातुरः ।  
 गत्या तदन्तिकं मादमाश्लेषं याचते हि सः ॥ ९६ ॥  
 अनिच्छन्तीं तिरोभूतां सां गवेपयसोऽभवत् ।  
 तस्मिन्मुखाणि चत्वारि पंचमं च सराननम् ॥ ९७ ॥  
 हास्यास्पदीकृतो देवस्तनः कुट्टोतिनिर्भरम् ।  
 सरास्येन भ्रमन्तोऽर्था भक्षणार्थं मरुद्गणान् ॥ ९८ ॥  
 एषा तान् क्षुमितान् सर्वांश्छिद्यं रुद्रेण तच्छिरः ।  
 अरेयजन् विषयासक्तिं प्रविष्टो यनराजकम् ॥ ९९ ॥  
 तिलोत्तमेति विभ्रान्त्या सेविता वच्छमल्लिका ।



मस्मसान्कुरुते रुद्रसैलोज्यं मृत्युचिन्तया ।  
 तदा संवमति कार्मा गंगागौरीममन्वितः ॥ १२२ ॥  
 दहत्येकतरे ग्रामं न पापी मण्यते जनैः ।  
 यो विश्वं निर्देहेन सर्वं न कथं याति पूज्यताम् ॥ १२३ ॥  
 अनन्यसंभवीशक्तियुक्तस्य प्रथिवीपतेः ।  
 पापं न विद्यते यस्मात्पापहन्ता न एव हि ॥ १२४ ॥  
 शम्भोर्न विद्यते पापं चेत्कथं भ्रमते भुवि ।  
 प्रतितीर्थं कगलप्रव्रज्यशीर्षम्य हानये ॥ १२५ ॥  
 भ्रमन्प्राप्तः पलाशाख्यं ग्रामं यावत्कपालभृत् ।  
 वत्सेन तत्रे शृंगाभ्यां विदार्य मारितो द्विजः ॥ १२६ ॥  
 तत्पापात् स्वतनुं कृष्णं दृष्ट्वा सोऽथ विनिर्यया ।  
 निजमातरमापृच्छ च तत्पापोच्छेदनेच्छया ॥ १२७ ॥  
 गतोऽनुमार्गतस्तम्य वृषभस्य महेश्वरः ।  
 गांगं च्छेदं प्रविष्टो डीं त्यक्तपापां वभूवतुः ॥ १२८ ॥  
 वृषभस्योपदेशेन गंगातोयावगाहनान् ।  
 जातस्त्यक्तकपालोऽपि कपालीत्युच्यते जनैः ॥ १२९ ॥  
 यदि यः स्वकृतं पापं निर्नाशयितुमक्षमः ।  
 सोऽन्येषां कल्मषापाये स्वामी स्यादिति कौतुकम् ॥ १३० ॥  
 ईदृक्पुण्यसंदोहं श्रुत्वा युक्तिविवर्जितम् ।  
 विभ्रमन्ति जना स्वरं संमार्गगहने वने ॥ १३१ ॥  
 महाम्बन्धम्य लोकस्य कर्ता हर्ता च रक्षकः ।  
 न कोऽपि विद्यते तस्माद्विपरीतमिदं वचः ॥ १३२ ॥

इत्येतद्विपरीनात्ममिध्यात्वं कथितं मयो ।

अतश्च क्षणिककान्ते मिध्यात्वं तच्चिगद्यते ॥ १३३ ॥

इति वेदान्तोक्त विपरीत मिध्याचम् ।

क्षणिककान्तमिध्यात्वशदी बाह्यो यद्वत्त्यतः ।

उत्पन्नश्च प्रतिध्वंसी भवन्त्यान्मा प्रतिक्षणम् ॥ १३४ ॥

क्षणिके स्वीकृते जीवे क्षणाद्ध्वमभावनः ।

पुण्यं पापं च तत्रापि कः प्राप्नोति पुरातनम् ॥ १३५ ॥

संयमो नियमो दानं कारुण्यं धृतमायना ।

सर्वथा घटते तेषां नित्यक्षणिकवादिनाम् ॥ १३६ ॥

तेषां बन्धो विना बन्धे देहो देहं विना तथा ।

नास्ति मोक्षस्तनो नूनं नास्तिकत्वं प्रसज्यते ॥ १३७ ॥

ज्ञानं यदि क्षणध्वंसि पालत्वे वेष्टितं च यत् ।

इदं पुष्पकलशार्घ्यं ममेति स्मर्यते कथम् ॥ १३८ ॥

स्मर्यते दृष्टिमात्रेण मैत्री वैरं पुरातनम् ।

निर्गतेन निज्जायासं पुनरागम्यते कथम् ॥ १३९ ॥

अन्यस्य क्षणिककान्ते वर्तन्ते स्वेच्छया जनाः ।

सुरामांसाशुनेनैते मग्न्यन्ते मोक्षमाधनम् ॥ १४० ॥

पात्रे यत्पतितं सर्वं भक्षामक्षं च सेव्यते ।

अस्मच्छास्त्रे प्रयुक्तत्वाच्चास्मिन् विचारणा मता ॥ १४१ ॥

सुरामांसाशुनात्स्वर्गं मोक्षं च गम्यते यदि ।

दुःमहं नारकं भीमं प्राप्यते केन हेतुना ॥ १४२ ॥

भस्ममान्कृत्ते रुद्रस्यलोभं सन्पचिन्तया ।

तदा संवसति कार्मा गंगागौरीममन्वितः ॥ १२२ ॥

दहन्येकतमं ग्रामं य पापी भण्यते जनैः ।

यो विद्मं निद्रेहेन मयं य कथं याति पुण्यताम् ॥ १२३ ॥

अनन्यसंभवीशक्तियुक्तस्य प्रथिर्वीपतेः ।

पापं न विद्यते यस्मान्पापहन्ता य एव हि ॥ १२४ ॥

शम्भोने विद्यते पापं चेत्कथं भ्रमते भुवि ।

प्रतितीर्थं कगलप्रव्रज्यदर्शार्पस्य हानये ॥ १२५ ॥

भ्रमन्प्राप्तः पलायान्यं ग्रामं यावत्कपालभृत् ।

वत्सेन तत्रे शृंगाभ्यां विदार्य मारितो द्विजः ॥ १२६ ॥

तत्पापात् स्वतनुं कृष्णं दृष्ट्वा सोऽथ विनिर्ययौ ।

निजमातरमावृच्छद्य तत्पापोच्छेदनेच्छया ॥ १२७ ॥

गतोज्जुमार्गतस्तस्य शृपभस्य महेश्वरः ।

गांगं च्छेदं प्रविष्टो द्रौ त्यक्तपार्श्वं यभूवतुः ॥ १२८ ॥

शृपभस्योपदेशेन गंगातोयावगाहनात् ।

जातस्त्यक्तकपालोऽपि कपालीत्युच्यते जनैः ॥ १२९ ॥

यदि य स्वकृतं पापं निर्नाशयितुमक्षमः ।

मोऽप्येषां कल्मपापाये स्वामी स्यादिति कीर्तुकम् ॥ १३० ॥

ईदृक्पुण्यसंदोहं श्रुत्वा युक्तिविवर्जितम् ।

विभ्रमन्ति जना स्वरं संमार्गहने वने ॥ १३१ ॥

महाम्बन्धस्य लोकस्य कर्ता हर्ता च रक्षकः ।

न कोऽपि विद्यते तस्माद्विपरीतमिदं वचः ॥ १३२ ॥

अपेनानानि भृतानि नोषादानानि पेनने ।  
 मिथ्येति गोमयादिभ्यो वृथिकाद्युपदर्शनान् ॥ १५३ ॥  
 म्यसंवेदनपेयत्वात् गुग्गुलूःशादिवद्भुरम् ।  
 जीवमिद्वि कथं नने मन्यन्ते दृष्ट्यादिन ॥ १५४ ॥  
 नायन्मवर्धने देहो यारज्जीवोपनिष्ठे ।  
 तस्याभावे न या वृद्धिर्देहो विलयमाप्नुयान् ॥ १५५ ॥  
 पंचभूतान्मिके देहे देहिना यजिने न हि ।  
 संभृतिर्गमनादीनां प्रत्यक्षे भूतसंचये ॥ १५६ ॥  
 मृत्वायममपद्रुषो बन्धुर्वा जनको परः ।  
 नासन्यं जातु संभूयान् प्रसिद्धमिति मर्यतः ॥ १५७ ॥  
 आत्यनुष्मरणार्ज्जीवो गतागतविनिधयात् ।  
 पृथक्करणमादृश्याज्जीवोन्मीनि विनिधयः ॥ १५८ ॥  
 नास्मि जीव इति प्यक्तं यद्वदन्तीह दुर्धियः ।  
 तन्मिध्यात्यं परित्याज्यं मय्यस्त्वभावनाफलान् ॥ १५९ ॥  
 इति भाषिकवादिनाकारणम् ।

तापमा प्रवदेत्येवं गर्वे जीवाः शिवात्मकाः ।  
 ततप्तेषां प्रवृत्तीन् विनयो मोक्षमाधकः ॥ १६० ॥  
 यद्यंगिनः शिवात्मानो वन्दकः किञ्च तद्विधः ।  
 तस्मात्कः केन वन्द्य स्याद्द्वयोः माम्यं शिवत्वयोः ॥ १६१ ॥  
 कर्मोपाधिविनिर्मुक्तं तद्वृत्तं शिवमुच्यते ।  
 यत्कर्मस्तोमसंयुक्तमशुद्धात्मकमित्यतः ॥ १६२ ॥

१ अस्मात्पूर्वं पर इति पाठः । २ मोक्षगतापनं ल. । ३ वृषह् वृषह्  
 आदयान् । ४ भाषिकवादिनाकारणं, ल. ।

अन्ये धीवरशौण्डायाः मूनकारादयो जनाः ।  
 मुक्तिभाजो भवन्त्येने यदि तध्येदशी भुनि ॥ १४३ ॥  
 जीरो नित्यस्तु पर्याया अनित्यास्तु तदाभयान् ।  
 अनित्यान्ने हि जीवस्य कथं निरुद्धमर्दता ॥ १४४ ॥  
 अनन्ततन्त्राणि कैकान्तमिध्यास्वस्यापभारणम् ।  
 कृन्ता मम्यान्नेदेतानां प्रयत्ने क्रियतामिति ॥ १४५ ॥  
 इति निगद्यणि कैकान्तमिध्या वम् ।

गणारसोपार्जितन्यदशयो यः मनामन ।  
 तस्याभावे वदत्येते आर्तको मानसार्द्रिय ॥ १४६ ॥  
 भयेतनानि भुतानि जीवः स्वाभेतनान्महः ।  
 कर्तुं मयेदित्तानिभ्य मयेतनस्य संभव ॥ १४७ ॥  
 मृगगोपास्मिन्ना जनिभेतन्यमभिधीयते ।  
 पित्रोदहगुरादिभ्यो मदजनिमेवा भवेत् ॥ १४८ ॥  
 तर्मादिभ्योपपत्त्येने तस्यापस्यानमेव ।  
 कर्तुं नाभ्यन्यजीवो विना तेनान्यदोदता ॥ १४९ ॥  
 मृगोदहोदहो मोक्षे जने दिव्यन्यदनिवम् ।  
 हा ! विनताभ्य तत्ताम्यन्नाज्ञावातादशीदता ॥ १५० ॥  
 अन्तर्माभ्याम नमत्या भवा माना गुरुमिव ।  
 मदस्य न न दाया न जीवस्यानामन स्तुत्य ॥ १५१ ॥  
 इत्येव निमदन दृष्टतावाह दिव्य विदितम् ।  
 मृग मृगोदहता विदता जन्तव नाभिहस्तता ॥ १५२ ॥

अचेतनानि भूतानि नोपादानानि चेतने ।  
 मिथ्येति गोमयादिभ्यो वृथिकायुपदर्शनान् ॥ १५३ ॥  
 स्वसंवेदनवेद्यत्वात् सुखदुःखादिवद्भुवम् ।  
 जीवसिद्धिं कथं नते मन्यन्ते दुष्टवादिनः ॥ १५४ ॥  
 सावत्संबर्धते देहो यावज्जीवोपतिष्ठते ।  
 तस्याभावे न मा वृद्धिर्देहो विलयमाप्नुयात् ॥ १५५ ॥  
 पंचभूतात्मिके देहे देहिना वर्जिते न हि ।  
 संभूतिर्गमनादीनां प्रत्यक्षे भूतसंचये ॥ १५६ ॥  
 मृत्वायमभवद्भूतो यन्पूर्वा जनको परः ।  
 नास्तन्यं जातु संभूयात् प्रसिद्धमिति मर्चतः ॥ १५७ ॥  
 जात्यनुस्मरणार्ज्जीवो यतागतविनिधयात् ।  
 पृथक्करणमादभ्याज्जीवोन्तीति विनिधयः ॥ १५८ ॥  
 नास्ति जीव इति ध्येतः यद्वदन्तीह दुर्धियः ।  
 तन्मिध्यात्वं परित्याज्यं मम्यस्त्वभावनाचलात् ॥ १५९ ॥  
 इति नैस्तिकशास्त्रनिराकरणम् ।

तापमा प्रवदंत्येवं गर्वे जीराः शिवात्मकाः ।  
 ततन्नेषां प्रह्वीत विनयो मोक्षमापकः ॥ १६० ॥  
 यदंगिनः शिवात्मानो वन्दकः किञ्च तद्विधः ।  
 तस्मात्कः केन वन्द्य स्याद्द्वयोः माम्भं शिवत्वयोः ॥ १६१ ॥  
 कर्मोपाधिविनिर्मुक्तं तद्रूपं शिवमुच्यते ।  
 यन्कर्मस्तोमसंपुनःपुनःपुनःपुनःपुनः ॥ १६२ ॥



ज्ञाता दृष्टा पदार्थानां त्रिलोकयोदरवर्तिनाम् ।  
 तस्याज्ञानम्यभावत्वं मृते मांस्यो निरीश्वरः ॥ १७४ ॥  
 तस्य मत्तानुमारित्वमङ्गीकृत्य प्रकल्पितम् ।  
 मन्करीपृग्णेनेह वीरनाथस्य संमदि ॥ १७५ ॥  
 जिनेन्द्रस्य ध्वनिग्राहिभाजनाभावतस्ततः ।  
 शक्रेणाग्र ममानीतो ब्राह्मणो गांतमामिधः ॥ १७६ ॥  
 मद्यः सदीक्षितस्तत्र म ध्वनेः पात्रनां यया ।  
 ततो देवमभां त्यक्त्वा निर्धर्या मन्करी मुनिः ॥ १७७ ॥  
 मन्त्यस्मदादयोऽप्यग्र मुनयः श्रुतधारिणः ।  
 तांस्त्यक्त्वा स ध्वनेः पात्रमग्राणी गांतमोऽभवत् ॥ १७८ ॥  
 संचिन्त्यैवं क्षुधा तेन दुर्विदग्धेन जल्पितम् ।  
 मिथ्यात्वकर्मणः पाकादज्ञानत्वं हि देहिनाम् ॥ १७९ ॥  
 हेयोपादेयविज्ञानं देहिनां नास्ति ज्ञानुपिद् ।  
 तस्मादज्ञानतो मांध इति ज्ञातास्य निश्चयः ॥ १८० ॥  
 यत्कालान्तरितं वस्तु दृष्टपूर्वमनेरुधा ।  
 यद्यज्ञानी कथं तस्य नेदृत्वं दृश्यतेऽद्विनः ॥ १८१ ॥  
 अयं बन्धुः पिता गुणुर्मानेयं भगिनी प्रिया ।  
 एषां पृथग्विग्रहा तस्य ज्ञानहीनस्य दुर्घटा ॥ १८२ ॥  
 पंथाधरिषयाः सर्वैः संप्यन्ने स्वेच्छया कथम् ।  
 पापणम्नंभवणस्य न काचिद् कर्तृता मता ॥ १८३ ॥  
 ज्ञानं विना न पारिश्रै तद्विना ध्यानमापनम् ।  
 ध्यानं विना कथं मोक्षस्तस्माज्ज्ञानं मतां मतम् ॥ १८४ ॥





गृहीत्या चीवरं दण्डं भिक्षापात्रं च कंवलम् ।  
 भिक्षाशनं समानीय स्वावांसे भुज्यते मदा ॥ १९५ ॥  
 कियत्काले गतेऽप्येवं जाता मुभिक्षता ततः ।  
 भणितं संशमाहृत्य शान्तिना गणधारिणा ॥ १९६ ॥  
 न्यज्रध्वं कुत्सिताचारं भज्रध्वं शुद्धसदृशम् ।  
 कुरुध्वं गर्हणं निन्दां गृहीध्वं सद्भवं पुनः ॥ १९७ ॥  
 आकर्ण्येन्यग्रजः शिष्यो जिनचन्द्रो मर्षादिदम् ।  
 नो शययतेऽधुना धत्तुं जिनराचारिणं यतम् ॥ १९८ ॥  
 मद्यचर्यमप्येतत्त्वं नयत्यं स्थितिभोजनम् ।  
 भूतले शयनं मौनं द्विमासं केशदुश्चनम् ॥ १९९ ॥  
 एकस्थानमलाभत्वं सर्वाङ्गमलधारणम् ।  
 अमद्यान्यन्तरायाणि भिधानियतकालिकी ॥ २०० ॥  
 न शक्या मनसा मोक्तुं द्वाविंशतिपरीषदाः ।  
 इत्याद्यनेकधा दुःखमधुना केन मत्तने ॥ २०१ ॥  
 इदानींतनमाचारं सुखमाध्यं न शक्यते ।  
 तत्परित्यक्तुमस्माभित्तस्मान्मौनं भज्रस्य हि ॥ २०२ ॥  
 ततोऽग्निं गणी नैवं सुन्दरं यत्स्थयोदितम् ।  
 स्योदरपूतये हेतुर्नो हेतुर्मोक्षमाधने ॥ २०३ ॥  
 तद्रोषात्पाविना मूर्ध्नि हत्वा दण्डेन माग्निः ।  
 भूत्वा चैत्यगृहे तस्मिन्माचारोऽप्यंतरोऽभवत् ॥ २०४ ॥  
 ततः शिष्यमुत्स्यं यावन्त्ययं भूत्वा गणाग्रणीः ।  
 तावदिशधा पुनर्दातुं प्रारंभे ध्यन्तरामरः ॥ २०५ ॥

ततो भव्यैः समाराध्यं सम्यग्ज्ञानं त्रिनोदितम् ।  
 असाधारणसामग्र्यं निःशेषकर्मणां क्षये ॥ १८५ ॥  
 इत्येवं पंचधा प्रोक्तं मिथ्यात्वं तद्वशाज्जनाः ।  
 संसाराब्धौ निमज्जन्ति दुःखकल्लोलसंकुले ॥ १८६ ॥  
 इत्यज्ञानमिथ्यात्वम् ।

अथोर्ध्वं स्वमतोद्भूतं मिथ्यात्वं तच्चिगद्यते ।  
 विहितं त्रिनचन्द्रेण ज्वेताम्वरमतामिधम् ॥ १८७ ॥  
 मण्डितं क्षतेऽब्दानां मृते विक्रमराजनि ।  
 सौराष्ट्रे बह्वर्षीपूर्यामभूत्तत्कथ्यते मया ॥ १८८ ॥  
 उज्जयिन्या पुरी ग्याता देशेऽभ्यवन्तिकामिधे ।  
 तत्राष्टाङ्गनिमित्तज्ञो भद्रबाहुर्मूर्नीश्वरः ॥ १८९ ॥  
 निमित्तज्ञानतन्मेन कथितं मुनिजनान् प्रति ।  
 प्रभवत्यत्र दूर्भिक्षं वर्षाद्दशकावधि ॥ १९० ॥  
 निशम्येति वचस्तस्य नान्यथा स्यात्कदाचन ।  
 सर्वे स्वध्यगणोपेना प्रतिदेशं विनिर्ययुः ॥ १९१ ॥  
 शान्तिनामा गणी चैकः संश्रामो विहरन् पुरीम् ।  
 मागधं बह्वर्षीं यावत्तत्र संनिष्ठेनैव म ॥ १९२ ॥  
 तत्राप्यभून्महार्मीमं दूर्भिक्षमनिदुःगदम् ।  
 विदार्योदरमन्यसामर्थ्ये ररुर्विक्रयणे ॥ १९३ ॥  
 तत्र गोदुग्धशर्करांश्च लोकीयोदरपूर्तये ।  
 मण्डितं चरित्वैव स्वीकृता कुम्भिता क्रिया ॥ १९४ ॥

१ उज्जयिन्या पुरी कथाया बह्वर्षीपूर्यामभूत्तत्कथ्यते इति च-पुराणैः पुरा  
 च अमर-न्यान् चरित्वैव स्वीकृता च पुराणैः चरित्वैव स्वीकृता ॥ १९४ ॥

गृहीत्वा चीवरं दण्डं मिक्षापात्रं च केवलम् ।  
 भिक्षाशनं समानीय स्वावोसे भुज्यते सदा ॥ १९५ ॥  
 कियत्काले गतेऽप्येवं ज्ञाना मुभिक्षता ततः ।  
 भणितं संघमाहूय शान्तिना गणधारिणा ॥ १९६ ॥  
 त्यज्जघ्नं कुत्सितचारं भज्जघ्नं शुद्धसदृशम् ।  
 कुलघ्नं गर्हणं निन्दां गृहीध्वं मद्भूतं पुनः ॥ १९७ ॥  
 आकर्ण्येत्यग्रजः शिष्यो जिनचन्द्रो ध्रुवीदिदम् ।  
 नो शययतेऽधुना धर्तुं जिर्नगचारिणं व्रतम् ॥ १९८ ॥  
 ब्रह्मचर्यमपेलत्वं नम्रत्वं स्थितिभोजनम् ।  
 भूतले शयनं मौनं द्विमासं केवलुञ्चनम् ॥ १९९ ॥  
 एकस्थानमलामृत्यं सर्वाङ्गमलधारणम् ।  
 असद्वान्यन्तरायाणि भिधानियतकालिकी ॥ २०० ॥  
 न शक्या मनसा मोदुं द्वाविंशतिपरीषदाः ।  
 इत्याद्यनेकधा दुःखमधुना केन मस्यते ॥ २०१ ॥  
 इदानीतनमाचारं मुग्धसाध्यं न शक्यते ।  
 तत्परित्यक्तुमस्मामिरतस्मान्मानं भग्नस्य हि ॥ २०२ ॥  
 ततोऽभाणि गणी नैवे सुन्दरं यत्त्वयोदितम् ।  
 स्योदरपूर्ये हेतुर्नो हेतुर्मोक्षमाधने ॥ २०३ ॥  
 तद्रोपात्पाविना मूर्ध्नि हत्वा दण्डेन मारितः ।  
 मृत्वा चैत्यगृहे तस्मिन्नाचार्यो ध्येनरोऽभवत् ॥ २०४ ॥  
 ततः शिष्यमुख्यं यावन्मर्यं भूत्वा गणाप्रणीः ।  
 तावदिशधा पुनर्द्रोतुं प्रारम्भे प्यन्तरामरः ॥ २०५ ॥



गृहीत्वा चीवरं दण्डं मिधापात्रं च कंचलम् ।  
 भिक्षाशनं ममानीय म्यावांसे भुज्यते सदा ॥ १९५ ॥  
 कियत्काले मनेऽप्येवं जाता मुभिक्षता तत ।  
 भणितं संघमाहूय शान्तिना गणघाग्निना ॥ १९६ ॥  
 त्यजर्ध्वं कुत्सिताचारं मज्जर्ध्वं शुद्धसदृशम् ।  
 कुरुर्ध्वं गर्हणं निन्दां गृहीध्वं मद्भृतं पुनः ॥ १९७ ॥  
 आफर्ण्येत्यग्रजः शिष्यो जिज्ञासुश्चो ब्रवीदिदम् ।  
 नो शक्यतेऽपुना धत्तुं जिज्ञासांरितं व्रतम् ॥ १९८ ॥  
 ब्रह्मचर्यमपेलत्वं नमत्वं स्थितिभोजनम् ।  
 भूतले शयनं मानं द्विमासं केशलुञ्चनम् ॥ १९९ ॥  
 एकस्यानमलाभत्वं गद्याद्भ्रमलधारणम् ।  
 असप्तान्यन्तरायाणि भिधानियतकालिकी ॥ २०० ॥  
 न शक्या मनसा मोहुं द्वाविंशतिपरीषदाः ।  
 इत्याद्यनैरुथा दुःश्रमपुना केन मयते ॥ २०१ ॥  
 इदानीं तनमाचारं गुरोर्माध्यं न शक्यते ।  
 सत्परिन्त्यतुमम्मामिरतम्मान्मानं मज्जस्य हि ॥ २०२ ॥  
 सतोऽग्निनि गर्णा नैवं सुन्दरं यच्चयोदितम् ।  
 म्योदरपूतये हेतुर्नो हेतुर्मोक्षमाधने ॥ २०३ ॥  
 सद्रोषात्पापिना भूर्ध्वं हत्वा दण्डेन मास्तिः ।  
 मृत्वा चैत्यगृहं सन्मिमाचार्थो प्यंतरोऽभरन् ॥ २०४ ॥  
 ततः शिष्यमुत्थं यावन्मयं भूत्वा गणाग्रणीः ।  
 तावदिशधा पुनर्दातुं शारेभ्ये प्यन्नरामरः ॥ २०५ ॥

मीनेन तस्य शान्त्यर्थं काष्ठमष्टांगुल्यायनम् ।  
 चतुर्ध्वं च म प्वायमिति संकल्प्य पूजितः ॥ २०६ ॥  
 श्वेताम्बरः परिम्याष्य गमनितो यथाविधि ।  
 तन्मेन परित्यक्तं चेष्टितं विक्रियात्मकम् ॥ २०७ ॥  
 ममभूत् कुलदेवोऽसौ पर्युपासनमंत्रकः ।  
 अद्यापि जलगन्धार्यं प्रपूज्यनेज्जिमक्तिः ॥ २०८ ॥  
 अन्ते श्वेतमद्वयं धृत्वा तस्यार्चनं कृतम् ।  
 तस्माद्भूद्विष्टं लोके श्वेताम्बुग्मतामिधम् ॥ २०९ ॥  
 ममुत्पन्नेऽपि कैवल्ये भुनक्ति केवली जिनः ।  
 नारीणां तद्भवे मोक्षः माधूनां ग्रन्थसंपुजाम् ॥ २१० ॥  
 ईदृशं शास्त्रसंदोहं विपरीतं जिनोक्तिः ।  
 संविधाय वदत्येष गुरुद्रोही निम्कुशः ॥ २११ ॥  
 यस्यानन्तसुखं तस्य नास्त्याहारप्रसंगता ।  
 यद्यस्यनन्तसौख्यानां व्याघातो जायते ध्रुवम् ॥ २१२ ॥  
 नास्ति क्षुधां विनाहारः क्षुन्मुख्या दोषसंहतिः ।  
 इति हेतोर्जिनेन्द्रस्य सदोषत्वं प्रमज्यते ॥ २१३ ॥  
 वेदनीयस्य सद्भावे शुभुश्चाद्यं प्रजायते ।  
 तस्मारकेवलितं भुक्तिर्न भवेदोषकारिणी ॥ २१४ ॥  
 दग्धगजुसमं वेद्यं स्वशक्तिपरिवर्जितम् ।  
 असमर्थं स्वकार्यस्य कर्तृत्वे क्षीणमोहिनि ॥ २१५ ॥  
 मोहमूलं भवेद्वेद्यं मोहविच्छेदमीषुपि ।  
 तदेतोर्निष्फलं वेद्यं छिन्नमूलतरुर्धया ॥ २१६ ॥

शुश्रूक्षा भोजतुमिच्छा स्यादिच्छापि मोहजा मृता ।  
तन्मध्ये वीतरागस्य भोजनेन स्यान्मदोपता ॥ २१७ ॥

तद्यथा—

अक्षार्थेषु विरक्तस्य गुप्तित्रयोपसंपुञ्जः ।  
माघोः सम्पद्यते ध्यानं निधलं कर्मणा रिपुः ॥ २१८ ॥  
ध्यानात्ममरसीभावस्तस्मान्स्वात्मन्यवस्थितिः ।  
ततस्तु कुण्ठे नूने नि शेषं मोहसंक्षयम् ॥ २१९ ॥  
भूत्वाथ क्षीणमोहान्मा शुरुध्याने द्वितीयके ।  
स्थित्वा पानिधेयं कृत्वा केवली प्रभवत्यर्मा ॥ २२० ॥  
दशाष्टदोषनिर्मुक्तो लोफालोकप्रकाशकः ।  
अनन्तगुणसंतुष्ट कथं भुनक्ति केवली ॥ २२१ ॥  
सन्ति क्षुधादयो दोषाः कियन्तथेज्जिनेजिन ।  
निर्दोषो वीतरागोऽर्मा परमात्मा कथं भवेत् ॥ २२२ ॥  
अर्थादासीन्ययुक्तानां माधुनां भोजनादिकम् ।  
कुर्वन्ता वीतरागस्य सर्वेषां सम्मतं मताम् ॥ २२३ ॥  
मिथ्याश्चर्यव्यगमम्पक्षतीव्रदापयतामयम् ।  
प्रलापस्तूपचारेण वीतरागा समी यत ॥ २२४ ॥  
विनाहारं न च कापि दृश्यतेऽथ तनुस्थितिः ।  
तस्मात्तेवलिभिर्नैतमाहारो गृह्यते मदा ॥ २२५ ॥  
नो कर्म कर्मनामा च लेपाहारोऽथ मानसः ।  
ओजश्च कवलाहारधेन्याहारो हि पशुधः ॥ २२६ ॥



एवमनेकधाहारो देहस्य स्थितिकाण्डम् ।

तन्मध्ये कवलाहारो चान्यो देहस्थितौ भवेत् ॥ २२७ ॥

नोकर्मकर्मनामानमाहारं गृह्णोऽर्हतः ।

देहस्थितिर्भवत्येतदस्माकमपि मम्मतम् ॥ २२८ ॥

आहोश्चित्कवलाहारपूर्विका स्यान्ननुस्थितिः ।

त्वर्यवं भण्यते तत्र प्रमिद्धा व्यभिचारिणा ॥ २२९ ॥

एकेन्द्रियेषु जीवेषु लेपाहारः प्रजायते ।

आहारो मानसो देवसमूहेष्वखिलेष्वपि ॥ २३० ॥

इति हेतोर्जिनेन्द्रस्य कवलाहारपूर्विका ।

देहस्थितिर्न चक्षुष्या त्वया स्वप्नेऽपि दुर्मते ! ॥ २३१ ॥

एकादश जिने सन्ति शुभुक्षायाः परीपहाः ।

तस्मात्केवलानां मुक्तिर्निवार्या भवादृशैः ॥ २३२ ॥

किमेवं क्रियते मूढ ! पुनश्चर्वितचर्वणम् ।

क्षुत्पिपासादयो दोषा यस्मात्पूर्वं निगकृताः ॥ २३३ ॥

क्षुत्पिपासादयो यस्मान्न ममर्था मोहसंसये ।

द्रव्यकर्माश्रयात्तेषामस्तित्वमुपचारतः ॥ २३४ ॥

अस्तु या तस्य वेद्योत्थशुभुक्षाया विचारणा ।

अनेकजीवहिंसाद्यं पश्यन् भुंक्ते कथं जिन ॥ २३५ ॥

यस्माच्छुद्धमशुद्धं वा स्वल्पज्ञानपुता जनाः ।

कुर्वन्ति भोजनं तद्वन् केवली कुरुते कथम् ॥ २३६ ॥

१ अस्याप्रेऽयं पाठः ख-पुस्तकं । उक्तं चान्यत्र—

गोष्ठम तिर्यगरे कमल गारेय मानसो अमरे ।

गणपमुकवलाहारो पक्खी भोजो गणे लेभो ॥ १ ॥

२ हेते ख. ।

अन्तरायान् विना तस्य प्रशुचिर्भोजने यदि ।  
 भ्रावकेभ्योऽतिनीचत्वं निन्दास्पदं प्रजायते ॥ २३७ ॥  
 करोति चान्तरायांश्च रपे चायोग्यवस्तुनि ।  
 तदा सर्वज्ञभावस्य दक्षिणेन जलाञ्जलिः ॥ २३८ ॥  
 तथापि कवलाहारं ये वदन्ति त्रिनेशिनः ।  
 गुगुप्स्यादमदोन्मत्ता अन्यन्ति घूर्णिता इव ॥ २३९ ॥  
 इति केवलमुक्तिनिराकरणम् ।

अथ स्त्रीणां भवे तस्मिन् मोक्षोऽस्तीति वदन्ति ये ।  
 ते भवन्ति महामोहग्रहग्रस्ता जना इव ॥ २४० ॥  
 यद्यपि कुस्ते नारी तपोऽप्यत्यन्तदु सहम् ।  
 तथापि तद्भवे तस्या मोक्षो दूरतरो हि सः ॥ २४१ ॥  
 तस्या जीवो न किं जीवो जीवमात्रोऽयं वा स्मृतः ।  
 मोक्षा वाप्तिर्न जायेत नारीणां केन हेतुना ॥ २४२ ॥  
 जीवसामान्यतो मुक्तिर्यद्यस्ति चेत्प्रजायताम् ।  
 मातृगिन्याघट्टपाणां नारीणामविशेषतः ॥ २४३ ॥  
 गर्दवाशुदना योर्ना गलन्मलाधयत्वतः ।  
 रजःस्त्रालनमेतामां मासं प्रति प्रजायते ॥ २४४ ॥  
 उन्पद्यन्ते सदा स्त्रीणां योर्ना कक्षादिमन्त्रिषु ।  
 मूत्रमापर्षास्तिका यत्स्यास्तदेहस्य स्वभावः ॥ २४५ ॥  
 स्वभावः शुक्लितमन्त्राणां लिङ्ग चान्यन्नशुक्लितम् ।  
 तस्मात् प्राप्यते साक्षाद्देहा संयमभावना ॥ २४६ ॥

एवमनेकधाहारो देहस्य स्थितिकारणम् ।  
 तन्मध्ये कवलाहारो बान्धो देहस्थितौ भवेत् ॥ २२७ ॥  
 नोकर्मकर्मनामानमाहारं गृह्णतोऽर्हतः ।  
 देहस्थितिर्भवत्येतदस्माकमपि सम्मतम् ॥ २२८ ॥  
 आहोश्चित्कवलाहारपूर्विका स्यात्तनुस्थितिः ।  
 त्वयैवं भण्यते तत्र प्रसिद्धा व्यभिचारिता ॥ २२९ ॥  
 एकेन्द्रियेषु जीवेषु लेपाहारः प्रजायते ।  
 आहागे मानसो देहसमूहेष्वखिलेष्वपि ॥ २३० ॥  
 इति हेतोजिनेन्द्रस्य कवलाहारपूर्विका ।  
 देहस्थितिर्न वक्तव्या त्वया स्वप्नेऽपि दुर्मते ! ॥ २३१ ॥  
 एकादश जिने मन्ति शुभुखाद्याः परीषदाः ।  
 तस्मात्केवलानां भुक्तिरनिवार्या भवादृशः ॥ २३२ ॥  
 किमेवं क्रियते मूढ ! पुनश्चर्वितचरणम् ।  
 क्षुत्पिषामादयो दोषा यस्मात्पूर्वं निराकृताः ॥ २३३ ॥  
 क्षुत्पिषामादयो यस्मात्तन्ममयो मोहसंक्षये ।  
 द्रव्यकर्माश्रयानेषामस्तित्वमुपचारतः ॥ २३४ ॥  
 अस्तु वा तस्य वेद्योग्यबुभुक्षाया विचारणा ।  
 अनेकजीवर्हिमाद्यं पश्यन् मुंक्ते कर्षं त्रिनः ॥ २३५ ॥  
 यस्मान्बुद्धमनुद्धं वा मत्पत्रानपुता जनाः ।  
 कुर्यान्ति भोजनं तदन् केरली कुरुते कथम् ॥ २३६ ॥

१ अस्मादेवैव १७३. अ-पुष्पद. । उक्तं चाख्यम्—

लोहमं निषपरे कथं लोहं मानसो मनो ।

मत्पुष्पदलाहारो वरुणी भोजो लोहं मेनो व १ ७

१ देने क. ।

1

2

3

एवमनेकधाहारो देहस्य स्थितिकारणम् ।

तन्मध्ये कवलाहारो वान्यो देहस्थितौ भवेत् ॥ २२७ ॥

नोकर्मकर्मनामानमाहारं शृणुतोऽर्हतः ।

देहस्थितिर्भवत्येतदस्माकमपि सम्मतम् ॥ २२८ ॥

आहोश्चिक्कवलाहारपूर्विका स्यात्तनुस्थितिः ।

त्वर्यं भण्यते तत्र प्रमिद्धा व्यभिचारिता ॥ २२९ ॥

एकेन्द्रियेषु जीवेषु लेपाहारः प्रजायते ।

आहारो मानसो देवसमूहेष्वस्त्रिलेष्वपि ॥ २३० ॥

इति हेतोर्जिनेन्द्रस्य कवलाहारपूर्विका ।

देहस्थितिर्न वक्तव्या त्वया मय्नेऽपि दुर्मते ! ॥ २३१ ॥

एकादश जिने मन्ति बुभुक्षायाः परीपहाः ।

तस्मात्केवलानां भुक्तिर्निवार्या भवादृशः ॥ २३२ ॥

किमेवं क्रियते मूढ ! पुनश्चरितचरणम् ।

क्षुत्पिषामादयो दोषा यस्मात्पूर्वं निगकृताः ॥ २३३ ॥

क्षुत्पिषामादयो यस्मात्प्र ममर्था मोहसंसये ।

द्रव्यकर्माश्रपाप्तेषामस्तित्वमुपचारतः ॥ २३४ ॥

अन्तु वा तस्य वेद्योन्यबुभुक्षाया विचारणा ।

अनेकजीविहिंसाद्यं पश्यन् भुंक्ते कवं जिनः ॥ २३५ ॥

यस्माच्छुद्धमशुद्धं वा म्यन्पत्रानयुता जनाः ।

कुर्वन्ति भोजनं तद्वन् केनर्त्ता कुरुते कथम् ॥ २३६ ॥

१ अस्वाधेडय गड अ-पुष्पड । इ-व आन्यड—

नोकर्मं निष्पत्ते कर्म जारेष माणयो अमरे ।

अल्पमुक्तवलाहारो परनी भोजो जने भोजो ॥ १ ॥

२ हेने ख. ।

लिखायूकाश्रयस्थानं वस्त्रादीनां परिग्रहः ।  
 तंस्थादानविनिक्षेपान् क्षालनादङ्गिनां वधः ॥ २५६ ॥  
 वस्त्रयाचनया दैन्यं प्राप्तौ व्यामोहता भवेत् ।  
 तस्मात्संपमहानिः स्यात्त्रिर्मलन्वं च दूरगम् ॥ २५७ ॥  
 सतोऽन्तर्गताभेदाभ्यां ग्रन्थाभ्यां परिवर्जितम् ।  
 जिनेन्द्रकथितं लिंगं सम्यग्त्वं तस्य भावना ॥ २५८ ॥  
 मत्सम्यक्त्वस्य जीवस्य चारित्र्यं मोक्षमाधकम् ।  
 तस्मात्तर्ग्रन्ध्यतायुक्तं जिनलिंगं प्रशस्यते ॥ २५९ ॥  
 संपमोऽयं हि दुःसाध्यो जिनकल्पात्मिकोऽधुना ।  
 ततः स्थविरकल्पस्य वृत्तमस्माभिराश्रितम् ॥ २६० ॥  
 जिनकल्पोऽस्ति दुःसाध्यः मर्यसंगपरिच्युतः ।  
 तस्मात्स्वयं नैर्ग्रन्ध्यं प्रमाणीकृतमञ्जमा ॥ २६१ ॥  
 नैवं परिग्रहाः सन्ति कल्पे स्थविरसंज्ञके ।  
 तस्याश्रयेऽपि तद्वापयं स्वयं विफर्लीकृतम् ॥ २६२ ॥  
 अर्धतत्कथ्यते वृत्तं जिनकल्पाभिधानकम् ।  
 यस्मान्मुक्तिवधूसंगो भय्यानां जायते ध्रुवम् ॥ २६३ ॥  
 शुद्धसम्यक्त्वसंपुक्ता विजिताश्रयपायकाः ।  
 भुतमेकादशाङ्गं ये जानन्त्येकाक्षरं यथा ॥ २६४ ॥  
 पादयोः षण्टकं लंघं नेत्रयो रत्नसंगमे ।  
 स्वयं नापनयन्त्यन्यैः स्फुटिते मौनधारणम् ॥ २६५ ॥  
 आद्यसंज्ञनोपेताः संतनं मौनधारिणः ।  
 गुहायां पर्वतेऽरण्ये यमन्ति निम्नगावटे ॥ २६६ ॥

उन्मृग्यमार्गं मृग्या नृणां नृणां नृणां नृणां ।  
 नो मृग्यमृग्या नृणां नृणां नृणां नृणां ॥ २४३ ॥  
 मृग्यं नृणां नृणां नृणां नृणां नृणां ।  
 मृग्यं नृणां नृणां नृणां नृणां नृणां ॥ २४४ ॥  
 मृग्यं नृणां नृणां नृणां नृणां नृणां ।  
 मृग्यं नृणां नृणां नृणां नृणां नृणां ॥ २४५ ॥  
 नृणां नृणां नृणां नृणां नृणां नृणां ॥ २४६ ॥  
 नृणां नृणां नृणां नृणां नृणां नृणां ॥ २४७ ॥  
 नृणां नृणां नृणां नृणां नृणां नृणां ॥ २४८ ॥  
 नृणां नृणां नृणां नृणां नृणां नृणां ॥ २४९ ॥  
 नृणां नृणां नृणां नृणां नृणां नृणां ॥ २५० ॥  
 नृणां नृणां नृणां नृणां नृणां नृणां ॥ २५१ ॥  
 नृणां नृणां नृणां नृणां नृणां नृणां ॥ २५२ ॥

इति श्रीकामदेवविनोदः ।

मृग्या निग्रेन्मृग्यां मृग्यां मृग्यां मृग्यां ।  
 मृग्यां निग्रेन्मृग्यां मृग्यां मृग्यां मृग्यां ॥ २५३ ॥  
 मृग्यां निग्रेन्मृग्यां मृग्यां मृग्यां मृग्यां ।  
 मृग्यां निग्रेन्मृग्यां मृग्यां मृग्यां मृग्यां ॥ २५४ ॥  
 मृग्यां निग्रेन्मृग्यां मृग्यां मृग्यां मृग्यां ॥ २५५ ॥  
 मृग्यां निग्रेन्मृग्यां मृग्यां मृग्यां मृग्यां ॥ २५६ ॥  
 मृग्यां निग्रेन्मृग्यां मृग्यां मृग्यां मृग्यां ॥ २५७ ॥  
 मृग्यां निग्रेन्मृग्यां मृग्यां मृग्यां मृग्यां ॥ २५८ ॥  
 मृग्यां निग्रेन्मृग्यां मृग्यां मृग्यां मृग्यां ॥ २५९ ॥  
 मृग्यां निग्रेन्मृग्यां मृग्यां मृग्यां मृग्यां ॥ २६० ॥

१-२४७ तमश्लोकस्योत्तरार्द्धं २४८ तम श्लोकस्य पूर्वार्धं स्व-पुस्तकाद्वर्तते ।  
 २ सुक्त्वा निग्रेन्मृग्यां इत्यादि श्लोकादुत्तरं 'श्रीनिवाणनिराकरणं' इति पाठः  
 स्व-पुस्तके ।





मिथ्यात्वालंघनापाकात् प्रयान्ति नारकीं गतिम् ।  
 यत्रास्ति दुःखमत्युग्रमन्योन्योर्दारितं महत् ॥ २८६ ॥  
 तस्मान्निर्गत्य तैरर्थीं गतिं प्राप्यानुभूयते ।  
 भारातिवाहनाद्यं यद्धीमं दुःखमनेकधा ॥ २८७ ॥  
 कथंचिन्मानुषं जन्म प्राप्तं तत्रापि सद्यते ।  
 अर्थार्जनविहीनत्वाद्दुःखं स्वोदग्रपूर्तये ॥ २८८ ॥  
 काकतारुण्यकन्यायाद्भृतिर्द्वी समाप्यते ।  
 तत्रास्ति मानसं दुःखं हीनाधिकविभूतितः ॥ २८९ ॥  
 एवमनेकधा दुःखं दुःखं दुःखं पुनः पुनः ।  
 ततो मिथ्यात्वमुत्सृज्य सम्यक्त्वे भावनां कुरु ॥ २९० ॥  
 इत्येवं पंचधा प्रोक्तं मिथ्यादृष्ट्यभिधानकम् ।  
 नोपादेयमिदं सर्वं मिथ्यात्वविषदोपतः ॥ २९१ ॥  
 इति<sup>१</sup> प्रथमं मिथ्यात्वं गुणस्थानम् ।

अतः सासादनं नाम गुणस्थानद्वितीयकम् ।  
 निगद्यतेऽत्र मुख्यो हि भावः स्यात्पारिणामिकः ॥ २९२ ॥  
 सम्यक्त्वासादने नाम वर्तनं यस्य विद्यते ।  
 सासादनं इति प्रादुर्भूतयो भाववेदिनः ॥ २९३ ॥  
 अनादिकालसंभूतमिथ्याकर्मोपशान्तितः ।  
 स्यादौपशमिकं नाम सम्यक्त्वमादिमं हि तत् ॥ २९४ ॥  
 संत्यज्य वेदकं याति प्रशान्तात्मिकया दृश्यम् ।  
 गत्वा वा सादिमिथ्यात्वं द्वितीया सा दृगुच्यते ॥ २९५ ॥

१ सुखं. ख. । २ अर्थं पाठः ख-गुप्तके २९२ ओकादुत्तरं । स च 'इत्यादि-  
 मिथ्यात्वं गुणस्थानं प्रथमं' इत्येवं कृतः । ३ मिति. ख. । ४ प्रशान्तात्मिकयोर्दत्तं क ।

आद्योपशममम्यवत्त्वात् प्रच्युतो याति वामताम् ।  
च्युतोऽथवा द्वितीयं स्यान्मिथ्यात्वं याति वा न वा ॥ २९६ ॥

दिकलम् —

आद्योपशममम्यवत्त्वरत्नाद्रेर्वा परिच्युत ।  
एकतरोदये जाते मध्येऽनन्तानुबन्धिनाम् ॥ २९७ ॥  
समयादावलीपट्टकं कालं यावन्न गच्छति ।  
मिथ्यात्वभूतलं जीयस्नावत्सामादनो भवेत् ॥ २९८ ॥  
अपूर्णश्वभ्रजीवेषु लब्ध्यपर्याप्तवन्तुषु ।  
सर्वेष्वपि न जायेत सामादनो विनिश्चितम् ॥ २९९ ॥  
आहारकद्रव्यं तीर्थकर्तृत्वनामकर्म च ।  
सामादनो न कृष्णाति मम्यवत्त्वस्य विराधनात् ॥ ३०० ॥  
भव्यत्वोदयता तस्य मम्यवत्वग्रहणाद्विदुः ।  
तद्ग्रहणस्य सामर्थ्यात्किपत्कालेन सिद्धयति ॥ ३०१ ॥  
पश्य मम्यवत्वमाहात्म्यं कियत्कालाप्तिसंभवम् ।  
ततोऽथ भावना भव्य ! कर्तव्यार्हनिर्गुं त्रया ॥ ३०२ ॥  
सांसादनगुणस्थानं ध्यरदारात्प्रकथ्यते ।  
आद्योपशमिको भावो मुख्यत्वेनेह जायते ॥ ३०३ ॥

इति<sup>१</sup> द्वितीयं सांसादनं गुणस्थानम् ।

मिथ्यात्वालंबनापाकान् प्रयान्ति नारकीं गतिम् ।  
 यत्रास्ति दुःखमत्युग्रमन्योन्योदीरितं महत् ॥ २८६ ॥  
 तस्मान्निर्गत्य तैरर्थीं गतिं प्राप्यानुभूयते ।  
 भारातिवाहनाद्यं यद्धीमं दुःखमनेकधा ॥ २८७ ॥  
 कथंचिन्मानुषं जन्म प्राप्तं तत्रापि मद्यते ।  
 अर्थार्जनविहीनत्वाद्दुःखं स्वोदरपूर्तये ॥ २८८ ॥  
 काकनार्लीयकन्यायाद्गतिर्देवी ममाप्यते ।  
 तत्रास्ति मानसं दुःखं हीनाधिकविभूतितः ॥ २८९ ॥  
 एवमनेकधा दुःखं दुःखं दुःखं पुनः पुनः ।  
 ततो मिथ्यात्वमुत्सृज्य सम्यक्त्वे भावनां कुरु ॥ २९० ॥  
 इत्येवं पंचधा प्रोक्तं मिथ्यादृष्ट्यमिधानकम् ।  
 नोपादेयमिदं सर्वं मिथ्यात्वविषदोपत ॥ २९१ ॥  
 इति प्रथमं मिथ्यात्वं गुणस्थानम् ।

अतः सामादने नाम गुणस्थानद्वितीयकम् ।  
 निगद्यतेऽत्र मुख्यो हि भावः स्यात्पारिणामिकः ॥ २९२ ॥  
 सम्यक्त्वात्मादने नाम वर्तनं यस्य विद्यते ।  
 सामादन इति प्रादुर्मुनयो भाषवेदिनः ॥ २९३ ॥  
 अनादिकालमभून्मिथ्याकर्मोपशान्तिनः ।  
 स्यादोपशान्तिकं नाम सम्यक्त्वमादिमं हि नम् ॥ २९४ ॥  
 मन्वश्य वेदकं यानि शान्तान्निमित्तका दृष्टम् ।  
 गन्वा वा मादिमिथ्यात्वं द्वितीया मा दगुप्यते ॥ २९५ ॥

आद्योपशमसम्यक्त्वान् प्रच्युतो याति वामताम् ।  
च्युतोऽथवा द्वितीयं स्थानमिध्यात्वं याति वा न वा ॥ २९६ ॥

द्विकलम् —

आद्योपशमसम्यक्त्वस्त्नाद्रेर्वा परिच्युतः ।  
एकतरोदये जाते मध्येऽनन्तानुबन्धिनाम् ॥ २९७ ॥  
समपादावलीपट्टकं कालं यावन्न गच्छति ।  
मिध्यात्वभूतलं जीवस्तावत्सामादनो भवेत् ॥ २९८ ॥  
अपूर्णद्वभ्रजीवेषु लब्धपर्याप्तजन्तुषु ।  
सर्वेष्वपि न जायेत सामादनो विनिश्चितम् ॥ २९९ ॥  
आहारकद्रव्यं तीर्थकर्तृत्वनामकर्म च ।  
सामादनो न यज्जाति सम्यक्त्वस्य विराधनान् ॥ ३०० ॥  
भव्यत्वोदयता तस्य सम्यक्त्वग्रहणाद्विदुः ।  
तद्वहणस्य सामर्थ्यात्क्रियत्कालेन सिद्धयति ॥ ३०१ ॥  
पश्य सम्यक्त्वमाहात्म्यं कियत्कालाप्तिसंभरम् ।  
ततोऽत्र भावना भव्य ! कर्तव्यार्हनिर्देशं स्वया ॥ ३०२ ॥  
सामादनगुणस्थानं व्यवहारात्प्ररुध्यते ।  
आद्योपशमिको भावो मुख्यत्वेनेह जायते ॥ ३०३ ॥

इति द्वितीयं सामादनं गुणस्थानम् ।

अथ मिश्रगुणस्यानं प्रकथ्यते यथागमम् ।

आयोपशक्तो मासो मुख्यत्वेनेह जायते ॥ ३०४ ॥

मिश्ररुमोदयार्त्तावे पर्यायः सर्वधानिजः ।

न मम्यस्तं न मिथ्यान्तं मात्रोऽर्मा मिथ उच्यते ॥३०५॥

अहिङ्गालक्षणो भर्मा यज्ञादिलक्षणोऽथवा ।

मन्त्राने गममायेन मिथकर्मविपाकतः ॥ ३०६ ॥

जिनोक्तिं मन्यते यद्वदन्योक्तिं मन्यते तथा ।

दये दोषोऽग्निते मस्तिष्मर्येन दोषमंयते ॥ ३०७ ॥

निघ्नन्या यत्तपो कन्यामन्तर्धर द्विजलापगाः ।

परैरा जायने षट्तिमिथं म्यागहणाव्वदम ॥ ३०८ ॥

गोचर्ये चादेत्ये वा गमनादिपदयः ।

दृष्टोपादं पलम्बेन यत्नेन विरुद्धाशयाः ॥ ३०७ ॥

जनमारां पश्यन्त्येवं मर्मताः कलहयन्ताः ।

पेठिकागममालाया महालक्ष्मीमहालयाः ॥ ३१० ॥

प्रच्यन्ति पद्मा मन्त्रा प्रच्यन्ति तद्वनः ।

ॐ दिक्षाशामशामांशांशादुर्गादुर्गाय नमः ॥ २२२ ॥

मौलार्थः कृष्णं धातुं विभृता मन्त्रिदेवदे ।

अज्ञानेन जीवस्य ह्यारमर्तिर्द्विगुणादिवर्धते ॥ ३१७ ॥

अनेकद्वारेने मयं विश्वभारतमाश्रितम् ।

येतां नै निश्चिन्तादृशा प्रपन्नि भवद्वता ॥ ३१३ ॥

मृष्टान्निभस्यान्नयोर्मन्त्रं यः पठति तस्य पापना ।

महाः प्राणस्य मय्याम मित्रं ददाते मनो न हि ॥३१४॥



अथोपु विग्नो नैव न स्यात्तं वगद्विग्न ।  
 द्वितीयानां कयायाणां विशाकाद्वन्नो यतः ॥ ३२४ ॥  
 श्रद्धानं कुरुते मन्यो द्यात्रयाधिगमेन वा ।  
 द्रव्यादीनां यथास्नायं मय्यगद्विग्नसंयतः ॥ ३२५ ॥  
 पविग्नित्तो पदाधोनां हर्षोद्विग्नमिनेतमि ।  
 या रुचिर्जायते माध्वी तच्छ्रद्धानमिति स्मृतम् ॥ ३२६ ॥  
 आस्तागमयतीशानां तन्वानामन्यवुद्धितः ।  
 जिनाजयैव विश्यामो भवन्त्याज्ञा हि मा पग ॥ ३२७ ॥  
 धातिकर्मक्षयोद्धतकेवलज्ञानरश्मिभिः ।  
 प्रकाशकः पदार्थानां त्रैलोक्योदग्बर्तिनाम् ॥ ३२८ ॥  
 सर्वज्ञः सर्वतो व्यापी त्यक्तदोषो एवंचक ।  
 देवदेवेन्द्रवन्द्यांहिगप्तोऽर्मा परिकीर्तित ॥ ३२९ ॥  
 पूर्वापरविरुद्धात्मदोषसंघातवर्जित ।  
 यथावद्वस्तुनिर्णयतिर्यत्र म्यादागमो हि स ॥ ३३० ॥  
 विराजतेऽष्टविंशत्या शुद्धमूलगुणः मदा ।  
 मेदामेदनयाक्रान्तो रत्नत्रयविभूषण ॥ ३३१ ॥  
 ऐहिकाशापरित्यक्तो धर्मशास्त्रार्थतत्परः ।  
 रागद्वेषविनिमुक्तो दशधर्मममन्वित ॥ ३३२ ॥  
 निःशल्यो निरहंकारः परिग्रहपरिच्युतः ।  
 पक्षपातोज्झितः शान्तः स मुनिर्वन्द्यते मया ॥ ३३३ ॥  
 मूक्ष्मे जिनोदिते तत्त्वे नास्ति चेन्महती मतिः ।  
 आप्तोदितं यथास्नायं श्रद्धानं क्रियते तथा ॥ ३३४ ॥

एवमाज्ञाभयो भावः प्ररूपित मयामनः ।

अनौर्जयिममभावाय लक्षणं कथ्यते यथा ॥ ३३५ ॥

निर्धायने पदार्थानां लक्षणं नयंभेदनः ।

गोऽधिगमोऽभिमन्यः मय्यज्ञानविनोपनः ॥ ३३६ ॥

द्रव्याणि पट्रप्रकाशानि जीरोऽथ पुट्टलम्पया ।

धर्मोधर्मनभ काला अनन्तेषां प्ररूपणम् ॥ ३३७ ॥

जीरो हि गोपयोगान्मा कर्ता भोक्ता ननुप्रम ।

स्यभावेनोर्ध्वगोऽमृतं संगारी मिदिनायकः ॥ ३३८ ॥

जीविनो दशभिः प्राणैर्जीविष्यन्ति च जीरन्ति ।

न जीरः कथ्यन्ते मज्जिजीवनत्तदिदा परं ॥ ३३९ ॥

ज्जलोर्भायो हि बन्धुधं उपयोग न च द्विषा ।

माकागोऽनिराकारो ज्ञानदर्शनभेदनः ॥ ३४० ॥

उपयोगो हि माकागो ज्ञानलक्षणलक्षितः ।

न चाष्टधा भवेन्निमध्यामम्यज्ञानप्रभेदनः ॥ ३४१ ॥

कुमनिः कृधुतज्ञानं विभङ्गाग्योऽरधिस्थथा ।

अज्ञानप्रितयं चेति मिध्याकर्मफलोद्भवम् ॥ ३४२ ॥

मनिः धुतावधी म्यान्तः येतलं चेति पंचधाः ।

मम्यज्ञानं भवेत्तस्य वर्तनं स्वार्थगोचरम् ॥ ३४३ ॥

स्यादर्शनोपयोगस्तु चतुर्भेदमुपागतः ।

निराकारो हि तस्याग्नि स्थितिरान्तर्मुहूर्तिकी ॥ ३४४ ॥

१ समाहितः ख । २ नवः ख. । ३ अस्मादमे ज्ञानोपयोगः साधारः, दर्शनो-  
पयोगोऽनाधारः न चोपयोगलक्षणं पुस्तकद्वयेऽथ पाठः ।





परमात्मा द्विषा मृषे गच्छो निरुजः स्मृतः ।  
 गच्छो भयने गच्छिः केचन जिनयनम् ॥ ३५६ ॥  
 निष्पन्नो ह्यतिपन्नोऽधिदानन्दकलधरा ।  
 अनंतगुणगन्धमः पराष्टकविरचितः ॥ ३५७ ॥  
 जीवे ।

वर्णमेकं सत् गन्धे स्पर्शपुष्पं च मादते ।  
 पुद्गलाणुः परः प्रोक्तो गन्धनपूष्णात्मकः ॥ ३५८ ॥  
 मणुकादिविभेदेन स्निग्धरुक्षत्वमंधयात् ।  
 पद्मोऽप्योन्यं भवेत्तेषां हृदिरूपादनेकधा ॥ ३५९ ॥  
 शब्दो बन्धनमज्ज्ञाया गृह्मस्थान्यातपपुनि ।  
 भेदसंस्थानमिन्धेने पर्यायान्मम कीर्तिता ॥ ३६० ॥  
 पृथ्वी सौमं तथा पृष्ठाया पाक्षुषो नाधगोचरः ।  
 कर्माणि परमाण्वन्तं तेषां मांश्चैवं यथोत्तरम् ॥ ३६१ ॥  
 स्थूलस्थूलं तथा स्थूलं स्थूलगृह्मास्तनः परम् ।  
 गृह्मस्थूलाय गृह्माणि गृह्मगृह्मा इति क्रमात् ॥ ३६२ ॥  
 पुद्गलः ।

गतिहेतुर्भवेदमो जीवपुद्गलयोर्द्वयोः ।  
 यथादकं हि मन्थानां मन्तिष्ठनोऽनया न सः ॥ ३६३ ॥  
 धर्मः ।

अधर्मः स्थितिदानाय हेतुर्भवति तद्द्वयोः ।  
 अधिकानां यथा पृष्ठाया गच्छतोः न न धारकः ॥ ३६४ ॥

अर्थः ।

द्रव्याणामवगाहस्य योग्यं यत्तन्मो मवेन् ।

लोकाकाशमलोकाग्न्यमाकाशमिति तद्विधा ॥ ३६५ ॥

आकाशः ।

वर्णगन्धादिभिर्मुक्ता असंख्याता मुनिश्चला ।

वर्तनालक्षणोपेता जीवपुद्गलयोः परम् ॥ ३६६ ॥

तिष्ठन्त्येकैकरूपेण लोकाकाशप्रदेशकान् ।

व्याप्य कालाणवो मुख्यः ग्रन्थेकं गन्नगजिवन् ॥ ३६७ ॥

परिणामः पदार्थानां कालास्तित्वप्रमादकः ।

अन्यथा नवजीर्णादिपर्यायज्ञानता कथम् ॥ ३६८ ॥

नोपचारो विना मुख्यं नरसिंहोपचारवन् ।

तथोपचारमाश्रित्य कालोऽस्ति व्यावहारिकः ॥ ३६९ ॥

मुख्यकालस्य पर्यायः समयादिभ्यरूपवान् ।

व्यवहारो मतः कालः कालज्ञानप्रवेदिनाम् ॥ ३७० ॥

तं कालाणुं समृद्धं मंदं गच्छति पुद्गलः ।

यावता कालमात्रेण स काल ममयात्मकः ॥ ३७१ ॥

तस्मादावलिपूर्वा ये मुहूर्ताद्याश्च पर्यायाः ।

मर्त्यक्षेत्रे प्रवर्तन्ते मानोर्गतिवशाद्भुवि ॥ ३७२ ॥

कालः ।

गुणपर्यदपरद्वयमन्दोदो वन्देने पुंष ।

गमभंगी गमान्निन्द गान्द्वयमन्दमारन ॥ ३७३ ॥

गदभन्ता गुणा शेषाः गुरणे पीतना यथा ।

गमभन्तागु पर्यायाः जीवे गन्धादयो यथा ॥ ३७४ ॥

पर्यायाः प्रभदन्देने भेदद्वयममाधिता ।

अध्वय्यजनमेदाभ्यां पदन्तीनि मटर्षय ॥ ३७५ ॥

गृध्रमोऽद्यामोपरो पेशः केतुल्लानिनां गयम् ।

प्रतिक्षणं विनाशी स्यात् पर्यायां तथ्यसंग्रिकः ॥ ३७६ ॥

गुलः कालान्तस्थायी मामान्दज्ञानमोचरः ।

टलिप्राप्त्यनु पर्यायो भवेद्यजनमंग्रिकः ॥ ३७७ ॥

द्रव्याण्यनाघनन्तानि द्रव्यत्वेन भवन्त्यपि ।

भौव्यव्ययममुष्पनिम्बमायान्यविलान्यपि ३७८ ॥

कालप्रपातुयायित्वं यद्रूपं वस्तुनो भवेत् ।

नदभौव्यन्यमिति प्रादुर्भूषभाषा गणाधिषाः ॥ ३७९ ॥

पृथक्कागन्वधामायो विनाशो वस्तुनः पुनः ।

अपृथक्कागन्तं प्राप्तिगन्पनिरिति कीन्त्येने ॥ ३८० ॥

व्यभावेनपर्याया जीवपुटलयोद्वयोः ।

विभावपर्यया न स्युः शेषद्रव्यचतुष्टये ॥ ३८१ ॥

कायत्वमस्ति पंचानां प्रदेशनतिसंभवात् ।

नास्ति कालस्य कायत्वं प्रदेशनत्यसंभवात् ॥ ३८२ ॥

धर्माधर्मकजीरानामसंख्येयप्रदेशना ।

पुद्गलानां त्रिधा देशा नभोजनन्तप्रदेशकम् ॥ ३८३ ॥

जीवाजीराभ्यां वन्यसंवर्गं निर्जरा तथा ।

मोक्षधेनि गुतन्वानि मम म्पुर्जनशामने ॥ ३८४ ॥

चेतनालक्षणो जीवोऽमूर्तोऽनाद्यविनाशकः ।

अजीवः पञ्चधा ज्ञेयः पुद्गलादिप्रभेदनः ॥ ३८५ ॥

मायामवो भवेज्जीवो मिथ्यात्वादिचतुष्टयात् ।

ततो द्रव्यामवो योऽर्सा कर्माष्टकममाश्रयः ॥ ३८६ ॥

ब्रह्मते कर्म भावेन येन तद्भावबन्धनम् ।

जीवकर्मप्रदेशानामाश्रयो द्रव्यबन्धनम् ॥ ३८७ ॥

स प्रकृतिप्रदेशाख्यस्त्वित्यनुभागभेदमाह ।

योगेर्दोषादिर्मा स्यातां कपार्यद्वां तदुत्तरा ॥ ३८८ ॥

कर्मास्रयनिरोधात्मा चिद्भावो भावसंवरः ।

ब्रह्मार्थः कर्मसंरोधः स भवेद्द्रव्यसंवरः ॥ ३८९ ॥

हठात्कारस्वभावाभ्यां जायते कर्मनिर्जरा ।

अविपाका स्वपाकेति द्विविधा सा यथाक्रमम् ॥ ३९० ॥

कर्मक्षयाय यो भावो भावमोक्षो भवत्यसौ ।

जायते द्रव्यमोक्षन्तु जीवकर्मपृथग्विक्रया ॥ ३९१ ॥

इत्येवं सप्ततत्त्वानि तान्येष प्रभवन्त्यपि ।

युक्तानि पुण्यपापाभ्यां पदार्था नव संस्मृताः ॥ ३९२ ॥

पुरोक्तलक्षणः जीवः सम्यक्त्वव्रतभूषितः ।

पुण्यं तद्विपरीतो यः स पापमिति कीर्त्यते ॥ ३९३ ॥

एवं द्रव्यादिसन्दोहे श्रद्धानं यथार्थतः ।

अनादिकर्मसम्बन्धविच्छिन्नौ जायतेऽङ्गिनाम् ॥ ३९४ ॥

चतुर्गतिभवो भव्यः संज्ञी पूर्णः गुलेऽप्यकः ।

जागरी लब्धिमान् शुद्धो ज्ञानी सम्यक्त्वमर्हति ॥ ३९५ ॥

पाप्मं तस्य पञ्चमो वे पानन्तानुबन्धिनः ।  
 दिभ्यान्मिथ्यगम्यकन्वं देति ट् मोटममरम् ॥ ३९६ ॥  
 इत्याद्यां प्रवृत्तीनां तु गमनानामुपज्ञानिनः ।  
 प्रोक्तोपज्ञमिदा एति प्रज्ञानपंक्तोपयत् ॥ ३९७ ॥  
 गम्यान्पथकानां यः पात्रभावात्मकः क्षयः ।  
 गम्यान्मोपज्ञातो यत्र धारोपज्ञमिकं हि तत् ॥ ३९८ ॥  
 उदिताग्ने क्षयं याता स्पर्धका मर्यपालकाः ।  
 प्रेषाः प्रज्ञमिना मन्ति धारोपज्ञमिकं ततः ॥ ३९९ ॥  
 यद्व्यपने घलागाटमालिन्धेन पृथक् पृथक् ।  
 गम्यकन्वप्रवृत्तेः पाकात् मम्मापट्टेदकाद्वयम् ॥ ४०० ॥  
 एतन्नांमासिनिष्ठस्य जायते देहिनां गुरु ।  
 मोटपादिदोषनिर्मुक्तं निःशंकाघ्नमेषुतम् ॥ ४०१ ॥  
 गृह्यार्थो बन्दिगत्कागे गोमृश्रम्य निषेपणम् ।  
 गन्धृष्टान्ननमस्यार्ता भृगुपातादिमाधनम् ॥ ४०२ ॥  
 देहर्त्तागोहगन्नाग्गजशय्यादिपूजनम् ।  
 नदीददगमुद्रेषु मज्जनं पुण्यदेतथे ॥ ४०३ ॥  
 मंत्रान्तां च निलस्नानं दानं च ब्रह्मादिषु ।  
 गन्ध्यायां मौनमिन्ध्यादि त्यज्यतां लोकमूढताम् ॥ ४०४ ॥  
 ऐदिकाशयशिन्धेन कृत्स्नितो देवतागणः ।  
 पृथ्यते मन्त्रितो पाठे मा देवमूढता मता ॥ ४०५ ॥  
 दृष्टा मंत्रादिगामर्थ्यं पापिपापण्डितारिणाम् ।  
 उपास्तिः क्रियते नेपां मा स्यात्पापण्डिमूढता ॥ ४०६ ॥

॥ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

॥ १०० ॥

कृत्तुः कृत्तुः कृत्तुः कृत्तुः कृत्तुः कृत्तुः कृत्तुः कृत्तुः कृत्तुः कृत्तुः

इति श्री कृष्णार्जुनसंवादे श्रीकृष्ण उवाच ॥ ५०८ ॥

ममैर्षःप्रियः सः कुरुष्वेति ज्ञानम् ।

इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः अष्टाध्याय्योऽष्टमोऽध्यायः ॥ ४० ॥

इति चोक्तं तत्र विनिर्दिष्टं कृत्वा नास्ति ।

इष्टकस्या स्विष्टोऽयं निःशंकः सदा ॥ ५१० ॥

मन्त्राभिः प्रयत्नयोगेन सर्वेन भेदगुणमयम् ।

निर्गन्धस्वादा द्रव मा निकृष्टा द्रव्यता पूर्वा ॥ ४१॥

गुणवत्तमं हि हिमं गन्धपुष्पमिति ।

युगुत्तमार्गद्वयो मासो मा म्याश्विनिनिहन्ति ॥३१॥

दीपस्थं' प्रागंय ताम्बिंदानादि ।

निर्मं न मृषणे काणि मद्यद्वये निगद्यते ॥ ४१३ ॥

रत्नशयोपपुनम् जनम्य कम्पनिन्धविन्द ।

गौपनं शान्तोद्यम्य तद्वन्युपगृह्णन् ॥ ४१४ ॥

दशनाम्नानां वृषाश्वत्थां गृहमेधिनाम् ।

यर्तानां म्यापनं नदन्विर्नीकणमुच्यते ॥ ४१५ ॥

गंगादितश्चमानानां साधूनां गृहिणामपि ।

यथायोग्योपचाग्म्यदात्मन्यं धर्मकाम्यया ॥ ४१६ ॥

मिथ्यातमस्त्वपाकृत्य सदमोद्योतनं परम् ।

क्रियते शक्तिर्नाथादं सुखा प्रमादना मत्ता ॥ ४१७ ॥

एषमहागमं दुर्लभं नम्यन्त्येव शाल्मल्यपदम् ।  
 गाधकः सर्वकार्येषु मंत्रं पूर्वाधारे यथा ॥ ४१८ ॥  
 एतन्मोक्षधयमं धूर्ता यस्तु दानमनुगमः ।  
 भवेत्तन्धाविरेकं नित्यं कर्मसंयानयानकम् ॥ ४१९ ॥  
 नानावाग्भिर्भरतृपाद्यैर्भीष्यत्सर्वेषु दुर्धरैः ।  
 प्रिदत्तायैव चाल्मेव नम्यन्त्येव कदाचन ॥ ४२० ॥  
 ध्यायिषीदधिक्याग्मी वैरलिक्रममभिर्धो ।  
 कर्मरमाज्ञो नम्यन्त्येव कंधिमिष्टापको भवेत् ॥ ४२१ ॥  
 नम्यन्त्येव पुनरः कथिद्विष्टापुष्कः प्रगच्छति ।  
 यंस्यां गतां हि तत्रैव पूर्णतां कुम्भे ध्रुवम् ॥ ४२२ ॥  
 इत्येवैवैव संपुनः स्यात्तन्मोक्षोऽत्रापमाप्नुय ।  
 द्वितीयानां कथायाणामुदयादग्रतो हि नः ॥ ४२३ ॥  
 प्रशमाम्निरपनेवेगाः महानुकम्पया गुणाः ।  
 विघ्नो हृदये यस्य स स्यान्मम्यवन्वभूषितः ॥ ४२४ ॥  
 नम्यन्त्येव तर्हीनोऽपि प्राणिपाताय नोद्यमी ।  
 प्राणिपाननर्हीनः स्यात्तन्मम्यवन्वस्यातिदूरगः ॥ ४२५ ॥  
 कारुणालीयकन्यायात् नम्यन्त्येव जातिमाश्रकम् ।  
 जीरम्यानन्तसंगारं संप्र्यात्मिकां स्थितिं नयेत् ॥ ४२६ ॥  
 मावनादिप्रिषु ग्रीषु पटस्वयःश्रमभूमिषु ।  
 अवस्थायामपूर्णायां न हि नम्यवन्त्वसंभवः ॥ ४२७ ॥  
 यस्य नम्यवन्त्वमभूतिरापुर्वन्धेऽथ दुर्गता ।  
 गतिच्छेदो न तस्यास्ति तथाप्यन्यतरा स्थितिः ॥ ४२८ ॥

१ कर्मसंयानकः इति वृषभिविश्वामित्रपदं ख-पुस्तके । २ अथ कथाने कवि-  
 इति वृषभिविश्वामित्रपदं । ३ यानि. क. ।



आयुर्वन्वे चतुर्गन्थां यदि सम्यक्त्वसंभवः ।

देवायुर्वन्धनं मुक्त्वा नाप्येतेऽणुमहाव्रते ॥ ४२९ ॥

क्षयोपशमसद्दृष्टिः पदं प्राप्नोति दुर्लभम् ।

सुदैवं स्वर्गलोकेषु मानुषं कर्मभूमिषु ॥ ४३० ॥

लब्ध्वा क्षायिकसम्यक्त्वमेकनृतीयतुर्यके ।

भवे मुक्तिं प्रयात्यङ्गी नास्त्यतोऽन्धमवाश्रयः ॥ ४३१ ॥

आर्त्तरोद्रं भवेद्ब्रह्मानं तत्र मन्दत्वमागतम् ।

आर्त्तं चतुर्विधं प्रोक्तं रोद्रध्यानं च तद्विधम् ॥ ४३२ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ४३३ ॥

आर्त्तध्यानवशाज्जीवः करोत्यशुमयन्धनम् ।

बद्धायुष्को मृतिं लब्ध्वा तैरर्थी गतिमश्नुते ॥ ४३४ ॥

हिंसानन्दो मृषानन्दः स्तेयानन्दस्तृतीयकः ।

तुर्यः संरक्षणानन्दो रोद्रध्यानस्य पर्ययाः ॥ ४३५ ॥

रोद्रध्यानेऽथ जीवेन कषायविषमोहिना ।

आर्द्यश्वध्रावनी जन्म बद्धायुष्मेण लभ्यते ॥ ४३६ ॥

गौणवृत्त्या भवेत्तस्य धर्मध्यानं कयंचन ।

आप्तोपज्ञस्य शास्त्रस्य चिन्तनश्रवणात्मकम् ॥ ४३७ ॥

उक्तं च—

मनः सदर्पोधिर्गमे प्रवृत्तं बाष्पाडयोते नयने च घर्जे ।

ध्रुती ध्रुता निश्चलविमृहश्च ध्यानेऽपि चंकाग्रमिहापि सौम्यं ॥

अभ्यस्यो निजान्मानमेकतारं दिनं प्रति ।

प्राप्त्यनियमं कृतं नो येनमम्यात्तरदृग् ॥ ४३८ ॥

०१ ॥ प्रत्यक्षनिमित्तं —

अदिविद्यतामाहूः किमस्मिन्नेत्यादिय ए कुर्यात् ।

पांड पांड दिवसिगिषाए नो ह्यायदि अल्पमं सुखं ॥ १ ॥

इत्तां भेदगम्यवत्तं नापकं निधयान्मन ।

निधयान्मनं निजार्मर तन्माध्यं स्यान्मनीषिभिः ॥ ४३९ ॥

अभ्यस्यगुणम्यानें चतुर्थं प्रतिपादितम् ।

देवार्ममिनो धाम पंचमं कथ्यतेऽनुना ॥ ४४० ॥

इति चतुर्थदण्डनगुणस्थानम् ।

अनो देशप्रतामिन्ने गुणम्याने दि पंचमे ।

भाराग्यपोग्पि विपन्ने पूर्वोक्तलक्षणा इह ॥ ४४१ ॥

प्रत्याग्यानोदयार्त्तावो नो धत्तेऽखिलसंपमम् ।

तथापि देवार्मपान्मसंयतार्मपतो मतः ॥ ४४२ ॥

विगतिश्चमयातम्य मनोवाचकाययोगतः ।

स्यावगाहिविपातम्य प्रवृत्तिस्तम्य कुप्रयित् ॥ ४४३ ॥

१ मुखं न, २ ऊरदा अमे इमे अत्यन्ते गये स-पुनके । तथा चोक्तं  
इतिवादिप्रत्ये —

नो पुनरुक्तवत्तवाले संविपन्ने अत्यमप्यमेतः ।

किमेव किमस्मिन्नेति किं सद्भवितं गुणवाचकमि ॥ १ ॥

किं मेततो फलम् किं न अस्या दोषावर्धं किं न विप्रमयाभि ।

इथेव समं अल्पसममात्रो अत्र(ना)गयं नो पदिवंध कुत्रा ॥ २ ॥

विगताविग्नस्तस्माद्विग्नने देशमंथरी ।  
 प्रतिमानक्षणास्तस्य भेदा एकादश स्मृता ॥ ४४४ ॥  
 आद्यो दशनिकस्तत्र त्रिनिकः स्यान्ननः परम् ।  
 सामाधिक्यनी चाथ सत्रोपधोपधानकृन् ॥ ४४५ ॥  
 सचिचाद्गमन्वागी द्विवासीभजनोज्जितः ।  
 ब्रह्मचारी निगम्यः परमिद्वपगिच्युत ॥ ४४६ ॥  
 तस्मादनुमनोदिष्टविग्नो द्वाविनि क्रमात् ।  
 एकादशविग्न्या स्युः श्रावकाणा क्रमादमी ॥ ४४७ ॥  
 गृही दशनिकस्तत्र सम्यगन्वगुणभूषितः ।  
 संसारभोगनिविण्णो ज्ञानी जीवदयापरः ॥ ४४८ ॥  
 माक्षिकामिषमद्यं च महोदम्यग्नचक्रः ।  
 वेद्या पगहना चाथ यज्ञं नो भजने हि नः ॥ ४४९ ॥  
 दशनिक प्रह्वान निशि भोजनवर्जनम् ।  
 यतो नास्ति दयाभयो गर्वा भुक्तिं प्रह्वतः ॥ ४५० ॥

ःजनप्रतिमा ।

स्मृताहिमानृतस्तेयपरम्परा चाभिकांक्षता ।  
 अणुवर्णानि पत्रं न न्यागान्स्यादणुवर्णी ॥ ४५१ ॥  
 योगयस्य सम्यगन्वगुणानुमनकाग्निः ।  
 न हितस्ति यमान् स्मृताहिमाग्रतमादिमम् ॥ ४५२ ॥  
 न वदन्वर्तुत स्मृतं न पगन् यादयस्यपि ।  
 जीवर्षादाह सन्धे द्वितीये नदणुवर्तम् ॥ ४५३ ॥  
 अदभयगिनस्य निश्चिदस्मिन्नादिनः ।  
 तस्यगिन्यज्ञे स्मृतगर्षाये प्रतमचिरे ॥ ४५४ ॥



उक्तं च जिनमहिताशं—

प्राप्त्यः क्षत्रियां वैश्यः स शूद्रो वा सुशोभमान् ॥ ४६० ॥

अन्येषां नाधिकारित्वं ननस्तैः प्रविधीयताम् ।

जिनपूजां विना मर्यो दृग मामायिकी क्रिया ॥ ४६१ ॥

जिनपूजा प्रकृतं व्या पूजाशास्त्रोदितक्रमान् ।

यया संश्राप्यते मर्त्यैर्मोक्षमार्ग्यं निम्नरम् ॥ ४६२ ॥

तान्प्राप्तं समुत्थाय जिनं स्मृत्वा विधीयताम् ।

प्राप्तानिहो विधि मर्यो ज्ञात्वा न मनपूर्वरम् ॥ ४६३ ॥

ततः पार्यायिकी गन्ध्याक्रियां समानरेणुधीः ।

शुद्धश्रेष्ठं समान्निभ्य मंत्रवन्दुद्वयारिणा ॥ ४६४ ॥

पश्चात् स्नानविधिं कृत्वा घातयत्परिग्रह ।

मंत्रस्नानं घृतस्नानं कर्मण्यं मंत्ररत्नम् ॥ ४६५ ॥

एवं स्नानत्रये कृत्वा शुद्धिप्रथममन्त्रिन ।

जिनायाम् विदग्धमन्त्री समुत्थाये निवेष्टिताम् ॥ ४६६ ॥

कृत्वेर्षावयमंशुद्धिं जिनं स्तुत्वा निवेष्टितः ।

उपरिष्ठ जिनस्याग्रे कुर्याद्विधिविमां पूग ॥ ४६७ ॥

मयादीं ज्ञापयं स्नापि दहनं स्नानं ततः ।

इत्यादि मंत्रान्मन्त्री पञ्चकीयाङ्गं पश्चिमयेत् ॥ ४६८ ॥

दहनशुद्धिं विहायैव प्रदद्यात्तुलसीक्रियाम् ।

इत्युपरिष्ठैर्नैवेद्यं विदग्धमन्त्रेण ततः ॥ ४६९ ॥



स्वोत्तमाङ्गं प्रसिञ्च्याथ जिनामिपेकवारिणा ।  
 जलगन्धादिभिः पश्चादर्चयेद्विचर्महतः ॥ ४८६ ॥  
 स्तुत्वा जिनं विसर्ज्यापि दिगीशादिमरुद्गणान् ।  
 आर्चिते मूलपीठेऽथ स्थापयेज्जिननायकम् ॥ ४८७ ॥  
 तोयैः कर्मरजःशान्त्यै गन्धैः सागन्धमिद्वये ।  
 अक्षतरशयावाप्यै पुष्पैः पुष्पशगन्धिद्वे ॥ ४८८ ॥  
 चरुभिः सुरससंशुद्धये देहदीप्त्यै प्रदीपकैः ।  
 साभाग्यावाप्तये धूपैः फलमोक्षफलाप्तये ॥ ४८९ ॥  
 घण्टाद्यैर्मंगलद्रव्यैर्मंगलावाप्तिहेतवे ।  
 पुष्पाञ्जलिप्रदानेन पुष्पदन्ताभिर्दीप्तये ॥ ४९० ॥  
 तिग्मभिः शान्तिधाराभिः शान्त्यै सर्वकर्मणाम् ।  
 आराधयेज्जिनार्घ्यां श्रुतिश्रीवनिनापतिम् ॥ ४९१ ॥  
 इत्येकादशधा पूजां ये कुर्वन्ति जिनेजिनाम् ।  
 अष्टौ कर्माणि सन्दह्य प्रयान्ति परमं पदम् ॥ ४९२ ॥  
 अष्टोत्तरशतं पुष्पं जापं कुर्याज्जिनाग्रतः ।  
 शूर्प्यैः पञ्चनमस्कार्यैश्चावकाशमञ्जगा ॥ ४९३ ॥  
 अथवा सिद्धचक्राभ्यं यंत्रमुद्धार्यै तथान् ।  
 सन्पञ्चपरमेषुयान्त्यं गणमृद्वलयक्रमम् ॥ ४९४ ॥  
 यंत्रं चिन्तामणिर्नाम मय्यग्न्यालोपदेवतः ।  
 मंपूज्यात्र जपं कुर्यान् तत्तन्मंत्रैर्यथाक्रमम् ॥ ४९५ ॥  
 तद्यंत्रमन्थतां मान्ते विगन्ध्य विदोषकम् ।  
 निद्विदोषां प्रगम्य न्यमेन्मूर्ध्नि ममाक्षित ॥ ४९६ ॥  
 पैन्यमक्यादिभिः स्तूयान्जिनेन्द्रं मतिनिमेषः ।  
 कृत्स्न्यैः समायमानं मन्यमानोऽथ जन्मनि ॥ ४९७ ॥

तंक्षेपत्रानशाद्योक्तविधिना चांभिर्विन्ध्य तंम् ।  
 इत्यादिविधां पूजां तोयगन्धाधत्तादिभिः ॥ ४९८ ॥  
 अन्नमुहूर्तमात्रे तु ध्यायेन् मय्येन येनमा ।  
 मदेष्टुं निजान्मानं चिदानन्दकलक्षणम् ॥ ४९९ ॥  
 विधायैवं जिनेशस्य यथावकाशतोऽर्चनम् ।  
 ममन्धाय पुन स्तुत्या जिनेन्यालयं व्रजेत् ॥ ५०० ॥  
 कृत्वा पूजां नमस्कृत्य देवदेवं जिनेश्वरम् ।  
 धुतं संपूज्य भज्जतयो तोयगन्धाधत्तादिभिः ॥ ५०१ ॥  
 संपूज्य चण्डां माधोर्नमस्कृत्य यथाविधिम् ।  
 भाषाणामायिकानां च कृत्वा विनयमंजना ॥ ५०२ ॥  
 इच्छाकारययः कृत्वा मिथः साधर्मिकः समम् ।  
 उपविश्य गुरोरन्ते मद्धमं शृणुयादपुनः ॥ ५०३ ॥  
 देयं दानं यथाशक्त्या जैनदर्शनवर्तिनाम् ।  
 कृपादानं च कर्तव्यं दयागुणविष्टये ॥ ५०४ ॥  
 एवं मामायिकं सम्पद्यः करोति गृहाधमी ।  
 दिनैः कतिपर्ययेव न स्यान्मुक्तिधियः पतिः ॥ ५०५ ॥  
 मासं प्रति चतुर्ष्वेव पर्वस्वाहारवर्जनम् ।  
 मकृद्भोजनसेवा वा काञ्जिकाहारसेवनम् ॥ ५०६ ॥  
 एवं शक्त्यनुसारेण क्रियते ममभावतः ।  
 न प्रोपधो विधिः प्रोक्तो मुनिभिर्धर्मवत्सलैः ॥ ५०७ ॥

१ वा. स. । २ व. स. । ३ ओ. ओ. ड. व. ४९९ ओ. डा. पु. त. र. । ४ ओ. ओ. व. ४९८  
 ओ. डा. पु. र. स. - तुलके । ५ उ. ड. ग. व. स. । ६ ओ. ओ. ड. व. स. पु. त. र. के. ना. रि. ।





मुख्याथ कुन्मिंतं पात्रमपात्रं च विज्ञेयतः ।  
 पात्रदानविधिस्तत्र प्रकथ्यते यथाक्रमम् ॥ ५१८ ॥  
 स्थापनमागते योग्यं चण्डालान्नाचने ।  
 नतिस्त्रियोगशुद्धिश्च नवम्याद्वाग्शुद्धिना ॥ ५१९ ॥  
 नवविधं विधिः शोक्तः पात्रदाने मूर्ताज्यम् ।  
 तथा षोडशभिर्दोषैर्द्वयार्थविवर्जितम् ॥ ५२० ॥  
 उदितं विक्रयार्नाममुद्धारस्वीकृतं तथा ।  
 परित्यक्तं समानीतं देशान्तरागममागतम् ॥ ५२१ ॥  
 अप्रासुरेण मर्मिभं भुक्तिभाजनमिथता ।  
 अधिकापाकसंशुद्धिर्मुनिवृन्दं समागतं ॥ ५२२ ॥  
 ममीपीकरणं पंक्तौ संयत्तासंयतात्मनाम् ।  
 पाकभाजनतोऽन्यथ निक्षिप्यानयनं तथा ॥ ५२३ ॥  
 निर्वापितं मधुनिधाय दृग्धमण्डादिकं च यत् ।  
 नीपजात्यापितार्थं च प्रतिद्वस्नान्गमपितम् ॥ ५२४ ॥  
 यथादिपलिशेषं च आर्नाय पोष्यमद्यनि ।  
 ग्रन्थिमुद्गिद्य यदत्तं कालानिश्चमतोऽर्पितम् ॥ ५२५ ॥  
 राजादीनां भयादन्नमित्येषा दोषमंदति ।  
 पर्जन्याया प्रयत्नेन पुण्यमाधनमिदृशे ॥ ५२६ ॥  
 आहारं भक्तिर्भा दत्तं दात्रा योग्यं यथाविधि ।  
 स्वीकर्तव्यं विशोध्यतर्हीतगमयतीतिना ॥ ५२७ ॥  
 योग्यकालागतं पात्रं मध्यमं वा उपन्यकम् ।  
 यथावत्प्रतिपत्त्या च दानं तस्मै प्रदीयताम् ॥ ५२८ ॥

यदि पात्रमलब्धं चेद्वयं निन्दां करोत्यर्मा ।

वासरोऽयं श्रुया यातः पात्रदानं विना मम ॥ ५२९ ॥

इत्येवं पात्रदानं यो विदधाति गृहाश्रमी ।

देवेन्द्राणां नरेन्द्राणां पदं संप्राप्य मिद्वचति ॥ ५३० ॥

अणुव्रतानि पंचैव सप्तशीलगुणैः सह ।

प्रपालयति निःशल्य भवेद्भ्रतिको गृही ॥ ५३१ ॥

व्रतप्रतिमा ।

चतुर्ह्यावर्तसंयुक्तश्चतुर्नमस्क्रिया सह । ?

द्विनिपद्यो यथाज्ञातो मनोवाक्कायशुद्धिमान् ॥ ५३२ ॥

चैत्यमक्त्यादिमिः स्तूयाज्जिनं मन्ध्यात्रयेऽपि च ।

कालातिक्रमणं मुक्त्वा न म्यात्मानामाधिक्रवती ॥ ५३३ ॥

सामायिकप्रतिमा ।

मासं प्रत्यष्टमीमुख्यचतुष्पर्वदिनेष्वपि ।

चतुरभ्यवहार्याणां विदधानि विमर्जनम् ॥ ५३४ ॥

पूर्वापरदिने चैकामुक्तिस्मदुत्तमं विदुः ।

मध्यमं तद्विना द्विष्टं यत्राम्बु सेव्यते कचिद् ॥ ५३५ ॥

इत्येकमुपवासं यो विदधानि स्वशक्तिनः ।

श्रावरेषु भवेनुयः श्रोतव्योऽनशनव्रती ॥ ५३६ ॥

श्रावणप्रतिमा ।



अनुमतन्यागप्रतिमा ।

नोदिष्टां सेवते मिथामुदितविरक्तो गृही ।  
 द्वैर्धेको ग्रन्थसंयुक्तस्त्वन्यः कौपीनधारकः ॥ ५४३ ॥  
 आद्यो विदधते ( ति ) क्षौरं प्रावृणोत्येकवातसम् ।  
 पञ्चभिक्षासनं भुङ्क्ते पठते गुरुसन्निधौ ॥ ५४४ ॥  
 अन्यः कौपीनसंयुक्तः कुरुते केशलुञ्चनम् ।  
 शौचोपकरणं पिच्छं मुक्त्वान्यग्रन्थवर्जितः ५४५ ॥  
 मुनीनामनुमार्गेण चर्याय मुपगच्छति ।  
 उपविश्य चरेद्भिक्षां करपात्रेऽङ्गसंवृतः ॥ ५४६ ॥  
 नास्ति त्रिकालयोगोऽस्य प्रतिमा चार्कसम्भूता ।  
 रहस्यग्रन्थसिद्धान्तश्रवणे नाधिकास्ति ॥ ५४७ ॥  
 वीरचर्या न तस्यास्ति बल्लखण्डपरिग्रहात् ।  
 एवमेकादशो गेही सौत्कृष्टः प्रभवन्पसा ॥ ५४८ ॥

टदिष्टन्यागप्रतिमा ।

स्थानेष्वेकादशम्वेवं स्वगुणाः पूर्वमद्गुणैः ।  
 संयुक्ताः प्रभवन्त्येते श्रावकाणां यथाक्रमम् ॥ ५४९ ॥  
 आन्तराष्ट्रं भवेद्ध्यानं मन्दभावममाश्रितम् ।  
 मुख्यं धर्म्यं न तस्यास्ति गृहव्यापारसंश्रयात् ॥ ५५० ॥  
 गाणं हि धर्ममद्वयानमुत्कृष्टं गृहमेधिनः ।  
 भद्रध्यानात्मकं धर्म्यं शेषाणां गृहचारिणाम् ॥ ५५१ ॥



अकृत्रिमेष्टु चेत्येष्टु कल्याणेषु च पंचमु ।

मुँरविनिर्मिता पूजा भवेत्सेन्द्रध्वजात्मिका ॥ ५५९ ॥

इन्द्रध्वजा ।

महोत्सवमिति ग्रीत्या प्रपंचयति पंचधा ।

स स्यान्मुक्तिवधूनेत्रप्रेमपात्रं पुमानिह ॥ ५६० ॥

पूजा ।

दानमाहारभैषज्यशास्त्रामयविकल्पतः ।

चतुर्धा तत्पृथक् प्रेधा त्रिधापात्रसमाश्रयात् ॥ ५६१ ॥

एषणाशुद्धितो दानं त्रिधा पात्रे प्रदीयते ।

भक्ष्याहारदानं तत्सर्वदानेषु चोत्तमम् ॥ ५६२ ॥

आहारदानमेकं हि दीयते येन देहिना ।

सर्पाणि तेन दानानि भवन्ति विहितानि वै ॥ ५६३ ॥

नास्ति क्षुधाममो व्याधिर्भेषजं वास्य शान्तये ।

अन्नमेवेति मन्तव्यं तस्मात्तदेव भेषजम् ॥ ५६४ ॥

विनाहार्गर्भलं नास्ति जायते नो बलं विना ।

सन्ध्यास्त्राध्ययनं तस्मान्नदानं स्यात्तदान्मकम् ॥ ५६५ ॥

अभयं प्राणसंरक्षा बुभुक्षा प्राणहारिणी ।

क्षुन्निवारणमथं स्यादन्नमेषामयं तनः ॥ ५६६ ॥

अग्न्याहारदानस्य तृप्तिमात्रं घरीणिणाम् ।  
 रत्नभूषणदानानि कलां नाहन्ति षोडशाम् ॥ ५६७ ॥  
 मद्दष्टिः पात्रदानेन लभते नाकिनां पदम् ।  
 ततो नरेन्द्रतो प्राप्य लभते पद्मक्षयम् ॥ ५६८ ॥  
 संमाराध्या मदाभीमे दुःखकल्लोलसंकुले ।  
 तारकं पात्रमुत्कृष्टमनायासेन देहिनाम् ॥ ५६९ ॥  
 मत्पात्रं तारयत्युर्ध्वः स्वदातारं भवार्णवे ।  
 यानपात्रं गर्भीणीं तारयत्यम्बुर्धा यथा ॥ ५७० ॥  
 भद्रमिध्याद्यो जीवा उत्कृष्टपात्रदानतः ।  
 उत्पद्य भुञ्जते भोगानुत्कृष्टभोगभूतले ॥ ५७१ ॥  
 ते चार्पितप्रदानेन मध्यमाधमपात्रयोः ।  
 मध्यमाधमभोगेभ्यो लभन्ते जीवितं महत् ॥ ५७२ ॥  
 मधुयाद्याद्गदीपाद्गद्यमात्रनमात्पदाः ।  
 ज्योतिर्भूपागृहाङ्गाथ दशधा कल्पपादपाः ॥ ५७३ ॥  
 पुण्योपचितमाहारं मनोर्न कल्पितं यथा ।  
 लभन्ते कल्पवृक्षेभ्यस्तथा देहधारिणः ॥ ५७४ ॥  
 दानं हि वामदृष्ट्य कुपात्राय प्रयच्छति ।  
 उत्पद्यते कुद्वेषु कुनरेष्वपि ॥ ५७५ ॥  
 मानुषोत्तरवासे घसंग्यद्वीपवार्धिषु ।  
 तिर्यक्त्वं लभते नूनं देही कुपात्रदानतः ॥ ५७६ ॥  
 निन्द्यांशु भोगभूमीषु पत्यप्रमितजीविनः ।  
 नम्राथ विहृताकाश भवन्ति वामदृष्टयः ॥ ५७७ ॥

१ अग्न्याहारदानस्य. ख. । २ भा. ख. । ३ दानाद् कलां नाहन्ति । ४ षडश ।  
 ५७२-५७३ ओटी पूर्वापरीभूती. म-पुरजके । ५ निन्द्याः कुभोगभूमीषु. ख. ।



लवणाब्धेऽम्नटं न्यक्त्वा शतव्रीं पंचयोजनीम् ।  
 दिग्विदिक्षु चतसृषु पृथक्कुमोगभूमयः ॥ ५७८ ॥  
 मर्कोत्तकाः मन्त्रज्ञाश्च लांगुलिनश्च मृत्तिनः ।  
 चतुर्दिक्षु यमन्वेने पृथादिक्रमतो यथा ॥ ५७९ ॥  
 विदिक्षु शतकर्णाग्न्याः सन्नि मन्त्रलिकर्णितः ।  
 कर्णप्रावर्णाश्चैव लम्बकर्णाः कुमानुरा ॥ ५८० ॥  
 शतानि पंच माघानि मन्त्रज्य वाग्धिः स्मटम् ।  
 अन्तरस्थदिशाम्बर्था कुन्मिता मोगभूमयः ॥ ५८१ ॥  
 सिंहाश्च महिपोलूकन्याग्रशृकरगोमुखा ।  
 कपिवक्त्रा भवन्त्यर्था दिशानामन्तरे न्यिताः ॥ ५८२ ॥  
 वेधायाः पट्टलती न्यक्त्वा द्वा द्वायुमयोर्दिशोः ।  
 हिमाद्रिविजयार्धप्रितागाद्रिशिखर्यद्विषु ५८३ ॥  
 हिमवद्विजयार्धस्य पूर्वापरविभागयोः ।  
 मत्स्यकालमुखा मेघविद्युन्मुखाश्च मानवा ॥ ५८४ ॥  
 विजयार्धशिखर्यद्विपार्श्वयोरुभयोरपि ।  
 हस्त्यादर्शमुग्धामेषमण्डलाननमग्निभा ॥ ५८५ ॥  
 चतुर्विंशतिसंग्याका भवन्ति मिलिता इमाः ।  
 तावन्त्यो घातकीमण्डनिकटे लवणार्णवे ॥ ५८६ ॥  
 एवं स्पृद्धर्चनपंचाशद्वृणान्वितट्टयोः ।  
 कालोदजलर्धो तडदूर्दीपाः पण्वानि स्मृताः ॥ ५८७ ॥  
 एकोरुका गुहावामाः स्वादुमृन्मयभोजनाः ।  
 शेषास्तस्तलावामा पयपुष्पफलाग्नि ॥ ५८८ ॥

न जातु विद्यते येषां कृतदोषनिवृत्तनम् ।  
उत्पादोऽथ भवेत्तेषां कषायवशगात्मनाम् ॥ ५८९ ॥

त्रिकट—

सूतकाशुचिदुर्भाव्याकुलादिम( त्व )संयुताः ।  
पात्रे दानं प्रकुर्वन्ति मृदा वा गर्विताशयाः ॥ ५९० ॥  
पंचामिना तपोनिष्ठा मौनहीनं च भोजनम् ।  
प्रीतिश्चान्यविद्यादेषु व्यसनेष्वतिनीग्रता ॥ ५९१ ॥  
दानं च कुत्सिते पात्रे येषां प्रवर्तते सदा ।  
तेषां प्रजायते जन्म क्षेप्रेष्वेतेषु निधितम् ॥ ५९२ ॥  
उत्पद्यन्ते ततो मृत्वा भावनादिगुरव्रये ।  
मन्दकषायसज्जायात् स्वभावाज्जयमावतः ॥ ५९३ ॥  
मिथ्यात्वमायनायोगानतद्व्युत्वा भवार्णवे ।  
यराकाः सम्पतन्त्येव जन्मनमकुलाकुले ॥ ५९४ ॥  
अपात्रे विहितं दानं यत्नेनापि चतुर्विधम् ।  
व्यर्थाभवति तत्सर्वं भस्मभ्याज्याहृतिर्यथा ॥ ५९५ ॥  
अग्नौ निमज्जयत्याहु स्वमभ्यार्थादपन्मयी ।  
संसाराग्धावपात्रं तु तादृशं विद्धि सन्मते । ॥ ५९६ ॥  
पात्रे दानं प्रकर्तव्यं शार्त्तवं शुद्धदृष्टिभिः ।  
यस्मात्सम्पद्यते मौल्यं दुर्लभं त्रिदशेक्षिनाम् ॥ ५९७ ॥

दानम् ।

१ क-पुस्तके अत्रान् ५८९ ओ००० पूर्व त्रिकलमिति पाठः । ख-पुस्तके  
तु ५९० ओ००० पूर्व त्रिकलमिति । २ क-पादिसंयुताः ख-पाठः ।

— २ —

२९

॥

गुरुपास्तिः ।

चतुर्णामनुयोगानां विनोक्तानां यथार्थतः ।

अध्यापनमधीतिर्वा स्वाध्यायः कथ्यते हि सः ॥ ५९९ ॥

स्वाध्यायः ।

प्राणिनां रक्षणं त्रेधा तथाश्वप्रसराहतिः ।

एकोद्देशमिति प्राहुः संयमं गृहमेधिनाम् ॥ ६०० ॥

संयमम् ।

उपवासः सकृद्भुक्तिः सौवीरगहारसेवनम् ।

इत्येवमाद्यमुद्दिष्टं बाधुभिर्गृहिणां तपः ॥ ६०१ ॥

तपः ।

कर्माण्यावश्यकान्याहुः पडेवं गृहचारिणाम् ।

अधःकर्मादिमम्पानदोषविच्छित्तिहेतवे ॥ ६०२ ॥

पट्टकर्मभिः किमस्माकं पुण्यमाधनकारणः ।

पुण्यान्प्रजापते बन्धो बंधान्संसारता यतः ॥ ६०३ ॥

निजान्मानं निगलन्मेघध्यानयोगेन चिन्त्यते ।

येनेह बन्धविन्देदं कृत्वा मुक्तिं प्रगम्यते ॥ ६०४ ॥

ये वदन्ति गृहस्थानामस्ति ध्यानं निराश्रयम् ।

जनागमं न जानन्ति दूषिष्यन्ते मरिचकाः ॥ ६०५ ॥



भस्मसात्कुरुते तस्माद्वातिकर्मेन्धनोत्करम् ।  
 संप्राप्यार्हन्त्यसल्लक्ष्मीं मोक्षलक्ष्मीपतिर्भवेत् ॥ ६१७ ॥  
 ईदृग्विधं पदं भव्यः सर्वं पुण्यादवाप्यते ।  
 तस्मात्पुण्यं प्रकर्तव्यं यत्नतो मोक्षकांक्षिणा ॥ ६१८ ॥  
 एवं संक्षेपतः प्रोक्तं यथोक्तं पूर्वमूरिमिः ।  
 देशसंयमसम्बन्धिगुणस्थानं हि पंचमम् ॥ ६१९ ॥  
 इति पंचमं विरताविरतसंज्ञं गुणस्थानम् ।

अतो वक्ष्ये गुणस्थानं प्रमत्तसंयताब्धयम् ।  
 तत्रापशमिकाद्याः स्युस्त्रयो भावा यथोदिताः ॥ ६२० ॥  
 कषायाणां चतुर्धानां तीव्रपाके महाव्रती ।  
 भवेत्प्रमादयुक्तत्वात्प्रमत्तसंयताभिधः ॥ ६२१ ॥  
 मूलशीलगुणयुक्तो यदप्यखिलसंयमी ।  
 व्यस्ताव्यवतप्रमादत्वाच्चित्रिताचरणो भवेत् ॥ ६२२ ॥  
 निद्रा स्नेहो हृषीकाणि कषाया विकथाः क्रमान् ।  
 एकैकं पंच चत्वारश्चतस्रश्च प्रमादकाः ॥ ६२३ ॥  
 वार्धदशविधं ग्रन्थं तनाचेतनान्मर्कः ।  
 तथैवाभ्यन्तरोद्भूतं तदुद्देशविधं न्युताः ॥ ६२४ ॥  
 क्षेत्रं गृहं धनं धान्यं गुवर्णं रजतं तथा ।  
 दाम्प्यो दाम्पाश्च मांडं च कृत्यं शासपरिग्रहाः ॥ ६२५ ॥  
 ग्रन्था हाम्प्यादयो दोषा यामं वेदाः कषायकाः ।  
 पंडकात्रिचतुर्भेदं रन्तराज्ञाश्चतुर्दश ॥ ६२६ ॥

त्यन्यग्रन्थेषु पाद्येषु पुनर्मुच्यन्ति दर्शयः ।  
 ममानाम्ने भयन्पुष्पगुह्यदीर्घाहारभोजिनाम् ॥ ६२७ ॥  
 ताम्यादिपटुसु दोषेषु प्रमत्ता जिनलिङ्गिनः ।  
 मूटास्ते पुष्पनाराचर्चिभिद्यन्ते यद्येप्सितम् ॥ ६२८ ॥  
 धृत्या जनेश्वरं लिङ्गं वैपरीत्येन वर्तनम् ।  
 मिथ्यात्वं तद्भवेत्तेषां दुर्गतां गमने सरा ॥ ६२९ ॥  
 पूर्ण्यन्ते विषयव्यालैर्भिद्यन्ते मारमार्गणः ।  
 पेदरागवर्षाभूना दयन्ते दुःखचन्दिना ॥ ६३० ॥  
 न शयनुवन्ति ये जेतुं कषायराधमां गणम् ।  
 वराकाः कार्मणं मन्यं न ते जेष्यन्ति जातुचिन् ॥ ६३१ ॥  
 रसे रमायने स्तम्भे शाकिनीग्रहनिग्रहे ।  
 वज्रोद्याटनविद्वेषे भोगीन्द्रविषविष्णवे ॥ ६३२ ॥  
 इत्यादिषु प्रवर्तन्ते निष्ठा एहिकाशयाः ।  
 यत्तित्वं जीवनोपायं भवेत्तेषां विनिश्चितम् ॥ ६३३ ॥  
 निःशल्या निरदंकाग निर्मोहा मदपिच्छुताः ।  
 पक्षपातारिसंत्यक्ता निष्कषाया जिनेन्द्रियाः ॥ ६३४ ॥  
 अन्तर्षाद्यतपोनिष्ठाधारिग्रन्तमार्जिनः ।  
 दशधर्मरताः शान्ता ध्यानाध्ययनतत्पराः ॥ ६३५ ॥  
 भेदाभेदनपाक्रान्तरत्नत्रयविभूषिताः ।  
 इत्यादिगुणभूषाडया जगद्व्या यतीश्वराः ॥ ६३६ ॥  
 ध्यायन्ति गौणभावाढ्यं धर्म्यमालम्बनान्विनम् ।  
 मुख्यं धर्म्यं निरालम्बमप्रमत्तमुनीश्वराः ॥ ६३७ ॥

धर्मध्यानं तु मालम्बं चतुर्मेदनिगद्यते ।  
 आज्ञापायविपाकाभ्यसंभ्यान्निजतात्मभिः ॥ ६३८ ॥  
 म्यमिद्रान्नोक्तमार्गेण तन्नानां चिन्तनं यथा ।  
 आज्ञया जिननायक्य तद्वाद्याविनयं मनम् ॥ ६३९ ॥  
 अपायचिन्त्यते वाटं यः शुभाशुभकर्मणाम् ।  
 अपायविनयं प्रोक्तं तद्व्यानं ध्यानवेदिभिः ॥ ६४० ॥  
 संसारवर्तिजीवानां विपाकः कर्मणामयम् ।  
 दुर्लभचिन्त्यते यत्र विपाकविनयं हि तत् ॥ ६४१ ॥  
 विचित्रं लोकसंस्थानं पदार्थेनिचिन्तनं महत् ।  
 चिन्त्यते यत्र तद्व्यानं संभ्यानविचयं स्मृतम् ॥ ६४२ ॥  
 अथवा जिनमुभ्यानां पञ्चानां परमेष्ठिनाम् ।  
 पृथक् पृथक् तु यद्व्यानं मालम्बं तदपि स्मृतम् ॥ ६४३ ॥  
 सालम्बध्यानमिन्धेवं ज्ञात्वा ध्यायन्ति योगिनः ।  
 कर्मनिर्जरणं तेषां प्रभवत्यविलम्बितम् ॥ ६४४ ॥  
 अस्तित्वान्नोक्तपायाणामार्तध्यानं प्रजायते ।  
 निराकरोति तद्व्यानं स्वाध्यायभावनावलात् ॥ ६४५ ॥  
 यावन्प्रमादसंयुक्तमन्त्रावनम्य न तिष्ठति ।  
 धर्मध्यानं निरालम्बमित्यूचुर्जिनमास्कराः ॥ ६४६ ॥  
 तस्मादार्थेपणाद्यैस्तु पापदोषान्निकृन्तति ।  
 विशुद्ध्यावश्यकं पद्भिः सुमुञ्चुः स्वात्मशुद्धये ॥ ६४७ ॥  
 समता वन्दना स्तोत्रं प्रत्याख्यानं प्रतिक्रिया ।  
 व्युत्सर्गश्चेति कर्माणि भवन्त्यावश्यकानि पट् ॥ ६४८ ॥

आवश्यकान् परित्यज्य निश्चलं ध्यानमाश्रयेत् ।  
 नार्था वेत्त्यागमं ज्ञेयं मिथ्यादृष्टिर्भवत्यतः ॥ ६४९ ॥  
 तस्मादावश्यकैः कुर्यात्प्राप्तदोषनिरुन्तनम् ।  
 यावन्माप्नोति सद्ब्रह्म निरालम्बं मुनिधरम् ॥ ६५० ॥  
 सम्यग्निजनागमे ज्ञात्वा श्रेष्ठतद्ब्रह्ममाधनान् ।  
 क्षपकथेणिमारुह्य मुक्तेः सद्यः प्रपद्यते ॥ ६५१ ॥  
 इति षष्ठं प्रमत्तगुणस्थानम् ।

अप्रमत्तगुणस्थानमतो वक्ष्ये समामतः ।  
 भवन्त्यत्र त्रयो भावाः षट्स्थानोदिता यथा ॥ ६५२ ॥  
 संज्वलनकषायाणां जाते मन्दोदये सति ।  
 भवेत् प्रमादहीनत्वादप्रपन्नो महाव्रती ॥ ६५३ ॥  
 नष्टशेषप्रमादात्मा प्रतशीलगुणान्वितः ।  
 ज्ञानध्यानपरो मानी ग्रामनधपगोन्मुरः ॥ ६५४ ॥  
 एकविंशतिभेदात्ममोहस्योपशमाय च ।  
 क्षपणाय करोत्येष सद्ब्रह्मसाधनं यमी ॥ ६५५ ॥  
 मृग्यशृत्वा भवत्यत्र धर्मध्यानं त्रिनोदितम् ।  
 तत्र तावद्भवेद् ध्याता ध्येयं ध्यानं फलं क्रमात् ॥ ६५६ ॥  
 आहारगमननिद्राणां विजयो यस्य जायते ।  
 पंचानामिन्द्रियाणां च परीषद्महिष्णुता ॥ ६५७ ॥  
 गिरीन्द्र इव निष्कम्पो गम्भीरस्तोयराशिवन् ।  
 अशेषशस्त्रविद्धीरो ध्याताऽर्मा कथ्यते चुर्यः ॥ ६५८ ॥



यथावद्वस्तुनो रूपं ध्येयं स्यात् संयमसतां ( मेशितां ) ।  
 एकाग्रचिन्तनं ध्यानं चतुर्भेदविराजितम् ॥ ६५९ ॥  
 पिण्डस्थं च पदस्थं च रूपस्थं रूपवर्जितम् ।  
 आद्यत्रयं तु सालम्बमन्त्यमालम्बनोज्झितम् ॥ ६६० ॥  
 पिण्डो देह इति तत्र तत्रास्त्यात्मा चिदात्मकः ।  
 तस्य चिन्तामयं मद्भिः पिण्डस्थं ध्यानमीरितम् ॥ ६६१ ॥  
 पञ्चानां सद्गुरुणां यत् पदान्यालम्ब्य चिन्तनम् ।  
 पदस्थध्यानमाज्ञातं ध्यानाग्निध्वस्तकल्मषैः ॥ ६६२ ॥  
 आत्मा देहस्थितो यद्वच्चिन्त्यते देहतो बहिः ।  
 तद् रूपस्थं स्मृतं ध्यानं मन्थराजीव भास्करैः ॥ ६६३ ॥  
 ध्यानत्रयेऽत्र सालम्बे कृताभ्यासः पुनः पुनः ।  
 रूपातीतं निरालम्बं ध्यातुं प्रक्रमते यतिः ॥ ६६४ ॥  
 इन्द्रियाणि विलीयन्ते मनो यत्र लयं व्रजेत् ।  
 ध्यातृध्येयविकल्पे न तद्ध्यानं रूपवर्जितम् ॥ ६६५ ॥  
 अमूर्तमजमव्यक्तं निर्विकल्पं चिदात्मकम् ।  
 स्मरेद्यत्रात्मनात्मानं रूपातीतं च तद्विदुः ॥ ६६६ ॥  
 रूपातीतमिदं ध्यानं ध्यायन् योगो ममाहितः ।  
 चराचरमिदं विश्वं धोमयत्यग्निलं क्षणान् ॥ ६६७ ॥  
 सिद्धयोऽप्यणिमाद्याश्च सिद्धयन्ति स्वयमेव हि ।  
 मुक्तिर्ग्राह्यतां यानि योगिनस्तस्य निश्चिनम् ॥ ६६८ ॥  
 इत्येतन्मिन् गुणस्थाने नो गन्त्यापश्यकानि पद ।  
 संततध्यानमयोगाद् वृद्धिः श्यामाविक्री यतः ॥ ६६९ ॥

अप्रमत्तं गुणस्थानं संक्षेपेणेह वर्णितम् ।

अतो वक्ष्येऽष्टमे स्थानं धेणिद्वयसमाधितम् ॥ ६७० ॥

इति सप्तममप्रमत्तगुणस्थानम् ।

अतोऽपूरादिनामानि गुणस्थानान्युदीरयेत् ।

भवन्त्युपशमधेष्णी येभ्यश्च क्षपकावलिः ॥ ६७१ ॥

तत्रापूर्वगुणस्थानमपूर्वगुणसंभवान् ।

भावानामनिवृत्तित्वादननिवृत्तिगुणास्पदम् ॥ ६७२ ॥

अस्तित्वान्मूक्ष्मलोमस्य भवेत्मूक्ष्मकपायकम् ।

प्रशान्तरागयुक्तत्वादुपशान्तकपायकम् ॥ ६७३ ॥

तत्रापूर्वगुणस्थाने प्रथेमांशे प्रजायते ।

बन्धविच्छेदनं मम्यदनिद्राप्रचलयोर्द्वयोः ॥ ६७४ ॥

आरोहति ततः धेणिमादिमामुपशमकः ।

सत्यापुष्पुपशान्त्याप्तिं प्रापयेद्वृत्तमोहनम् ॥ ६७५ ॥

क्षपकः क्षपयत्युपधारिथमोहपर्वतम् ।

आरुह्य क्षपकधेणिमुपपुंपरि शुद्धितः ॥ ६७६ ॥

प्रभवत्युपशमधेष्णां भावो युपशमात्मकः ।

चारिश्रं तद्विधं क्षेपं वृत्तमोहोपशान्तितः ॥ ६७७ ॥

स्यादुपशमसम्भवत्वं प्रशमाद् दृष्टिमोहतः ।

क्षेपांश्चिन् क्षायिकं प्रोक्तं दृष्टिमकर्मणः क्षयाद् ॥ ६७८ ॥

तत्रायं शुरुमद्वधानं न ध्यायन्त्युपशमकः ।

पूर्वशः शुद्धिमान् युक्तो क्षायः संहननैस्त्रिभिः ॥ ६७९ ॥

तद्वचनयोगतो योगी परां शुद्धिं प्रगच्छति ।  
 प्रापयन्नुपशान्तासि वृत्तमोहं महारिपुम् ॥ ६८० ॥  
 वृत्तमोहोदयं प्राप्य पुनः प्रच्यवते यतिः ।  
 अधःकृतमलं तोयं पुनर्मलानं भवेद्यथा ॥ ६८१ ॥  
 ऊर्ध्वमेकं च्युर्ता वामं सप्तमं यान्ति देहिनः ।  
 इति त्रयमपूर्वाद्यास्त्रयो यान्त्युपशान्तमकाः ॥ ६८२ ॥  
 उपशान्तकपायस्य न ह्यस्यूर्ध्वगुणाश्रयः ।  
 ततोऽमौ वामतां याति सप्तमं वा गुणास्पदम् ॥ ६८३ ॥  
 उपशान्तगुणश्रेण्यां येषां मृत्युः प्रजायते ।  
 अहमिन्द्रा भवन्त्येते सर्वायंसिद्धिमग्नानि ॥ ६८४ ॥  
 चतुर्वारं शमश्रेणि गेहत्याश्रयते यमम् ।  
 द्वात्रिंशद्वारमार्शणकर्मांशा यान्ति निर्धृतिम् ॥ ६८५ ॥  
 आसंसारं चतुर्वारमेव स्वाच्छुमनोबला ? ।  
 जीवस्यैकभवे वाग्द्वयं मा यदि जायते ॥ ६८६ ॥  
 उक्तं चान्यत्र ग्रन्थान्तरे—

यत्तारि चारमुचसमसेदि समरुहदि मयिदकंमसो ।  
 यत्सामं वात्तारं मज्जम गहदि पुणो गहदि लिङ्गार्ण ॥ १ ॥  
 ईश्वरशमश्रेणिगुणस्थानचतुष्टयम् ।

अतो वक्ष्ये ममामेन धपकथेगिन्धनम् ।  
 योगी कर्मक्षयं कर्तुं यामाग्य प्ररतेन ॥ ६८७ ॥

आपुर्वेन्धविहीनस्य क्षीणकर्मांशुदेहिनः ।  
 असंयतगुणस्थाने नरकायुः क्षयं व्रजेत् ॥ ६८८ ॥  
 तिर्यगायुः क्षयं याति गुणस्थाने तु पंचमे ।  
 सप्तमे त्रिदशायुश्च षष्टिमोहस्य सप्तकम् ॥ ६८९ ॥  
 एतानि दश कर्माणि क्षयं नीत्वाथ शुद्धधीः ।  
 धर्मध्याने कृताभ्यासः समारोहति तत्पदम् ॥ ६९० ॥  
 मृत्प्यन्वेनेह साधूनां भावो हि क्षायिको मतः ।  
 सम्पत्त्यं क्षायिकं शुद्धं षष्टिमोहारिसंक्षयान् ॥ ६९१ ॥  
 सत्रापूर्वगुणस्थाने शुरुसद्वचनमादिमम् ।  
 ध्यातुं प्रथमते साधुराघसंहननान्वितः ॥ ६९२ ॥  
 ध्यानस्य विप्रकारीणि त्यक्त्वा स्यात्तान्यज्ञेयतः ।  
 विशुद्धानि मनोज्ञानि ध्यानसिद्धपर्यमाश्रयेत् ॥ ६९३ ॥  
 द्विकण्ड—

निष्प्रकम्पं विधायाथ षट्पर्यंकमागमम् ।  
 नागाग्रे दक्षममेशः किञ्चिन्मिमीलिनेक्षण ॥ ६९४ ॥  
 विषल्पवागुराजालाद्भूतोत्मारितमानसः ।  
 संसारच्छेदनोत्साहः स योगी ध्यातुमर्हति ॥ ६९५ ॥  
 अपानद्वागमार्गेण निःसरन्तं यंघेच्छया ।  
 निरुद्धपोर्ध्वप्रचागतिं प्रापयत्यनिलं मुनिः ॥ ६९६ ॥  
 द्वादशाङ्गुलपर्यन्तं ममाकृष्य ममीरणम् ।  
 पूरयत्यतियत्नेन पूरकध्यानयोगतः ॥ ६९७ ॥

कृष्णकृष्णमार्गः योगी शमनं नाभिरंशते ।  
 कृष्णकृष्णानुरागेन मुष्णितं कृष्णे शमम् ॥ ६९८ ॥  
 नि गार्गेने ततो यन्नाम्नाभिरंशोऽगच्छते ।  
 योगिना योगमामर्शोऽत्रैव कल्प्यते प्रभञ्जनम् ॥ ६९९ ॥  
 इत्येते गन्धसादानामाहंजनविनिर्गमा ।  
 गंगाज्य निधनं पाने निगमेकाग्रचित्तने ॥ ७०० ॥  
 मरिचकं मरीचां मृषाणां मृदादृतम् ।  
 त्रियोगयोगिन माघो गुग्गुमायं मुनिर्मन्त्रम् ॥ ७०१ ॥  
 शुभं विंता विनके म्माटीनारः संक्रमो मनः ।  
 पृथक्त्वं स्यादनेकत्वं भवत्येतन्त्रयान्मरुम् ॥ ७०२ ॥  
 तदपि—

मृदुद्धान्मानुषूयान्ममाराणामवन्धनान् ।  
 अन्तर्जल्यो विनके म्माद्यस्मिन्मत्स्यविनकेजम् ॥ ७०३ ॥  
 अर्थादर्थान्तरे शृङ्गान्छृङ्गान्तरे च संक्रमः ।  
 योगाद्योगान्तरे यत्र मरीचां तदुच्यते ॥ ७०४ ॥  
 द्रव्याद् द्रव्यान्तरं याति गुणाद्गुणान्तरं व्रजेत् ।  
 पर्यायादन्यपर्यायं मृषयस्त्वं भवत्यतः ॥ ७०५ ॥  
 इति त्रयात्मकं ध्यानं ध्यायन् योगी ममाहित ।  
 संप्राप्नोति परं शुद्धिं मुक्तिर्वाचनितामस्मीम् ॥ ७०६ ॥  
 यद्यपि प्रतिपान्द्येतच्छुद्ध्यान् प्रजायते ॥  
 तथाप्यतिविशुद्धत्वाद्ध्वास्पदं समीहितम् ॥ ७०७ ॥

इत्यष्टमे क्षपकापूर्वकरणगुणस्थानम् ।

अनिष्टतिगुणस्थानं ततः ममधियच्छति ।

भावं क्षायिकमाभित्य सम्यक्त्वं च तथाविधम् ॥ ७०८ ॥

गुणस्थानस्य तस्यैव भागेषु नवसु क्रमान् ।

नश्यन्ति तानि कर्माणि तेनैव ध्यानयोगतः ॥ ७०९ ॥

गतिः श्वाभ्री च तैरधी तथानुपूर्विकाद्वयम् ।

साधारणत्वमुद्योतः सूक्ष्मत्वं विकलत्रयम् ॥ ७१० ॥

एकेन्द्रियत्वमातापम्स्थानगृह्यादिकत्रयम् ।

आद्यांशे स्थावरत्वेन सहितान्येतानि षोडश ॥ ७११ ॥

अष्टौ मध्यकपायाध द्वितीयेऽथ तृतीयके ।

षट्त्वं तुर्यके स्त्रीत्वं नोकपाया षट्पंचमे ॥ ७१२ ॥

पुंवेदध ततः क्रोधो मानो माया चिनश्यति ।

पतुर्ष्वांशेषु श्रेषेण यथाक्रमेण निधितम् ॥ ७१३ ॥

कर्माण्येतानि षट्त्रिंशत्क्षयं नीत्या तदन्तिमे ।

ममये स्थूललोभस्य सूक्ष्मत्वं प्रापयेन्मुनिः ॥ ७१४ ॥

इति नवमे क्षपकानिष्टतिगुणस्थानम् ।

आरोहति ततः सूक्ष्ममापरायगुणास्पदम् ।

सूक्ष्मलोभं निगृह्णाति तत्रामावाद्यनुश्रुत ॥ ७१५ ॥

इति दशमे क्षपकसूक्ष्मकपायगुणस्थानम् ।

भूत्याध क्षीणमोहान्मा पीतरामो महापुतिः ।

पूर्ववद्भावसंयुक्तो द्वितीयं ध्यानमाभयेत् ॥ ७१६ ॥

अपृथक्त्वमयीचारं सवितर्कगुणान्वितम् ।

संभ्यायत्येकयोगेन शुक्लध्यानं द्वितीयकम् ॥ ७१७ ॥

तद्यथा—

यद्द्रव्यगुणपर्यायपरावर्तविवर्जितम् ।

चिन्तनं तदयीचारं स्मृतं सद्ब्रह्मकोविदैः ॥ ७१८ ॥

निजशुद्धात्मनिष्ठत्वाद् भावश्रुतावलम्बनात् ।

चिन्तनं क्रियते यत्र सवितर्कस्तदुच्यते ॥ ७१९ ॥

निर्जातमद्रव्यमेकं वा पर्यायमयवा गुणम् ।

निश्चलं चिन्त्यते यत्र तदेकत्वं विदुर्बुधाः ॥ ७२० ॥

इत्येकत्वमयीचारं सवितर्कमुदाहृतम् ।

तस्मिन् समग्रीभावं धत्ते स्यात्मानुभूतितः ॥ ७२१ ॥

इत्येतद्ब्रह्मयोगेन 'प्रोप्यन्कर्मैन्धनोत्करम् ।

निद्राप्रचलयोर्नाशं करोत्पुषान्तिमक्षणे ॥ ७२२ ॥

अन्त्ये दृष्टिचतुष्कं च द्वाकं ज्ञानविमयोः ।

एवं षोडशकर्मणि क्षयं गच्छत्यग्रेपतः ॥ ७२३ ॥

एतत्कर्मरिपून् हत्वा श्रीणिमोहो मुनीश्वरः ।

उत्पाद्य केवलज्ञानं सयोगी ममभूतदा ॥ ७२४ ॥

इति द्वादशं श्रीणकृपापगुणस्थानम् ।

ननगपोदने स्थाने देवदेव मनानन ।

गजने ध्यानयोगस्य कलादेवाम्नाभयः ॥ ७२५ ॥





देहास्तित्वेऽस्त्ययोगित्वं कथं तद्वदते प्रभोः ।

देहाभावे कथं ध्यानं दुर्घटं घटते कथम् ॥ ७५६ ॥

द्विकल—

अतिमूढमशरीरस्य ह्युपान्त्यसमयावधेः ।

कायकार्यस्य मूढस्य स्वशक्तिविगतात्मनः ॥ ७५७ ॥

अत्यन्तम्वत्पकालेन भाविप्रध्वयसंस्थितेः ।

अकिञ्चिन्करसामर्थात्तस्मादयोगिता मता ॥ ७५८ ॥

तच्छरीराश्रयाद्धानममर्त्ताति न विरुद्धयते ।

निजशुद्धान्मचिद्भूषनिर्भरानन्दशालिनः ॥ ७५९ ॥

आत्मानमात्मनान्मव ध्याता ध्यायति तत्त्वतः ।

उपशारस्तदान्धो हि व्यवहान्नयाश्रयः ॥ ७६० ॥

उपान्त्यममये तत्र तन्दुद्धान्मप्रचिन्तनान् ।

द्रामप्लनिर्विलीयन्ते कर्माण्येतान्ययोगिनः ॥ ७६१ ॥

देहधन्धनगंधाताः प्रत्येकं पंच पंच च ।

आह्नापाद्गत्रयं चैव षट्कं संस्थानमंशकम् ॥ ७६२ ॥

वर्णाः पंच रमाः पंच षट्कं संहननान्मकम् ।

स्पर्शाष्टकं च गन्धी द्वौ नीलानादंशदुर्भगम् ॥ ७६३ ॥

तथागुल्फगुन्वाभ्यमुपधातोऽन्यथा मनः ।

निर्माणमपयाममुन्द्वागम्यपशन्मथा ॥ ७६४ ॥

विदायममनदण्डं शुभमर्थपेदये शूयक ।

गतिर्दिव्यानुपूर्तिं च प्रत्येकं च स्यादपम् ॥ ७६५ ॥







दंसणवरणवस्त्यदो केवलदंसण मुणामभावो हु ।

चक्खुदंसणपमुहावरणीयखओवसमदो य ॥ ५ ॥

दर्शनावरणक्षयतः केवलदर्शनं मुणामभावो हि ।

चक्षुर्दर्शनप्रमुखावरणीयक्षयोपशमतश्च ॥

चक्खुअचक्खूओहीदंसणभावा हवंति नियमेण ।

पणविग्घवस्त्यजादा खाइयदाणादिपणभावा ॥ ६ ॥

चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनभावा भवन्ति नियमेन ।

पञ्चविघ्नक्षयजाताः क्षायिकदानादिपञ्चभावाः ॥

खाओवसमियभावो दाणं लाहं च भोगमुवभोगं ।

वीरियमेदे ज्ञेया पणविग्घखओवसमजादा ॥ ७ ॥

क्षायोपशमिकभावो दानं लाभश्च भोग उपभोगः ।

वीर्यमेते ज्ञेया पञ्चविघ्नक्षयोपशमजाताः ॥

दंसणमोहंति हवे मिच्छं मिस्सत्त सम्मपयडित्ती ।

अणकोहादी एदा णिदिहा सत्तपयडीओ ॥ ८ ॥

दर्शनमोहमिति भवेत् मिथ्यात्वं मिथ्र्यत्वं सम्पक्वप्रवृ-

त्तिरिति । अनकोधादय एता निर्दिष्टाः सतकृतप्रवृत्तयः ॥

मतण्हं उवममदो उवमममम्मो खयादु राइयो य ।

छवहुवममदो सम्मचुट्टयादो वेदग्गं मम्मं ॥ ९ ॥

सप्तानामुपशमंत उपशमसम्यक्त्वं क्षयाक्षायिकं च ।

पट्कोपशमत सम्यक्त्वोदयान् वेदकं सम्यक्त्वं ॥

चारित्तमोहर्णाण उवममदो होदि उवममं चरणं ।

गपदो गदयं चरणं गओवममदो मगगचारितं ॥ १० ॥





॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

भावा नरादौ उदयम मित्र्यौ पुण साग्न्यामित्रोदात्रौ ।

एहंमं, निःश्रेय वाय दम अहमं निष्पि इगिरागं ॥२१॥

(साध) १५ दिव, १० पादिको दिष्ट पुन पादिकादि, १० दिव.)

एतेषां भेदा मयि द्वौ शब्दादौ च वदन्ति ॥

कर्मवृत्तः तु गच्छति शरीरं कर्मसुखमस्मि उदयमिषौ ।

उदयो जीरम्म गुणो गजोदगमिर्भो हपे भारो ॥ २२ ॥

क.मं.दा.३ रि दा.३० पा.३ क.मं.प.३०३ ट.प.३.३.३.

૯૪૫ો અ.શમ્ય મુળઃ દાદોરશમ્યો મરે ૧ માત્ર ૭

क्षारणलिरवेन्ममयो महाविदो वारिणामिभ्यो भावो ।

कम्मुदयप्रकम्मुगुणो ओदयिषो होदि भावो ह ॥ २३ ॥

कारणनिरोधमेव ह्यभाविता पाणिनामिको भावः ।

ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं नमो भगवते वासुदेवाय ॥

सैवत्प्राणं दंगण गम्मे चरियं च दाण लाटं च ।

भोगुवभोगरीगियमंदं वर ग्राह्या भावा ॥ २४ ॥

वेदज्ञानं दर्शनं साधकस्य अस्ति यः दानं लाभधः ।

મોઝાર્ટનો ગર્ભાવસ્થા અને નર દર્શાવેલા માસ ।

उद्यममममं उद्यममममं दृष्टेः उद्यममा भावा ।

चटुषाणं त्रिदंशमप्युपनिषं च दायाद् ॥ २५ ॥

**दशमः स्कन्धः ।**

धर्मज्ञाने विदर्शने अद्वैतविके च दानादयः ॥

पेदण गगणचरितं देमज्जमं विणवमिम्मभावा ह ।

जीरकं मध्यमममध्यकं तिष्ठि परिणामो(मा) ॥ २६ ॥



वेदकं मगगनगिने देशयमे दिनगमिषमात्रा हि ।

जीवने भयत्तमभय । यत्र पारिणामिका ॥

ओददभो गन्तु भावो गदिलेम्पकगागलिगमिच्छनं ।

अण्णाणममिद्धनं अमंजमं चेदि इमिर्धमं ॥ २७ ॥

ओदधिकः गन्तु भावो गनिद्वयाकवायद्विगमिषा ।

अज्ञानममिद्धनं अगवमधेनि ण्कविगनि ॥

पंचेव मूलभावा उत्तरभावा द्वयंति तेषणा ।

एदं सव्वे भावा जीवमरूवा मुण्यव्व्या ॥ २८ ॥

पंचेव मूलभावा उत्तरभावा भगनि विपचाग्रन् ।

एते सर्वे भावा जीवत्यम्पवा मन्तव्या ॥

उक्तं च—

मोहं कुर्वन्ति मिथोपशमिकभ्रायिकाभिधाः ।

यन्धर्मादयिको भावो निष्क्रियाः पारिणामिकाः ॥ १ ॥

वन्धमोक्षी न कुर्वन्ति ( इत्यर्थः ) ।

मिच्छतिगज्यदचउक्के उवसमचउगम्हि खवगचउगम्हि ।

वेसु जिणेषु विमुद्धे णायव्व्या मूलभावा हु ॥ २९ ॥

मिथ्यात्वत्रिकायतचतुष्के उपशमचतुष्के क्षपकचतुष्के ।

द्वयोर्जनयोः विदुदा ज्ञातव्या मूलभावा हि ॥

खविगुवसमगेण विणा सेसतिभावा हु पंच पंचेव ।

उवसमहीणाचउरो मिस्सुवसमहीणतियभावा ॥ ३० ॥

क्षपकोपशकाम्या विना शेषत्रिभावा हि पंच पंचेव ।

उपशमहीनाथत्वारः मिथोपशमहीनत्रिकभावाः ॥

खयिगो हु पारिणामियभावो सिद्धे हवन्ति णियमेण ।

इत्तो उत्तरभावो कहियं जाणं गुणढाणे ॥ ३१ ॥





केवलज्ञाने दर्शनमनन्तवीर्यं च क्षाधिकसम्पत्त्वं च ।

जीवत्वं चैते पञ्च भावा सिद्धे भवन्ति एवम् ॥

चतुर्दशदुर्गच्छीसं तिसु इगितीसं च अष्टदशपञ्चीसं ।

दुर्गच्छीसं वीसं चउदस तेरस भावा इ ॥ ४२ ॥

चतुर्विंशद्विंशतिश्च त्रिंशु एकत्रिंशच्च अष्टादशपञ्चविंशति ।

द्विकैकत्रिंशतिः विंशतिः चतुर्दश त्रयोदश भावा हि ॥

उत्तरद्विंशीसं वीसं मत्तरसं तिसु य ह्येति चावीसं ।

पणपणअष्टादशीसं इगदुर्गच्छीसनालसमभावा ॥ ४३ ॥

एकानैकत्रिंशतिः विंशतिः सप्तदश त्रिंशु च भवन्ति द्वारिंशतिः

पञ्चपञ्चाष्टाविंशतिः एकद्विकत्रिकनवकत्रिंशच्चत्वारिंशद्भावाः ॥

गुणस्थानप्रिमहो समाप्ता ।

मुयमुणिविणमियचलणं अणंतसंसारजलहिमुत्तिण्हं ।

णमिउण बड्डमाणं भावे वोच्छामि वित्थारे ॥ ४४ ॥

धुतमुनिविनगघरणं अनन्तसंसारजलधिमुत्तीर्णं ।

नत्वा वर्धमानं भावान् वस्थापि विस्तारे ॥

आदिमणिरण भोगजतिरिण मणुषेणु सग्गदेवेणु ।

वेदगसाइयमम्मं पज्जत्तापज्जत्तगाणमेव हवे ॥ ४५ ॥

आदिमनरके भोगजतिरिण मणुषेणु स्वर्गदेवेणु ।

वेदकक्षाधिकसम्पत्त्वं पर्वास्तापर्वतकानामेव भवेत् ॥

पटमुवमममम्मनं पज्जते होदि चादुग्गदिमाणं ।

विदिउवमममम्मत्तं णरपज्जत्ते सुरअपज्जत्ते ॥ ४६ ॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वं पर्याप्ते भवति चातुर्गतिकाना ।

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं नरपर्याप्ते मुरापर्याप्ते ॥

सकरपद्मदीर्घाण्ये वणजोडसभवनदेवदेवीणं ।

सेसर्त्थाणं पञ्चत्तेमुवसम्मं वेदगं होइ ॥ ४७ ॥

शर्कराप्रभृतिनरके बाणज्योतिक्कमवनदेवदेवीनां ।

शेषस्त्रीणां पर्याप्तेषु उपशमं वेदकं भवति ॥

कम्मभूमिजतिरिक्खे वेदगसम्मत्तमुवसम्मं च हवे ।

सन्वेसिं सण्णीणं अपजत्ते णत्थि वेमंगो ॥ ४८ ॥

कर्मभूमिजतिरश्चि वेदकसम्यक्त्वमुपशमं च भवेत् ।

सर्वेषां संतिना अपर्याप्ते नास्ति विभंगः ॥

णिरये इयरगदी मुहलेमतिथीपुंससरागदेमजमं ।

मणपज्जवसमचरियं खाइयम्ममूणखाइया ण हवे ॥ ४९ ॥

नरके इतरगतयः शुभलेश्यात्रयस्त्रीपुंससरागदेशयमं ।

मनःपर्ययशमचारित्रं क्षायिकसम्यक्त्वेनक्षायिका न भवति ॥

पढमदुगे कावोदा तदिण कावोदनील तुरिय अइनीला ।

पंचमणिरये नीला किण्णा य सेसमे किण्हा ॥ ५० ॥

प्रथमद्विके काशोता तृतीये कापोतनीले तुर्येऽतिनीला ।

पंचमनरके नीला कृष्णा च शेषके कृष्णा ॥

विदियादिमु छगु पुढविगु एवं णवरि असंजदहाणे ।

खाइयगम्मं णत्थि नृ सेसं जाणाहि पुत्वं य ॥ ५१ ॥

द्वितीयादिषु पदेषु प्रविश्यात् एवं णवरि असंयतस्थाने ।

क्षायिकसम्यक्त्वं नास्ति हि शेषं जानीहि पूर्ववत् ॥



प्रथमोपशमसम्पत्त्वं पर्याप्ते भवति चातुर्गतिकानां ।

द्वितीयोपशमसम्पत्त्वं नरपर्याप्ते मुरापर्याप्ते ॥

सत्तरपद्मदीर्घारये वणजोद्भवमवणदेवदेवीणं ।

सैमत्वीणं पञ्चत्तमुवमम्मे वेदमं होइ ॥ ६७ ॥

शक्रेगप्रभृतिनरके बाणज्योतिःकमरनदेवदेवीनां ।

शेषस्त्रीणां पर्याप्तेषु उपशमं वेदकं भवति ॥

कम्मभूमिजनिगिरये वेदगमम्मत्तमुवमं च हवे ।

गच्छेहिं गच्छीणं अपजने णन्थि येमंगो ॥ ६८ ॥

कर्मभूमिजनिगिरये वेदकमम्यत्तमुवमं च भवेत् ।

गच्छेतां गच्छिनां अपर्याप्ते नास्ति विभगः ॥

गिरये इषगदी मुहलेमनिधीपुंगरागदेमजमं ।

मणपत्तममगरियं साइयमम्मणसाइया ण हवे ॥ ६९ ॥

नरके इषगदी मुहलेमनिधीपुंगरागदेमजमं ।

मन पयवशमचरियं साइयमम्मणसाइया न भवति ।

पद्मदुगे कारोदा नदिण् कारोदनील सुगिय अहीना ।

पंचमगिरियं नीला सिग्गा य संगगे सिग्गा ॥ ७० ॥

प्रवर्तकः कारोदा नदीः कारोदनीलं सुगिय अहीना ।

पंचमगिरियं नीला सिग्गा य संगगे सिग्गा ॥

विदिगादिमु ल्लु वृद्धिमु गच्छे नरकि भ्रमंजदहाणे ।

साइयमम्मं गच्छे वृद्धे मंग मत्तादि वृद्धे य ॥ ७१ ॥

विदिगादिमु ल्लु वृद्धिमु गच्छे नरकि भ्रमंजदहाणे ।

साइयमम्मं गच्छे वृद्धे मंग मत्तादि वृद्धे य ॥





एवं भोगजतिरिण पुण्णे किण्हतिलेस्सदेसजमं ।

थीसंदं ण हि तेसिं खाइयसम्मत्तमत्थिचि ॥ ५६ ॥

एवं भोगजतिरधि पूर्णे कृष्णत्रिलेदयादेशसंपमे ।

स्त्रीयण्ड न हि तेषां क्षायिकमम्यक्त्वमर्हाति ॥

णिव्वत्तिअपज्जत्ते अवणिय मुहलेस्स किण्हतिहजुत्ता ।

वेमंगुवमममम्मं ण हि अयदे अवरकापोदा ॥ ५७ ॥

निर्वृत्त्यपर्याप्ते अपनीय शुभलेण्याः कृष्णत्रिफयुक्ताः ।

विभंगोपशममम्यक्त्वं न हि व्यते अवरकापोता ॥

लद्धिअपुण्णतिरिक्खे वामगुणट्ठाणभावमज्झम्मि ।

थीपुंसिदरगदीतिग मुहतियलेस्सा ण वेमंगो ॥ ५८ ॥

लब्ध्यपूर्णतिराधे वामगुणस्थानभावमप्ये ।

स्त्रीपुंसितरगतित्रिकं शुभत्रिकलेण्या न विभंगः ॥

भोगजतिग्घित्थीणं अवणिय पुवेदमित्थिसंजुत्तं ।

तामिं वेदगमम्मं उजमममम्मं च दो चेव ॥ ५९ ॥

भोगजतिर्षकस्त्रीणां अपनीय पुवेदं स्त्रीसंपुक्तं ।

तामां वेदकमम्यक्त्वं उपशममम्यक्त्वं च द्वे धैव ॥

तामिमपज्जनीणं किण्हानियलेस्स हवंति पुण ।

ण मण्णाणनिगं ओही दंसणमम्मत्तजुगलवेमंगं ॥ ६० ॥

तामामपर्याप्तीनां कृष्णत्रिलेदया भवन्ति पुनः ।

न सञ्ज्ञानत्रिकं अवधिदर्शनमम्यक्त्वयुगउविभंगं ॥

मजुवेमिदरगदीनियदीणा भावा हवंति नत्थेय ।

णिव्वनिअपज्जत्ते मज्जेदंगुवममणदुग्गं ण वेमंगं ॥ ६१ ॥

मनुष्येध्वनरगातित्रिकहीना भावा भवन्ति तत्रैव ।

निर्वृत्यपर्याप्तं मनोदेशोपशमनद्विकं न विभगं ॥

साणे धीसंडच्छिदी मिच्छे साणे असंजदपमत्ते ।

जोगिगुणे दुगचदुचदुगिगिर्वीसं णवच्छिदी कममो ॥ ६२ ॥

सासादने स्त्रीपदस्थितिः मिथ्यात्वे सासादने असंयतप्रमत्ते ।

योगिगुणे द्विकचतुःचतुरेकविंशतिः नवस्थितिः क्रमशः ॥

लद्धिअपुण्णमणुस्से वामगुणहाणभावमग्निग्निह ।

पीपुंसिदरगदीतियसुहृत्तियलेस्सा ण वेभंगो ॥ ६३ ॥

लब्धपूर्णमनुष्ये वामगुणस्थानभावमप्ये ।

स्त्रीपुंसितरगतित्रिकदुभात्रिकष्टेश्या न विभगं ॥

मणुसुव्व दप्पभाविस्धी पुंसंडसाइया भावा ।

उवसमसरागचरणं मणपज्जवणाणमपि णत्थि ॥ ६४ ॥

मनुष्यवद्दम्पभावस्त्रीषु पुंष्वष्टसायिका भावाः ।

उपशमसरागचरणं मनःपर्वपज्ञानमपि नास्ति ॥

तासिमपज्जणीणं वेभंगं णत्थि मिच्छुगुणठाणे ।

सामादणगुणठाणे पवट्ठणं होदि नियमेण ॥ ६५ ॥

तासामपर्वोत्थीनां विभगं नास्ति मिथ्यावगुणस्थाने ।

सासादनगुणस्थाने प्रवर्तने भवति नियमेन ॥

उवममराइयमम्मं निपपरिणामा राओवममिण्णु ।

मणपज्जवदेमज्जमं मरागचरिया ण मेम हवे ॥ ६६ ॥

उपशमसायिकमभ्यस्य वं त्रिकपरिणानाः क्षाये पदामिकेतु ।

मनःपर्वपदेशयमे ससगचारित्रं न रोच्य भवन्ति ॥

ओदङ्ग धी संदं अण्णगदीनिदयममुहतियलेस्मं ।

अवणिय सेमा हूनि हू भोगजमणुवेमु पुण्णेमु ॥ ६७ ॥

ओदङ्गिके स्त्री संदं अन्यगनित्रितयमनुमत्रिकलेस्याः ।

अपनीय शोभा भवन्ति हि भोगजमनुष्येषु पूर्णेषु ॥

तन्निज्यनिअपुण्णे अमुहनिलेस्मेव उवममं मम्मं ।

वैमंगं ण हि अयंदं जहण्णकाचोदलेस्मा हू ॥ ६८ ॥

तन्निर्जन्यपूर्णे अनुमत्रिकलेस्या एव, उपजमे मध्यस्थे ।

विभगे न हि अयने जहण्णकाचोदलेस्या हि ॥

एवं भोगन्धीणं ग्राह्यमम्मं च पुग्गिमवेदं च ।

ण हि र्थवेदं विज्जदि मेमं जाणादि पुत्थं च ॥ ६९ ॥

एवं भोगन्धीणां शायिकमध्यस्थं च पुग्गिमवेदं च ।

न हि, र्थवेदो विज्जने दोषं जानीहि वृत्तात् ॥

तदपज्जर्त्तागु हवे अमुहनिलेस्मा हू मिण्डदुगठागं ।

वैमंगं च ण विज्जदि मणुरगदिगिरिदा णं ॥ ७० ॥

तदपज्जर्त्तागु हवेदनुमत्रिकलेस्या हि मिण्डदुगठागं ।

विभगे च न विज्जने मनुष्यगनित्रितयमनुमत्रिकलेस्या ॥

देवाणां देवगदी मेमं पत्तमभोगमणुमं वा ।

मरणनिमाण कर्त्तवर्त्तीण ण हि ग्राह्य मम्मं ॥ ७१ ॥

देवाणां देवगदी मेमं पत्तमभोगमणुमं वा ।

मरणनिमाण कर्त्तवर्त्तीण ण हि ग्राह्य मम्मं ॥

मरणनिपादस्मदुग तदुदङ्गण नु मात्तमं नेउ ।

मानहृमाहृमद तदुदङ्ग वस्मवरा हू ॥ ७२ ॥

भवनत्रिकसौधर्मद्विके तेजोवधन्यं ॥ मध्यमं तेजः ।

सनत्कुमारयुगले तेजोवरं पद्मावरं खलु ॥

यद्वाहके पम्मा सदरदुगे पम्ममुबलेस्सा हु ।

आणदतेरे सुक्का सुवक्कमसा अणुदिसादीसु ॥ ७३ ॥

महपट्ठके पद्मा सत्तारद्विके पद्मशुद्धदेशे हि ।

भानतय्योदशसु शुभा शुभोत्कृष्टा अनुदिसादिषु ॥

पुंवेदो देवाणं देवीणं होदि धीवेदं ।

श्रुवणतिगाण अपुण्णे अनुदितिलेस्सेव नियमेण ॥ ७४ ॥

पुंवेदो देवानां देवीनां भवति धीवेदः ।

भुवनत्रिकानां अरूणे अनुभविदेश्या एव नियमेन ॥

कप्पित्थीणमपुण्णे तेउत्तेस्सारं मज्झिमो होदि ।

उभयत्थं ण वेमंगो मिच्छो सामणगुणो होदि ॥ ७५ ॥

कल्पछीणामरूणे तेजोदेश्यावाः मध्यमो भवति ।

उभयत्र न विभंगं मिष्यारवं मासादनगुणो भवति ॥

सोहम्मादिसु उवरिमगेविज्झंतेसु आव देवाणं ।

जिप्पत्तिअपुण्णानं ण विभंगं पट्ठमविदिसु रियठाणा ॥ ७६ ॥

सौधर्मादिषु उपरिमगैवेयकान्तेषु दावरेवानां ।

निर्हृषपूर्वानां न विभंगं प्रथमद्वितीयतुर्यस्थानानि ॥

अणुदिसु अणुनरेसु हि जादा देवा हवंति मदिही ।

तम्हा मिच्छमभज्जं अण्णापनिगं ण ण हि तेमिं ॥ ७७ ॥

अणुदिशेषु अनुत्तरेषु जाता देवा भवन्ति सत्सदृशः ।

तस्मान्निष्यत्त्वमभज्ज्यन् कथानत्रिकं ष न हि तेरां ॥

इति गतिमार्गणा ।

एयस्वविगतिगच्छे तिरियगदी संडकिण्हतियलेस्सा ।

मिच्छकसायासंजममणाणमसिद्धमिदि एदे ॥ ७८ ॥

एकाक्षद्वित्र्यशे तिर्यग्गतिः पंडकृष्णत्रिकलेष्टयाः ।

मिष्यान्वकपायासंयमं अज्ञानमसिद्धमित्येते ॥

दाणादिकुमदिकुमुदं अचक्खुदंमणमभव्वमव्वत्तं ।

जीवत्तं चेदेसिं चदुरक्खे चत्थुसंजुत्तं ॥ ७९ ॥

दानादिकुमतिकुश्रुत अचक्षुर्दर्शनमभक्ष्यत्वभक्ष्यथे ।

जीवत्वं चेनेषां चतुरश्रे चक्षुःसंयुक्तम् ॥

पंचेदिण्णु समकाण्णु दु मव्वे हवन्ति भावा दु ।

तेयं या पणकाण् ओराले णिग्गदेवगदीहीणा ॥ ८० ॥

पंचेन्द्रियेषु त्रयकाधिकेषु तु सर्वे भवन्ति भावा इति ।

एकं या पचकाये औदारिके नरकदेवगतिहीना ॥

ओरालं या मिम्मे ण हि वेमंगां मग्गदेमज्जमं ।

मणपज्जवगमभावा माणे थीसंडवेदछिदी ॥ ८१ ॥

औदारिकान् मिथे न हि विमंगी मग्गदेशवधे ।

मन पर्ववशमभावा माने थीपेदवेदोच्छांग ॥

मिच्छाउट्टिहाणे मामणटाणे अगंजदहाणे ।

दुग्ग चद्द पणवीमं पूण मज्जेगटाणम्मि णव्वछिदी ॥ ८२ ॥

निच्छाउच्छांगान् मामादतव्यान् अमणतव्यान् ।

ही चक्खु उच्छांगान् पुन मणतव्यान् नव्वछिदि ।

वेगुत्थे णो गंतिं दु मणपज्जवगममग्गदेमज्जमं ।

माइयमम्मणा माइयभावा प निग्गिमण्णुवगदी ॥ ८३ ॥



मज्झिमचउमणवयणे खाइयदुग्दीगखाइया ण हवे ।  
पुण सेसे मणवयणे सब्बे भावा हवन्ति कुडं ॥ ८९ ॥

मध्यमचतुर्मेनोवचने क्षापिकद्विकहीनक्षापिका न भवन्ति ।  
पुनः शेषे मेनोवचने सर्वे भावा भवन्ति सुटं ॥

पुवेदे संटिच्छीणिरयग्दीहीगसेसओदइया ।  
मिस्सा भावा तियपरिणामा खाइयसम्मत्तउवसमं मम्मं ॥ ९० ॥

पुवेदे पंडर्खीनरक्कगतिहीनशेषौदपिकाः । मिश्रा भावाः—  
त्रिकपारेणामिकाः क्षापिकसम्पक्कवमुपसमं सम्पक्कं ॥

इत्थीवेदे वि तहा मणपज्जवपुरिसहीगइत्थिमुदं ।  
संडे वि तहा इत्थीदेवग्दीहीगणिरयसंडमुदं ॥ ९१ ॥

स्त्रीवेदेऽपि तथा मनःपर्ययपुरुषहीनक्रोयुक्तं ।  
पठेऽपि तथा स्त्रीदेवगतिहीननरकपंडमुक्ताः ॥

कोहचउक्काणेके पगडी इदरा य उवसमं चरणं ।  
खाइयसम्मत्तूणा खाइयभावा य णो संति ॥ ९२ ॥

श्रोत्रचतुष्काणां एका प्रकृतिः, इतराश्च उपसमं चरणं ।  
क्षापिकसम्पक्त्वोनाः क्षापिकभावाश्च नो सन्ति ॥

एवं माणादिति सुहृमसरागुचि होदि लोहो हु ।  
अण्णाणति ए मिच्छा-इहिस्स य होति भावा हु ॥ ९३ ॥

एवं मानादित्रिके सूक्ष्मसराग इति भवति लोभो हि ।  
अज्ञानत्रिके मिष्यादृष्टेः च भवन्ति भावा हि ॥

केवलणाणं दंसण खाइणदाणादिपंचकं च पुणो ।  
कुमइति मिच्छममब्बं सण्णाणतिगम्मि णो संति ॥ ९४ ॥

केवलज्ञानं दर्शनं क्षापिकदानादिपञ्चकं च पुनः ।

कुमतित्रिकं विष्यान्वमभ्यस्य सैज्ञानत्रिके नो सन्ति ॥

मणपञ्जे मणुवगदी पुवेदसुहृदिलेस्सकोद्गादी ।

अण्णाणमसिद्धत्वं नाणति दंसणति च दाणादी ॥ ९५ ॥

मनःपर्यये मनुष्यगति पुवेदशुभत्रिद्वेद्याक्रोधादयः ।

अज्ञानमसिद्धत्वं ज्ञानत्रिकं दर्शनत्रिकं च दानादयः ॥

वेदगखाइयसम्मं उवसमखाइयसरागचारिसं ।

जीवत्तं भव्वत्तं इदि एदे संति भावा हु ॥ ९६ ॥

वेदकक्षापिकसम्पत्त्वं उपरामक्षापिकमरागचारित्रि ।

जीवत्वं भव्यत्वमित्येते सन्ति भावा हि ॥

केवलणाणे खाइयभावा मणुवगदी सुवलेस्माइ ।

जीवत्तं भव्वत्तमसिद्धत्वं चेदि चउदसा भावा ॥ ९७ ॥

केवलज्ञाने क्षापिकभावा मनुष्यगतिः शुभलेभ्या ।

जीवत्वं भव्यत्वमसिद्धत्वं चेति चतुर्दश भावाः ॥

ओदइया भावा पुण नाणति दंसणतियं च दाणादी ।

सम्मत्तति अण्णाणति परिणामति य असंजमे भावा ॥ ९८ ॥

औदयिका भावाः पुनः ज्ञानत्रिकं दर्शनत्रिकं च दानादयः ।

सम्पत्त्वत्रिकं अज्ञानत्रिकं परिणामिकत्रिकं च असंजमे भावाः ॥

देसजमे सुहृलेस्सतिवेदतिपरतिरिपगदिकमाया हु ।

अण्णाणमसिद्धत्वं नाणतिदेसणतिदेमदाणादी ॥ ९९ ॥

देशपमे शुभलेदयात्रिवेदत्रिनरकतिर्यगतिकमाया हि ।

अज्ञानमसिद्धत्वं ज्ञानत्रिकदर्शनत्रिकदेशानादयः ॥



जीवत्तं भव्यत्तं सम्मत्तितयं मामाड्यदुगे एवं ।

तिरियगदिदेसहीणा मणपज्जवमरागजममहियं ॥ १०० ॥

जीवत्वं भव्यत्वं सम्पक्व वन्निकं मामाधिकदिके एवं ।

तिर्यगतिदेशहीना मन पर्ययसरागयमसहिताः ॥

एवं परिहारे मण-पज्जवथीसंदहीणया एवं ।

सुहमे मणजुद हीणा वेदनिकोहतिदयतेयदुगा ॥ १०१ ॥

एवं परिहारे मनःपर्ययस्त्रीपेढहीनका एवं ।

सूक्ष्मे मनोयुक्ता हीना वेदत्रिकक्रोधश्रितयनेत्रोदिकाः ॥

जहखाइए वि एदे मरागजमलोहहीणभावा द्दु ।

उवसमचरणं खाइयभावा य हवंति नियमेण ॥ १०२ ॥

यथाह्वातेऽपि एते मरागयमन्त्रोभहीनभावा हि ।

उपशमचरणं क्षायिकभावाश्च भवन्ति नियमेन ॥

चरसुजुगे आलोए ग्राद्यमम्मनचरणहीणा द्दु ।

सेमा खाइयभावा णो संति द्दु ओहिदंमणे एवं ॥ १०३ ॥

चक्षुर्गुणे आलोके क्षायिकसम्पक्ववहीनान्तु ।

शेषाः क्षायिकभावा नो सन्ति हि अवधिदर्शने एवं ॥

तेमि मिच्छमभव्यं अण्णाणतियं च णन्धि नियमेण ।

केवलदंसण भावा केवलणाणेव णायय्या ॥ १०४ ॥

तेषां मिष्यान्व अभव्यश्च अज्ञानविक च नास्ति नियमेन ।

केवलदर्शने भावा केवलज्ञानवत् ज्ञानय्या ॥

किण्हतिये सुहलेम्मति मणपज्जुगममरागदेमज्जमं ।

ग्राइयमम्मज्जुणा ग्राइयभावा य णो संति ॥ १०५ ॥

कृष्णविके शुभन्देव्याविकमन पर्ययजममरागद त्वमा ।

क्षायिकसम्पक्वतोना क्षायिकभावाश्च ना सन्ति ॥

ण हि गिरयगदी किण्वति मुकुं उपममचरित्त तेउदुगे ।

राइयदंसणणाणं चरित्ताणि हु राइयदाणादी ॥ १०६ ॥

न हि नरगतिः कृष्णत्रिकं शुक्रं उपशमचाग्निं सेशोदिके ।

क्षाधिकदर्शनज्ञानं चारित्रं हि क्षाधिकदानादयः ॥

णो सन्ति मुक्तेस्ते गिरयगदी इपरपंचलेस्या ह ।

मय्ये मय्ये भावा मिच्छहाणमिह अमव्यस्य ॥ १०७ ॥

नो सन्ति शुभलेस्यायां नरकगतिः इतरपंचलेस्या हि ।

मय्ये सर्वे भावा मिष्यदृष्टिस्थाने अभव्यस्य ॥

मिच्छरुचिमिह य जी(भा)वा चउत्तीमा मासणमिह पत्तीमा ।

मिस्समिह दु तिच्छीमा भावा पुच्चत्तपरिणामा ॥ १०८ ॥

मिष्याहर्चो च भावा चतुस्त्रिंशत् सासने द्वात्रिंशत् ।

मिथे तु त्रयस्त्रिंशत् भावाः पूर्वोक्तपरिणावाः ॥

मिच्छममव्यं वेदगमणाणतिपं च राइया भावा ।

ण हि उपमममम्मणे सेमा भावा हवंति सहिं ॥ १०९ ॥

मिष्यान्वममव्यं वेदकमज्ञानत्रिकं च क्षादिका भावाः ।

■ हि उपशमसम्पत्ते स्तेषां भावा भवन्ति सप्त ॥

उपममभाषणेदे वेदगभावा हवंति म्देनिं ।

अपणिय वेदगमुपममजमगराइयभावसंनुत्ता ॥ ११० ॥

उपशमभावोना एते वेदकभावा भवन्ति एतेषां ।

अपनीय वेदकं उपशमयमक्षादिकभावरूपकाः ॥

राइयगम्मणेदे भावा गमदम्मि १ वेदकं ज्ञानं ।

दंगल राइयदाणादिया य हवंति जियसेय ॥ १११ ॥

क्षादिकमध्यकं ते एते भावाः संहिनि वेदकं ज्ञानं ।

दर्शनं क्षादिकाभादिकं न भवन्ति निषमेन ॥

तिरियगदि लिंगमसुहृदिलेस्सकसायासंजममसिद्धं ।  
 अण्णाणं मिच्छत्तं कुमइदुगं चक्खुदुगं च दाणादी ॥११२॥  
 तिरियग्गतिः लिङ्ग अश्रुमत्रिकलेय्याकपायासंयमा असिद्धत्वं ।  
 अज्ञान मिध्यात्वं कुमतिद्विकं चक्षुर्द्विकं च दानादयः ॥  
 तिरियपरिणामा एदे असण्णिजीवस्स संति भावा इ ।  
 आहारेऽखिलभावा मणपज्जवसमसरागदेशजमं ॥११३॥  
 त्रिकपरिणामिका एते असंज्ञिजीवस्य सन्ति भावा हि ।  
 आहारेऽखिलभावा मन पर्यवशमसरागदेशयमं ॥  
 वेसंगमणाहारे णो संति इ सुसमावगणणा य ।  
 विच्छित्ति गुणहाणा कम्मणकायमिह वणीदब्बा ॥११४॥  
 विभेगमनाहारे नो सेनि हि शेषभावगणना च ।  
 विच्छित्ति. गुणस्थानानि कर्मणकाये वर्णितव्यानि ॥  
 अरहंतसिद्धसाहृतिदयं जिणधम्मवयणपडिमाओ ।  
 जिणणिलया इदि एदे णव देवा दितु मे बोहि ॥११५॥  
 अर्हन्निद्धमाधुत्रितये जिनधर्मवचनप्रतिमा ।  
 जिननिष्ठया इत्येते नव देवा ददतु मे बोधि ॥  
 इदि गुणमग्गणठाणे भावा कहिया पवोहमुयमुणिणा ।  
 मोहंतु ते सुणिदा मुयपरिपुण्णा इ गुणपुण्णा ॥११६॥  
 इति गुणमार्गणास्थाने भावा कथिता प्रबोधध्रुवमुनिना ।  
 शोचयन्तु तान् मुनीन्दा श्रुतपरिपूर्णास्तु गुणपूर्णा ॥  
 इति सुधि श्रीश्रुतमुनि इत्या भावत्रिमयी\*  
 समाप्ता ।

\*भावत्रिमय इति नाम । इति पुस्तकान्तः पाठः । प्रारम्भे उक्तिविधानामनुगारेण  
 परिचयितम् ।





# अथ संहति-रचना ।

शुण्डस्थान रचना ।

मि.	गा.	मि.	अ	दे	प्र	अ	अपू	अ	अ	गु.	उप	ली.	ग	अयो
१	३	०	१	२	३	४	०	३	३	३	१	१३	१	६
१४	१२	११	१०	११	११	११	१८	८	१५	११	११	१०	१४	१३
१५	११	१०	१०	११	११	११	१५	१५	१८	११	११	११	११	४०

सामान्य मरक-रचना

११

मे	गा.	मि	अ
१	३	०	४
१४	१३	१५	१८
४	१	८	४

नारकापर्याप्त

११

मे	अ
१	४
१४	१५
४	४

धम्मा

११

मे	गा.	मि	अ
१	३	०	४
१४	१३	१५	१८
४	१	८	४

अपर्याप्त ।

११

मे	अ
१	४
१४	१५
४	४

धंदा

१०

मे	गा.	मि	अ
१	३	०	४
१४	१३	१५	१८
४	१	८	४

मेधा

११

मे	अ	मि	अ
१	४	४	४
१४	१५	१५	१८
४	४	४	४

अंजना

१०

मे	गा.	मि	अ
१	३	०	४
१४	१३	१५	१८
४	१	८	४

अरिष्टा

मघर्षी-भाघर्षी

पण्णारकापर्याप्त

३१

३०

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	४
२५	२३	२४	२५
६	८	०	५

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	४
२४	२४	२३	२५
६	८	०	५

मि.
०
२३
०

कर्मभूमिजतिर्यग्

तदपर्याप्ता

भोगभूमिजतिर्यग्

३८

३०

३१

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.
२	३	०	४	२
२३	२५	२०	२३	२५
०	६	८	६	५

मि.	सा.
२	२
२०	२८
०	२

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	४
२६	२४	२५	२८
०	२	८	५

तदपर्याप्ता

स. अ

भोगभूमिजतिर्यग्

तदपर्याप्त

३१

२५

३२

२५

मि.	सा.	अ.
२	४	३
२५	२३	२५
६	८	५

मि.
०
२५
०

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	४
२६	२४	२५	२८
६	८	०	५

मि.	सा.
२	२
२५	२३
०	२





सामान्यदेव

भयनत्रिकल्पश्री

म. श्री. अ. क. श्री. अ

३३

३०

३५

३३

मि.	मा.	मि.	अ.
२	३	०	२
२४	२४	२५	२८
७	९	८	५

मि.	मा.	मि.	अ.
२	३	०	२
२४	२४	२३	२५
३	८	७	५

मि.	सा.
२	२
२५	२३
०	२

मि.	मा.
२	२
२३	२१
०	१

सौधमैशानदेव

तदपर्याप्त

सानत्कुमारमाहेन्द्र

तदपर्याप्त

३१

३०

३२

३१

मि.	मा.	मि.	अ.
२	३	०	२
२४	२२	२३	२६
७	९	८	५

मि.	सा.	म.
२	२	२
२३	२३	२६
७	९	४

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	२
२५	२३	२४	२७
७	९	८	५

मि.	सा.	अ.
२	२	१
२४	२२	२७
७	९	४

महादिपद

तदपर्याप्त

शतारसहस्रार

तदपर्याप्त

३१

३०

३२

३१

मि.	मा.	मि.	अ.
२	३	०	२
२४	२२	२३	२६
७	९	८	५

मि.	मा.	अ.
२	२	२
२३	२३	२६
७	९	४

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	२
२५	२३	२४	२७
७	९	८	५

मि.	सा.	अ.
२	२	२
२२	२७	२४
७	९	४

आनतादिरचना १७, तदपर्याप्त अनु १४, एकद्विर्भन्दिष, य

११

१०

१६

१४

१५

म	मा	मि	म.
१	२	३	४
५	६	७	८

मे	मा	म
१	२	३
४	५	६

म.
१
२

मि	मा
१	२
३	४

मे	मा
१	२
३	४

पञ्चेन्द्रियेषु वसकायेषु य

पु. भ. व.

५३

५४

मि	मा	मि	म.	मे	म	म	म	म	म	म	म	म	म	म	म	म	म	म
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	
१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	

म	मा
१	२
३	४

म. मा.

भारतवर्षकाययोगेषु

१४

५१

म
१
२

ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	
---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	--

औदारिक-मिथ

वैक्रियिक-योग

तदपर्याप्त आ० योग

४५

३९

३८

२७

मि.	मा.	मि.	म.
२	४	२५	९
३१	२९	३१	१४
१४	१९	१४	३१

मि.	मा.	मि.	म.
२	३	०	६
३२	३०	३१	३४
७	९	८	५

मि.	मा.	म.
३	४	०
३१	२७	३२
७	११	६

प्र
६
१७
०

कर्मणयोग.

सस्यानुमय-मनोयचन ।

४८

५१

मि.	मा.	म.	स
२	३	२९	९
३१	३०	३५	१४
१५	१८	१३	३४

मि.	मा.	मि.	अ	दे	प्र	अ.	अ	अ	अ	सू	उ	ली	४
२	३	०	६	२	०	३	०	३	३	२	९	११	९
३४	३२	३३	३९	३१	३१	३१	२८	२८	२५	२९	११	२०	१४
१९	२१	२०	१०	२२	२२	२२	२५	२५	२८	३१	३२	३३	१५

असत्योमयमनोयचन ।

४९

मि.	मा.	मि.	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	अ	सू	उ	ली
९	३	०	६	२	०	३	०	३	३	१	९	११
३४	३२	३३	३९	३१	३१	३१	२८	२८	२५	२९	२१	२०
१९	१४	१३	१०	१५	१५	१५	१८	१८	२१	२५	३१	३३



## क्रोधमानमायारचना ।

४०

मि.	सा	मि.	प्र.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.
२	३	०	६	२	०	३	०	३	१
३३	२९	३०	३३	२८	२८	२८	२५	२५	२२
९	११	१०	०	३३	१२	१२	१५	१५	१६

लोमरचना ।

४१

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र	अ	प्र	अ	अ.	सू.
२	३	०	६	२	०	३	०	३	०	१
३३	२९	३०	३३	२८	२८	२८	२५	२५	२२	२२
१०	१९	११	८	१३	१३	१३	१६	१६	१५	१५

अज्ञानप्रय

४४

मि.	सा
२	३
३३	३२
०	२

सम्यग्ज्ञानप्रय

४१

अ	दे	प्र	अ	अ	अ.	अ.	गु	उ.	क्षी
६	२	०	३	०	३	३	२	२	१३
३६	३१	३१	३१	२८	२८	२५	२२	२१	२०
५	१०	१०	१०	१३	१३	१६	१५	२०	२१

मनःपर्यय

३०

प्र	अ	अ	अ	०	गु	उ	क्षी
०	३	०	१	३	२	१	१३
२८	२८	२५	२५	२८	२१	२०	२०
२	२	५	५	६	९	१०	१०

केयल

१४

ग	अ
१	०
१४	१३
०	१

अमंयम

४१

मि	सा	मि	अ
२	३	०	६
३३	३२	३३	३३
०	२	८	५

देश

३१

दे
०
११
०

मामाधिक. छे०

परिहार

सूत्रम०

यथाख्यात

३३

२८

२२

२९

य	अ.	अ	अ	अ
०	३	०	३	३
११	३१	२८	२८	२५
०	०	३	३	३

य.	अ.
०	३
२८	२८
०	०

गु.
०
२२
०

उ	ही	उ	अ
३	१३	३	८
२१	२०	१७	१३
८	२	१५	१६

यथारूपसूत्रांत

३६

मि	सा.	मि	अ.	रे	अ.	अ	अ	अ.	गु.	उ	ही.
२	३	०	३	२	०	३	०	३	२	२	२/३
१४	१२	३३	३६	११	११	११	२८	२८	२५	२२	२१/२०
१२	१७	१३	१०	१५	१५	१५	१८	१८	१३	२७	२५/२६

अवधिद्वारांत

वेचलद्वारांत

४१

१४

अ.	रे.	अ.	अ.	अ.	अ.	अ.	गु.	उ.	ही.
२	२	०	३	०	२	२	२	२	१/३
११	११	११	११	२८	२८	२५	२२	२१	२०
५	१०	१०	१०	१३	१३	१२	१२	१०	१३

अ.	अ.
३	८
१४	१३
०	१

कृष्णत्रय

३८

मि.	सा.	मि.	अ
२	४	०	५
३१	२९	२९	३२
०	९	९	६

पीतपद्म

३९

मि.	मा.	मि.	अ	दे.	प्र	अ.
२	३	०	२	२	०	३
२९	२७	२८	३१	३०	३०	३०
१०	१२	११	८	९	९	९

शुक्ललक्ष्या

४०

मि.	मा.	मि.	अ	दे.	प्र	अ.	अ	अ	अ	मू.	उ.	ली	व
२	३	०	०	२	०	१	०	३	३	२	२	१३	९
२८	२६	२७	३०	२९	२९	२९	२८	२८	३५	२२	२१	२०	१४
१९	२१	२०	१०	१८	१८	१८	१९	१९	२२	२५	२६	२७	३३

अन्य

५३

अमन्य

३१

मि.	मा.	मि.	अ	दे.	प्र	अ.	अ	अ	अ	मू.	उ.	ली	म.	अ
२	३	०	१	२	०	३	०	३	३	२	२	१३	१	८
३४	३२	३३	३६	३९	३९	३९	२८	२८	२५	२२	२१	२०	१४	१३
१९	२१	२०	१०	२२	२२	२२	३५	२५	२८	३१	३२	३३	३९	४०

मि.  
३१  
३२  
३३

मि. मा. मि.

३४

३९

३९

उपनाम

३८

मि.
३४
३५
३६

मा.
३९
४०
४१

मि.
३९
४०
४१

अ	दे.	प्र	अ.	अ.	अ.	मू.	उ.
१	२	०	२	०	३	३	९
३४	३२	३३	३६	३९	३९	३९	२८
१९	२१	२०	१०	२२	२२	२२	३५





इति भाय-विमर्शः समाप्तः ।

# श्री-भुजङ्ग-विग्रहा आम्रव-त्रिभङ्गी ।

मन्दष्टि-महिता ।

पणमिष गुरेदृष्टिपयकमनं वट्टमायममलगुणं ।

एषयमलावण्यं वोष्टे हं गुणद भविष्यज्जना ॥ १ ॥

पणमिष गुरेदृष्टिपयकमनं वट्टमायममलगुणं ।

एषयमलावण्यं वोष्टे हं गुणद भविष्यज्जना ॥ १ ॥

मिष्टान्नं अविग्मणं कामाय ओगा य आमरा ह्येति ।

पण धारम पणधीमा पण्णग्मा ह्येति तन्मेया ॥ २ ॥

मिष्टान्नमविग्मणं कामाय ओगा य आमरा भवन्ति ।

एष द्वादश एषविंशतिः एषदश भवन्ति तद्देशाः ॥

मिष्टोदयेण मिष्टान्नममरहणं तु तच्चप्रत्याणं ।

एषं विवरीयं विणयं संमपिदमण्णाय ॥ ३ ॥

मिष्टान्नोदयेन मिष्टान्नममरहणं ॥ तत्प्रत्याणं ।

एषान्नं विवरीयं विणयं संमपिदमण्णाय ॥

उष्मिदिण्णुज्विरदी छज्जीये सह य अविरदी येव ।

इंदियपाणासंजम दुदसं होदिचि णिरिहं ॥ ४ ॥

उष्मिदिण्णुज्विरदी छज्जीये सह य अविरदी येव ।

इंदियपाणासंजम द्वादश भवन्तीति निर्दिष्ट ॥

इति भाष-प्रिमङ्गली समाप्त ।



अणमप्यच्चक्खाणं पच्चक्खाणं तद्देव संजलणं ।

कोहो माणो माया लोहो सोलस कसावेदे ॥ ५ ॥

अणमप्रत्याख्यानः प्रत्यास्थानः तदेव संज्वलनः ।

कोहो माणो माया लोभः पौडश कपाशा एते ॥

हस्त रदि अरदि सोर्य भयं जुगंछा य इत्थिपुंवेयं ।

संढं वेयं च तहा णव एदे णोकसाया य ॥ ६ ॥

हास्ये रतिः अरतिः शोकः भयं जुगुप्सा च स्त्री-पुंवेदौ ।

पंडो वेदः च तथा नवैते नोकपाशाश्च ॥

मणवयणाण पउत्ती मखामच्छुमयअणुमयत्थेसु ।

तण्णामं होदि तदा तेहिं दु जोगा दु तज्जोगा ॥ ७ ॥

मनोवचनाना प्रवृत्तिः सत्यासत्योभयानुभयार्थेषु ।

तन्नाम भवति तदा तैस्तु योगाद्धि तजोगाः ॥

ओरालं तंमिस्सं वेगुच्चं तस्म मिस्मयं होदि ।

आहारय तंमिस्सं कम्मइयं कायजोगेदे ॥ ८ ॥

औदारिकं तन्मिथ्रं वैक्रियिकं तस्य मिथ्रकं ।

आहारकं तन्मिथ्रं कर्मणकं काययोगा एते ॥

मिच्छे खलु मिच्छत्तं अविरमणं देमसंजदो'त्ति हवे ।

सुद्धुमो चि कसाया पुणु मज्जोगिपेसंत जोगा हूं ॥ ९ ॥

१ अनन्तानुबन्धि । २ इति यावदर्धे ।

३ चतुष्षडंगो मिच्छे बंधो पदमे अनन्तानुबन्धे तिष्षडंगो ।

मिस्मयाविदितं अविरमद्गुणं च देयेच्छदेममि ॥ १ ॥

अविरतिपंचये पुन दुष्यया जोगपञ्चभो निर्वर्त्त ।

सामान्यपञ्चया कालु अदृष्टं होति कम्मार्त्तं ॥ २ ॥

मिथ्या वे एतद् मिथ्या ३ अविमर्शं देवान्मर्त्यमिति भवेत् ।

सुखमिति वशादा पुनः सर्वमिदं-त योगा हि ॥

मिथ्यादुर्गतिरदृष्टाये मिथ्यादुर्गम्यदृष्टकायत्राणां य ।

एतद् दारुद केवलित्वाहे ओगन्तमिथ्याकर्मसा ॥ १० ॥

मिथ्यावद्विद्वत्प्रमाणाने मिथ्यादिककर्मसंज्ञावशेनाय ।

एते आत्मादि४ केवलित्वाहे औदारिकमिथ्याकर्मसा ॥

पंचे एतद् सुखं नय य पञ्जर दुर्ग सुखं एतद् एतदेतद् ।

सुखं एतद् मग्नमसा पञ्चयस्त्रिष्ठिति नायन्ता ॥ ११ ॥

एव एतुः एतद् मग्न य एतद् एतद् द्वौ एतद् एतद् एतद् एक ।

एतद् एतु मग्नमसा पञ्चयस्त्रिष्ठिति नायन्ता ॥

मिथ्याहे दारुद माग्नमग्नमे मिथ्यापञ्चकं नयि ।

अन दो मिथ्या कर्म मिथ्या न एतन्मग्न सुखद ॥ १२ ॥

मिथ्याहे आत्मादिकं सासादनमग्न ३ मिथ्यात्वपञ्चकं नास्ति ।

अने हे मिथ्या कर्म मिथ्या न एतुपे मग्न ॥

दो मिथ्या कर्म मिथ्या मग्नद वेगुम्य सप्त मिथ्या न ।

ओगन्तमिथ्या कर्ममपञ्चमसा न तु न हि पंचे ॥ १३ ॥

३ मिथ्या कर्म मिथ्या, प्रसक्तो वैकल्पिकः तस्य मिथ्या य ।

औदारिकमिथ्या कर्ममपञ्चमसा न तु न हि पंचमे ॥

१ अत्र केवलमिति नोक्तं यथा—

यन एतु सुखं नय य पञ्जरस एतन्म सुखं एतद् य ।

एतदेतद् एतद् एतद् य एतद् सुखं य एतद् सप्त सुखं ॥ १ ॥

२ अविमर्शमग्नमपञ्चमसा नय एतदेतद् एतद् एतद् आत्मादि  
मिथ्यावते कमेन । ३ अन्तानुमितिमग्न ४ औदारिकवैकल्पिकस्य मिथ्या ।

इतो उवरिं सगसगविच्छित्तिअणासवाण संजोगे ।

उवरुवरिं गुणठाणे होतित्ति अणासवा णेया ॥ १४ ॥

इतः तपरि स्वस्वविच्छित्त्यासवाणां संयोगे ।

उपर्युपरि गुणस्याने भवन्तीति अनासवा ज्ञेयाः ॥

मिच्छे पणमिच्छत्तं साणे अणचारि मिस्संगे सुण्णं ।

अयदे विदियकसाया तमवह वेगुव्वजुगलछिदी ॥ १५ ॥

मिथ्यात्वे पचमिथ्यात्वं, साने अनचतुष्कं मिश्रके, शून्यं, ।

अयते द्वितीयकपायाः त्रसवधैक्रियिकयुगलच्छितिः ॥

अविरयएक्कारह तियचउकसाया पमत्तए णत्थि ।

अत्थि ह आहारदुगं हारदुगं णत्थि सत्तहे ॥ १६ ॥

अधिरत्यैकादश तृतीयचतुष्कपायाः प्रमत्तके न संति ।

अस्ति हि आहारद्विकं, आहारद्विकं नास्ति सप्तमे, अष्टमे ॥

छण्णोकसाय णवमे ण हि दसमे संदमहिलपुंवेयं ।

कोहो माणो माया ण हि लोहो णत्थि उवममे एणिणे ॥ १७ ॥

१ अत्र सुखावबोधार्थं केशववर्णिनोक्तं भाष्यवद्विपरीतं—

मिच्छे पणमिच्छत्तं, पदमकमार्थं तु सामाने, मिथ्ये ।

सुण्णं, अविरदममे विदियकमार्थं विगुव्वजुगलकम् ॥ १ ॥

ओराकमिस्स तमवह अवयं, देसमि अविररेक्कारा ।

तदियकमार्थं पण्णर, पमत्तविरदमि हारदुगं छेदी ॥ २ ॥

सुण्णं पमादरादिदे, पुण्ये छण्णोकसावबोच्छेदी, ।

अणियद्विमि व कमसो एक्केकं वेदितियकमापनिषं, ॥ ३ ॥

सुदमे सुदमे लोहो, सुण्णं उवममेणु, नीमेणु ।

अहीपुमववचनमवचउ, ओगिमि वं सुवह बोण्णदि ॥ ४ ॥

सङ्गुमार्थं वचनं दत्तं च ओराककाजोयं च ।

ओराकमिस्सकम्य उवपारेतेव सप्तमाधो, ॥ ५ ॥

पञ्चोक्त्याः, गच्छे 'संति' इदमेव दृश्यते।

**॥ ओं नमो ब्रह्मा + भूर् + त्र्यम्बो, नमो बृहस्पते, दीने ॥**

अलिङ्गमज्जदण्डमुभयं षड्विंशतिष्वेकं अविंशत्यमण्डपम् ।

शिवोत्तमिदमग्रे अपसराञ्जोगिणो हौनि ॥ १८ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

पिष्टाऽग्निश्च, भद्रं यथा अयोनिर्वा भवन्ति ॥

पञ्चमलादप्या भगवद्देवेति अविगत्या मम्मं ।

मै चतुर्धनमिमांसा बंधादौ पंचमंमारे ॥ १७. ॥

प्रत्ययमण्यसंवासात् मण्यसंवासाः सन्तिनाः सम्प्रदाः ।

ते अमुद्व्योमीमता, द्वाधन-पंचगमारे ॥

पञ्चैवैषां पञ्चमं निदाल लाडाल मणतीमा य ।

पञ्चमीय दृष्टार्थीयं मोक्षममेवञ्च ज्ञात्वा पदं मया ॥ २० ॥

एषदं धातान् एधातान् त्रिधातानि शतं षड्धातानि शतं सप्तत्रिंशत् ।

अनुविद्वानिः द्विद्वानिः वांश्च एकोनं वाचसप सप्त ॥

दुग्धं मग्नं चतुर्गुणित्वमयं पीतं त्रिपञ्चदशगुणित्वमयं च ।

शिवमगधददानं पण्यामा होति मयवण्या ॥ २१ ॥

१-२ अनुविदुषे इत्यर्थः । ३ श्रुत्यभिव्यक्तिः । ४ अनुविदुषे इत्यर्थः ।

५. अथवागमोच माधःपूर्व कथा—

पञ्चदशस्य चत्वारिंशत्तिहास्ये तद्वत्संज्ञायाः सप्तमीति ।

अदुर्भावा वाचीस वाचीसमपुण्डकमोति ॥ १ ॥

धर्म सौभाग्यवर्द्धनी शुभं कामं होति इत्यर्थः ।

सुहृदादिभ्य इमं लक्ष्यं लक्ष्यं ज्योतिषिणः सत्तेषां ॥ २ ॥

६. अन्तर्गत के तालमेलितों का प्रस्ताव—

દોશિય ધ મજા ધ જોડમનરુએ બિ બ્યાત ધોમ તેલીમં

पञ्चार्ताम बुभुक्षिदातं ससेतातदुदत्तं हृस्वं पञ्चमं ॥ १ ॥



## प्रथमनरक-रचना

मि. सा. मि. अ.

५ ४ ० ८

५१ ४४ ४० ४२

० ० ११ ९

## द्वितीयादिनरक-रचना

मि. सा. मि. अ.

७ ४ ० ६

५१ ४४ ४० ४०

० ७ ११ ११

वेगुब्बाहारदुगं ण होइ तिरियेसु सेसतेवण्णा ।

एवं भोगावणिजे संड विरहिऊण वावण्णा ॥ २९ ॥

वैक्रियिकाहारदिकं न भवति तिर्यक्षु शेषत्रिपचाशत् ।

एवं भोगावनीजेषु षट् विरह्य क्षापचाशत् ॥

लद्धिअपुण्णतिरिक्खे हारदु मणवयण अट्ट ओरालं ।

वेगुब्बदुगं पुंवेदित्थीवेदं ण वादालं ॥ ३० ॥

लभ्यपूर्णतिर्यक्षु आहारकदिकं मनवचनाष्टकं औदारिकं ।

वैक्रियिकदिकं पुंवेदस्त्रीवेदौ न द्वाचत्वारिंशत् ॥

## कर्मभूमितिर्धप्रचना

मि. सा. मि. अ. दे.

५ ८ ० ७ १५

५३ ४८ ४२ ४४ ३०

० ५ ११ ९ १६

## भोगभूमिजतिर्यध

मि. सा. मि. अ.

५ ४ ० ७

५२ ४७ ८१ ४३

० ५ ११ ९

## लभ्यपर्याप्त

मि.

०

४९

०

मणुवेसु ण वेगुब्बदु पणवण्णं संति तन्थ भोगेसु ।

हाग्दुगंडरिवज्जिद दुवण्णज्जुण्णे अपूण्णे वा ॥ ३१ ॥

मनुजेषु न वैक्रियिकदिकं पंचपचाशत् सन्ति तत्र भोगे ।

आदागदिकषट्पदेवादिने द्विपचाशत् भूमे अमे ६४ ॥



भवनवि-कल्पस्थी । लीपमोदि-मित्रेयकास्त । भनुरिशातु

मि.	मा.	मि.	म.	मि.	मा.	मि.	म.	म.
५	६	७	८	५	६	७	८	९
५१	५२	५३	५४	५१	५२	५३	५४	५५
०	५	११	११	०	५	११	१	०

इति वीर्यार्जवा मयाणा ।

तुन्देरिन्धियिगुणिगदरदुमगरमजगदुदि एवगो ।

मगनदुमगगदुदि य रतिदा प्रदनीग ने मगिदा ॥२१॥

तुन्देर्योक्तियेकादायकदिकमनोमनामगुभि एकासे ।

मगनदुमगनमगुभिध रतिना भगविराणे मगिना ॥

एवगो जी उगा ने कमगो अंगमाणम्भजेति ।

पाणेन य यवगुति य जुला विरिदिदिग जेदा ॥२२॥

एवगो ने उगाणे मगज मगनमागमनामगो ।

पाणेन य यवगुति य जुला विरिदिदिग जेदा ॥

इगिगदिदिगजगिद मागनगुति य होद अंगदे ।

इममगुमगो य यवगो मगि विरिदिग जेदा ॥२३॥

इगिगदिदिगजगिद मागनगुति य होद अंगदे ।

इममगुमगो य यवगो मगि विरिदिग जेदा ॥

इगिगदिदिगजगिद मागनगुति य होद अंगदे ।

मि.	मा.	मि.	मा.	मि.	मा.	मि.	मा.
५	६	७	८	५	६	७	८
५१	५२	५३	५४	५१	५२	५३	५४
०	५	११	११	०	५	११	१

० इगिगदिदिगजगिद मागनगुति य होद अंगदे ।

इममगुमगो य यवगो मगि विरिदिग जेदा ॥

इगिगदिदिगजगिद मागनगुति य होद अंगदे ।

द्वेष्टिद्विर्जायते तमर्जायते च पदया गच्छे ।

दुर्दशाभादिषु र्वेषु द्वेष्टिद्विर्जायते अर्जायते ॥ ३८ ॥

द्वेष्टिद्विर्जायते तमर्जायते च पदया गच्छे ।

द्विष्टिद्विर्जायते र्वेषु द्वेष्टिद्विर्जायते अर्जायते ॥

[ अष्टादश-विंशतिद्विर्जायते तमर्जायते च पदया गच्छे । द्विष्टिद्विर्जायते र्वेषु द्वेष्टिद्विर्जायते अर्जायते च पदया गच्छे । द्विष्टिद्विर्जायते र्वेषु द्वेष्टिद्विर्जायते अर्जायते च पदया गच्छे । द्विष्टिद्विर्जायते र्वेषु द्वेष्टिद्विर्जायते अर्जायते च पदया गच्छे । ]

द्विष्टिद्विर्जायते तमर्जायते च पदया गच्छे ।

द्विष्टिद्विर्जायते तमर्जायते च पदया गच्छे ॥ ३९ ॥

द्विष्टिद्विर्जायते तमर्जायते च पदया गच्छे ।

द्विष्टिद्विर्जायते तमर्जायते च पदया गच्छे ॥

अष्टादश-विंशतिद्विर्जायते-रक्षणा ।

वि.	का.	ख.	ग.	घ.	ङ.	च.	छ.	ज.	झ.	ट.	ठ.	ड.	ढ.	ण.	त.	थ.	द.	ध.	न.	प.	फ.	ब.	भ.	म.
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५
२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०

अष्टादश-विंशतिद्विर्जायते-रक्षणा ।

वि.	का.	ख.	ग.	घ.	ङ.	च.	छ.	ज.	झ.	ट.	ठ.	ड.	ढ.	ण.	त.	थ.	द.	ध.	न.	प.	फ.	ब.	भ.	म.
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५
२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०

अ. ग.

१ १

१ १

४९ ४९

ओरालमिस्स साणे संडत्थीणं च वोच्छिदी होदि ।

वेगुज्जमिस्स साणे इत्थीवेदस्स वोच्छेदो ॥ ४० ॥

औदारिकमित्रस्य सासादने पट्टधियोध म्मुच्छितिः भवति ।

वैक्रियिकमित्रस्य सासादने स्त्रीवेदस्य म्मुच्छेदः ॥

तेसि साणे संडं णत्थि हु सो होइ अविरदे ठाणे ।

कम्मइए विदियगुणे इत्थीवेदच्छिदी होइ ॥ ४१ ॥

तेसि सासादने पट्टं नास्ति हु स भवति अविरते स्थाने ।

काम्मणे द्वितीयगुणे स्त्रीवेदच्छितिः भवति ॥

संजलणं पुवेयं इस्मादीणोऽकमायच्छकं च ।

णियण्णजोग्गगदिया धारस आहारणे जुम्मे ॥ ४२ ॥

मग्नयने पुवेदं तास्यादिनोक्तपण्यकं च ।

नित्रैकयोगमहिता डादश आहारके गुम्मे ॥

पुवेदे थीगटं वज्जिणा सेगणयया होति ।

इत्थीवेदे हागदु पुंगटं च वज्जिदा मण्ये ॥ ४३ ॥

पुवेदे स्त्रीगटाय्या वज्जिणा सेगणयया भवन्ति ।

स्त्रीवेदे आद्यादिकेन पुंगटाय्या च वज्जिना मर्गे ॥

औदारिकमित्र-रक्षता । वैक्रियिक-रक्षता । तन्मित्र-रक्षता । आद्या-

मि वा अ म मि वा मि अ मि वा अ म

५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५

५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५

५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५

वार्द्धक-रक्षता ।

पुंगट-रक्षता ।

मि वा अ म मि वा मि अ मि वा अ म

५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५

५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५

५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५

५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५

स्त्रीषेद-रचना ।

मि.	जा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	२
५	७	०	६	१५	-	-	६	-	१
५१	४८	४१	४१	१५	१०	१०	१०	१४	१४
०	५	११	११	१८	११	११	११	१५	१५

मिम्मादुक्कम्महयन्निच्छी मांणे संढे ण होइ पुरमिच्छी ।

हारदुगं विदियगुणे ओरालियमिम्म बोन्हेदो ॥ ४४ ॥

मिध्रद्विक्कामेणगित्तिः सासादने, पंढे न भवत पुण्यविधौ ।

आदागदिक द्वितीयगुणे औदारिकमिथस्य व्युच्छेदः ॥

नेमि अयणिय वेगुवियमिम्म अविरदे दू निग्गेवे ।

कोह्वउरके माणादिवारमदीण पणढाना ॥ ४५ ॥

तेषां अपनीय वैक्रियिकमिध्र अविरते हि मिशिपेत् ।

क्रोधश्चतुष्के मानादिद्वादशहानाः पंचचवारितन् ॥

नपुंसकषेद-रचना ।

मि.	जा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	२
५	५	०	६	१५	-	-	६	-	१
५१	४७	४१	४१	१५	१०	१०	१०	१४	१४
०	५	११	१०	१८	११	११	११	१५	१५

क्रोधश्चतुष्क-रचना ।

मि.	जा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	२	३	४
५	५	०	६	१५	-	-	६	१	१	१	१
५१	४८	४७	४०	११	११	११	११	११	११	११	१०
१	७	११	८	१४	१४	१६	१६	१९	१९	१८	१५

१ स्त्रीषेदस्य सासादनगुणरचने ।

माणदितिये एवं इदरकमाणहिं विरहिदा जाणे ।  
कुमदिकुसुंदे ण विज्जादि हारदुगं होंति पणवण्णा ॥ ४६ ॥

मानादित्रिके एवं इतरकयायैः विरहितान् जानीहि ।

कुमतिकुश्रुतयोः न विद्यते आहारद्विकं भवन्ति पंचपंचाशत्

वेभंगे धावण्णा कमणमिस्सदुगहारदुगहीणा ।

णाणतिये अडदालं पणमिच्छाचारिअणरहिदा ॥ ४७ ॥

विभंगे द्विपंचाशन् कार्मणमिग्रद्विकाहारद्विकहीनाः ।

ज्ञानत्रिके अष्टचत्वारिंशन् पंचमिध्यान्वचतुरनरहिताः ॥

कुमतिकुश्रुत । विभंग ।

मि.	सा.	मि.	सा.
५	४	५	४
५५	५०	५२	४७
०	५	०	५

संज्ञानत्रय-रचना ।

अ.	वे.	प्र.	अ.	अ.	२	३	४	५	६	सू.	उ.	भी.
९	१५	२	०	६	१	१	१	१	१	१	१	४
४६	१७	२४	२३	२२	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
९	११	१४	१६	१६	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९

मणपज्जे संदित्थीयज्जिदमगणोकमाय संजलणं ।

आदिमणवजोगजुदा पद्ययवीसं सुण्ययव्वा ॥ ४८ ॥

मनःपर्यये षट्छावत्रिनसमनोकयायाः संभवउना ।

आदिमनत्रयांगयुक्ता प्रत्ययविशतिः ज्ञातव्या ॥

ओरालं तंमिस्सं कम्मइयं मद्यअणुमयाणं च ।

मणवयणाण अउरुके केवलणाणे मगं जाणे ॥ ४९ ॥

लौदारिकं सन्दिग्धं कर्मण स्यानुभयानां च ।

मनोवचनानां चतुर्ध्वं केवलज्ञाने सप्त ज्ञानीहि ॥

ममःपर्यय-रचना ।

कवलज्ञाने-रचना ।

५	अ.	भ.	अ.	१	२	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००
---	----	----	----	---	---	---	---	---	---	---	---	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	-----

अदम्यवयवोराते दारदुर्गं लोकमाय संजलनं ।

मामादयतेदेसु य चतुर्विंशति पश्यतां ह्येति ॥ ५० ॥

अदम्यवयवोराते दारदुर्गं लोकमाय संजलनं ।

मामादयतेदेसु य चतुर्विंशति पश्यतां ह्येति ॥

विमदि परिहारे सन्दिग्धं दारदुर्गवज्रिणा एदे ।

गुह्ये नवजादिमजोगा संजलनलोहजुदा ॥ ५१ ॥

विमदि परिहारे सन्दिग्धं दारदुर्गवज्रिणा एदे ।

गुह्ये नवजादिमजोगा संजलनलोहजुदा ॥

एदे पुन जहत्वादे कम्मणओरालमिस्मसंनुत्ता ।

संजलनलोहजुदा एगादमपयया पेया ॥ ५२ ॥

एदे पुन जहत्वादे कम्मणओरालमिस्मसंनुत्ता ।

संजलनलोहजुदा एगादमपयया पेया ॥

नमःसंजमवज्रिणा सेमऽजमा लोकमाय देसजमे ।

अहंनिष्टवज्रिणा आदिमणवजोग मगतीता ॥ ५३ ॥

नमःसंजमवज्रिणा सेमऽजमा लोकमाय देसजमे ।

अहंनिष्टवज्रिणा आदिमणवजोग मगतीता ॥



आहारयदुगरहिया पणवण्ण असंजमे दु चरसुदुगे ।  
 सव्वे णाणतिकहिदा अडदाला ओहिदंसणे णेवा ॥ ५४  
 आहारकद्विकरहिताः पंचपंचाशदसंयमे तु, चक्षुर्द्विके ।  
 सर्वे, ज्ञानत्रिककथिता अष्टचत्वारिंशन् अवविदर्शने हेवाः ॥

सामायिक-छेदोपस्थापना ।

परिहार ।

सूत्रमसांपत्ता

प्र.	अ.	अ.	अ.	२	३	४	५	६	प्र.	अ.	सू.
२	०	६	१	१	१	१	१	१	०	०	०
२४	२२	२३	१६	१५	१४	१३	१२	११	२०	२०	१०
०	२	२	८	९	१०	११	१२	१३	०	०	०

यथावशात् चरित्र ।

देशसंयम ।

असंयम-रचना ।

उ.	ली.	स.	अ.	दे.	मि.	सा	मि.	अ.
०	४	७	०	०	५	८	०	९
१	९	७	०	१०	५५	५०	४३	४६
२	२	४	११	०	०	५	१२	९

चक्षुरव्यस्तुदर्शन ।

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	२	३	४	५	६	मू.	उ.	अ.
५	४	०	९	१०	०	०	६	१	१	१	१	१	१	१	१	०
५५	५०	४३	४६	१०	२४	२३	२०	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	०
२	०	१४	११	२०	३३	३५	३०	४१	४३	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९

[ अवविदर्शन-रचना-अवविज्ञानवत् । ]

मगजोगपयया गन्तु केवल्यणाय्य केवलालोण ।

किन्दनिण पणवण्णं हाम्दुगं वल्लिकुण हये ॥ ५५ ॥

सतयोगप्रयया गन्तु केवल्यणाय्य केवलालोके ।

वृष्णत्रिके पंचपंचाशन् आश्रुत्रिके वरविद्या भवेत् ॥

ब्यासव-त्रिभङ्गी ।

किण्वदुसाणे वेगुव्वियमिम्मज्झिदी हवेइ नेउत्तिण ।

मिच्छद्दुष्टाण्ये ओगलियमिस्सो णट्ठिय अविग्दे अण्ठिय ॥

कृष्णद्विकसासादने वैक्रियिरुचिभटिगि नने ५ तेजस्विने

मिथ्याचिस्थाने औदारिकामिथ नास्ति अवेगतेऽस्ति ।

[ केवसदपेन रचना कवसकानर । ]

कृष्णनील-रचना । कर्पांतररचना पीलपद्म-रचना

वि	सा	वि	अ.	वि	सा	वि	अ.	वि	सा	वि	अ.	वि	सा	वि	अ.
५५	५०	५५	५५	५०	५०	५५	५५	५०	५०	५५	५५	५०	५०	५५	५५
५५	५०	५५	५५	५०	५०	५५	५५	५०	५०	५५	५५	५०	५०	५५	५५

सुहृत्सम्यक्तिये भज्ये सज्येऽभज्ये वा ह्येति शब्दगं ।

पणवण्णुवममसम्मे ने मिच्छोगलमिम्मअणग्गिद। ॥ ५

सुखलक्ष्यात्रिके भव्ये सौ अमर्षे न मया व्याहृतः ।

पंचप्रकाशद्वयसमन्वयस्य ते विष्णु श्रीः साधिकाभिधानम् ।

[ सुखलक्षैश्वा भस्वमार्गिण्या-स्थैश्वा सुप्रसङ्गात्मकः ]

**उपदामस्यैवैक्यं नमनी :**

[illegible]

एदे पेदगगइण हारदओगलमिम्मसंजुभा ।

मिच्छे भावण मिस्से मगगुणहाणच्च णायच्चा ॥ ५८

एते वेदव्यादिकयोः आचार्यकौशारिकनिधसंगुता ।

मिथ्यात्वे सासादने मित्रे स्वकगुणसदानुपेक्षाभ्या ॥



काव्य-विशेष

काव्य-विशेष

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

काव्य-विशेष

ॐ नमो

हृदि काव्यज्ञानं ज्ञेयं पदपदभेदात् तच्च मन्त्रात्मकं  
वर्तितं सुदृष्टिना ज्ञेयं वाचं नो ज्ञातुं शक्यम्

हृदि काव्यज्ञानं ज्ञेयं पदपदभेदात् तच्च मन्त्रात्मकं

वर्तितं सुदृष्टिना ज्ञेयं वाचं नो ज्ञातुं शक्यम्

पदपदभेदात् तच्च मन्त्रात्मकं पदपदभेदात् तच्च मन्त्रात्मकं

निमित्तमप्यपराधं नो वाचिहो विदुः ॥ ६० ॥

पदपदभेदात् तच्च मन्त्रात्मकं पदपदभेदात् तच्च मन्त्रात्मकं

निमित्तमप्यपराधं नो वाचिहो विदुः ॥ ६० ॥

हृदि काव्य-विशेष

• हृदि श्री-भुवनेश्वर-विश्वेश्वर-विश्वेश्वरी मन्त्रात् ।

• पुष्पोत्पत्तिः वाचं पुष्पकं वाचिहो ।

समाप्तोऽयं भावसंग्रहादि ग्रन्थः ।

# प्राकृत-भावसंग्रहस्य घर्णानुक्रमणिका ।



अ	पा० सं०	पृष्ठम्		पा० सं०	पृष्ठम्
अद्वैतामरसङ्गणनो	११	२७	अमरसङ्गरे निवेशः	४२०	१५
अद्वैतपरिणामित	८	३	अभिधुमिदि गुणः	४०१	१०३
अद्वैतविधानसम्बन्धो	४०५	१०	अभिरससम्मादिही	३४९	८०
अद्वैतरतिलोत्तमाए	११०	५०	" "	४९८	१०८
अद्वैत वि सा वति	१५१	३९	अभि सङ्ग सार	५८	१८
अद्वैतव्यगुणवृत्तो	१७८	८५	अभिरुग मसगाव	६९	१०
अद्वैतावपदतो	१६०	८२	अगुदकम्मरम नामी	३६८	८३
अद्वैतवृत्तो	१६८	४१	अगुदगुदस विवाभो	३६९	८१
अद्वैतं नाम	३५७	८१	अगुदस कारनेहि	३९७	८८
अद्वैतं सायद	१०१	४८	अगुदे अगुदे नाम	६८५	१४४
अद्वैतानां लक्ष्य	६३८	१३४	अद्वैतवृत्तिरित्येत	३७०	८४
अद्वैतवृत्तव्याप	४५५	१००	अद्वैत एतदवस्थासे	४६९	१०२
अद्वैतवृत्तव्याप	५६९	१०२	अद्वैत विद्वत्तव्याप	१२५	५१
अभिमा मदिमा लहि	४१०	९१	अद्वैत विद्वत्तव्याप	३८९	८६
अद्वैतं परिचय	४११	९२	अद्वैत मुनेतो लक्ष्य	६०७	११८
अद्वैत गुणदोषे	३६	१०	अद्वैत एव वक्तव्य	९६	१७
अद्वैत भुक्तमाने	३९	९	अद्वैत एवो धर्मो	४१	१५
अद्वैतव्यापसमागो	१८६	४६	अद्वैत लिप्युत्त सेदा	४३५	९६
अद्वैतव्याप मोक्ष	१६७	४०	अद्वैत अद्वैतव्याप	४६९	१०१
अद्वैत वि द्वादा	१५६	६०	अद्वैत अद्वैत	२३९	५६
अद्वैत द्वि विद्वत्तव्याप	४६	१३	अद्वैत अद्वैत	१६९	४१
अद्वैत त्रि विद्वत्तव्याप	११६	३१	अद्वैत अद्वैत	२४९	५७
अद्वैत त्रि विद्वत्तव्याप	४९	१०२	अद्वैत विद्वत्तव्याप	५८१	११३
अद्वैत द्वि विद्वत्तव्याप	३३६	७५	अद्वैत लक्ष्य द्वावि	५८४	११४
अद्वैतव्याप वक्तव्य	४८९	१०६	अद्वैत वक्तव्य	५९	१७







क्र.सं.	ग्रन्थ	पृ.सं.	मूल्य	क्र.सं.	ग्रन्थ	पृ.सं.	मूल्य
१	काम्यतेजस्ययोग	४७५	१०३	१	कि बहवयोगो लीला	११०	५१
२	काम्यकल्लोदाहो	२९७	६८	२	कि दानं मे दिव्यो	४१७	११
३	काम्ययोगो नरवयोगो	३४	१०	३	कि वन्देह दृष्टि	२१९	५१
४	काम्ययोगो नरवयोगो	४३६	९९	४	कि वन्देह उल्लेख	४११	१०१
५	काम्य विराहो नरवयोगो	५६०	११९	५	कि लो रत्नमिर्मल	१०९	५०
६	काम्य विराहो नरवयोगो	२८३	८६	६	कि वन्देह उल्लेख	२११	५०
७	काम्य विराहो नरवयोगो	५१३	११०				
८	काम्य विराहो नरवयोगो	३४५	७९				
९	काम्य विराहो नरवयोगो	६५६	१३९				
१०	काम्य विराहो नरवयोगो	४७९	१०४				
११	काम्य विराहो नरवयोगो	४१	११				
१२	काम्य विराहो नरवयोगो	२५८	५३				
१३	काम्य विराहो नरवयोगो	५५९	११९				
१४	काम्य विराहो नरवयोगो	५११	११०				
१५	काम्य विराहो नरवयोगो	११८	८६				
१६	काम्य विराहो नरवयोगो	२३३	११८				
१७	काम्य विराहो नरवयोगो	२२	९				
१८	काम्य विराहो नरवयोगो	५३८	१११				
१९	काम्य विराहो नरवयोगो	५०८	११६				
२०	काम्य विराहो नरवयोगो	२८५	११६				
२१	काम्य विराहो नरवयोगो	२००	१०९				
२२	काम्य विराहो नरवयोगो	१०३	८६				
२३	काम्य विराहो नरवयोगो	६००	१३९				
२४	काम्य विराहो नरवयोगो	२९९	६०				
२५	काम्य विराहो नरवयोगो	८१६	१००				
२६	काम्य विराहो नरवयोगो	११०	११				
२७	काम्य विराहो नरवयोगो	०००	१००				
२८	काम्य विराहो नरवयोगो	३०८	८६				



पा० सं०	पृष्ठम्	पा० सं०	पृष्ठम्
जलवरीणप्रवा याई १२२	३२	जीववरसामनमनुलं ५१५	१२१
जस्म गुरु दुरदिशुओ २५१	५८	जीवकम्माग उहयं ३२४	३४
जस्म न गद्या न चवकं २७६	६४	जीवपरममययं ६२२	१३१
जस्म न गोरी मंगा २७६	६३	जीवपरमेककेके ३२५	७४
जस्म न गइणामितं ६११	१५९	जीवस्म होति भावा २	१
जस्म न तथो न ५३१	११४	जीवान पुग्गतार्थ ३०६	३०
जह अमियहि पडतं ६५२	१३८	जीवो अणादमिओ २८६	६६
जह कणयमउअओइव १५	४	जीवो सया अकत्ता १७९	४३
जह कोमुंमयययं ६५४	१३८	जे कयकम्माउता २७	८
जह निरिगई तलाए ३९२	८८	जे त्रियरमगासता २३	७
जह पुक्कादइओए १७३	५२	जे पुण मूखियगंया १३५	१४
जह चिरकाओलगाइ ६४७	१३६	जे पुणु मिच्छाविदो ५१४	११५
जह जह बहुर लच्छी ५६८	१२१	जे संसारी जीवा ४	२
जहजाबलिंगधारी १९२	४७	जेति आउसमारं ६७७	१४१
जह गावा निच्छिदा ५०९	११०	जेहि न दिणं दानं ५६९	१२१
जह नीर उच्छुणमं ५०३	१०८	जो इंदियाइ बंइ १७८	४३
जह तं अउम्भणामं ६४५	१३७	जो उवममइ कसाए ६५५	१३८
जणइ पिच्छइ सबलं ६९५	१४६	जोएहि तीहिं विवरइ ६४६	१३६
जणतो पिच्छंतो ६७४	१४२	जा कत्ता सो मुग्गा २९६	८८
जह पाइणतरेहे १८७	४६	जो कुणइ जयमसेसं २१५	५१
जह भंदिवारि पुरिमो ३३८	७७	जो कुणइ पुण्णारवं १८	११
जह रयणं वरं ५२६	११३	जो सबवसेडिअओ ६६०	११६
जह मुदकलियभावणि ६६२	१४०	जो जत्थ कम्ममुक्कओ ६९०	१४५
जाम न छंद मेइ ३९३	८८	जो जेवइ सो मोवइ ११४	१०
जारिमओ देइयो ६२३	१३१	जो इइइ एयणमं २४३	५१
जाव पमाए बइइ ६०५	१२७	जा न जावइ जो न २३२	५४
जा सइअविणारी ३२३	७४	जो न तरइ विवरइ २५२	५८
जा संइयो विते ६१३	१२९	जा न हि ममाइ एवं २७०	६१



पा० सं०	शृङ्ख	पा० सं०	शृङ्ख
गहदंतसिरण्ढाद	१०८	११	गहृग्य काऊन पुणो १४२ १४
ग ह्रु अरिय तेन	१५	२०	गहाणाओ यिय सुदि २२ ५
ग ह्रु एवं जं उतं	११	२६	त.
ग ह्रु वेयइ तस्म	३७	१०	तइए ममए निग्इह ३०१ ३१
गाऊन तस्म दोसं	५४६	११६	तगझाणआयइम्मं ६०४ ११०
गाणाकुलाई जाइ	२०७	५०	तपुनंउत्ता व नामो ६३७ १३४
गाभाण दंमभाण	३३०	७५	ततो परं न मच्छइ २०८ ६९
गाणावरणं कम्मं	३२१	७६	तस्य पुवा पुन मंगा ५४७ ११६
गावा जइ सच्छिइरा	५४८	११७	तस्य न रंउइ आऊ २०० ४०
गाणेण तेन जाणइ	६७७	१८७	तस्य वि ययस्म जावं १४७ ३६
गाणं जइ सय	६६	२०	तस्य वि विविहं मोए ४२२ ९३
गिगंयं दूसिस्ता	१५६	३८	तस्य वि मुहाइं मुत्तं ५९७ १३६
गिगंयं पम्भयणं	१५२	३७	तस्येव हि दो भावा ६५३ १३६
गिगंयो जिणवसहो	१३८	३४	तम्हा इरयीपम्भय ९८ २०
गिवागिचं दम्भ	७१	२१	तग्गा इंदियमुक्ख १७५ ४२
गिदमासाए अपइ	६०	१८	तग्गा कवलाहारो ११५ ३०
गिग्गिदिग्गिहो राया	२८१	६५	तम्हा न होइ कता २२१ ५३
गिगुनंती धोतस्सए	८१४	९२	तम्हा न होइ कता २३४ ५५
गिस्सेसकम्ममुक्खो	३४६	७९	तग्गा सम्भा दिशी ८२४ ९४
गिस्सेसमोहस्त्रीणे	६६१	१३९	तग्गा सममेव मुओ ८० २३
गिस्सेसो गिम्भोहो	६१८	१३०	तम्हा सो सालेवं ३८८ ८०
गिह्वाओ विगेण मुओ	२४९	५८	तवयरणं वयवरण ६५ १९
गिह्लावयं च खंधा	३०८	७०	तस्सुप्पण्णो पुत्तो २१४ ५१
गो इंदिएव विरओ	२६१	६१	तइ वि न ता वंम २४८ ५८
गोहम्महम्महारो	११०	२९	तइ ससारसमुदे ५१० ११०
„ „ „	१११	३०	ता गिसई जइवारो ४६७ १०३
„ „ „	११३	३०	ता देहो ता पाणा ५२० ११३
गो बग्हा कुणइ जयं	२५३	५९	ता रुसिकण पइओ १५३ ८६



गा० सं०	श्रुम०	गा० सं०	श्रुम०		
पक्खीपुष्पाहारो	११२	३०	पापिविमुक्ता र्हेमन्ति	३००	६९
पच्छा अजोदकेवलि	६७९	१४३	पणवालमयसहस्रा	६९१	१४५
पञ्चायं च गुणं वा	६४४	१३५	पिच्छिष्य परमहिता	५७५	११३
पम्माएण वि तस्स	२८८	६६	पिडो सुचद देहो	६२०	११०
पडिकूलमाइ काऊं	५६३	१३०	पीडं मेइ कपिय	४३७	९६
पडिदिक्खं जं पावं	८३२	९५	पुष्पा उक्कयराई	४२७	९४
पडमं वीयं तइयं	६८६	१४४	पुणरवि गोमयवग्गं	५३	१०
पापरमसा वि दोणी	५४७	११७	पुणरवि तमेइ वम्मं	४१९	९३
परमोरात्थियक्कायं	६८०	१४३	पुण्णवडेलुक्कवच्चइ	५८७	१२६
पविसेवि जिञ्जण	२१३	५०	पुण्णस्स कारणाइ	३९५	८८
पसमइ रयं असेसं	४७०	१०२	पुण्णस्स कारणं	४२५	९४
पणविय सुरसेण	१	१	पुण्णेय कुलं विडलं	५८६	१२४
पणमंति मुत्तिमेणे	४६५	१०१	पुण्णं पुष्पावरिवा	३९९	८९
पत्तस्सेस सहावो	४१४	११०	पुष्पायं पुप्पेहि य	४७२	१०३
पत्तपडियं न दूउइ	६८	२०	पुत्तत्थमाउसत्थं	७६	२३
परपैसणाइं लिणं	५७०	१२१	पुम्बउमकम्मवडणे	३४४	७९
परमप्पयस्म स्वं	५०७	१०९	पुप्पुत्ता जे भावा	६१५	१२९
परमडो कालाणू	३१०	७१	पयमयं गुणठायं	३५०	१८०
पर सवया गिएउं	५७६	१२२	पयमयं	५९९	११६
परिणामियभाव	१९७	८८	पयमयं	१२५	१३
परिकंदो अइसुहमो	६६९	१८१	फ		
पञ्चोवमभाउत्ता	५३६	११८	फ		
पइरंति न तइस	४६०	१०१	फ		
पहु तुम्ह समं आयं	५७२	१२१	वज्जसम्भतरणंये	१०१	२६
पागवउइपउतो	२८७	६६	वत्तीवा अयारिदा	४५१	९९
पावेण निरियज्जम्मे	५०	१५	वह्निजिम्माएण उतं	१६२	४०
पावेण सह सदेइ	८२९	९५	वह्निरतरं ववुवा	१२३	३३
पावेण सह सरोरे	४३१	९५	वह्निरम्मंतरतवसा	५०८	१०९
			वीओ भावो नेहे	५१९	१२३

ना. सं.	पृष्ठ	ना. सं.	पृष्ठ
कमो बरोह विवर १०१	४९	अमरपुरमण्डिनी १६१	४०
अ		मा मुचपुष्पदेव १९४	८८
अनिलं सुवं विवर १४५	११६	मावापमावपउरा ९१	१६
अनी मुट्टी व लया ४९६	१०७	मादाए ली लया १४६	९८
भद्रास लवकनं पुन १६५	८१	मिच्छनरनरनो ११	१
भद्रा वगाइ भद्रा १५४	५९	मिच्छनरमुद्राए १२	१
भावर अमुचवाइ ४८८	१०६	मिच्छनेन एणयो १६६	४०
भावेन पुनर वाचं ७	१	मिच्छा देहीपुन ४००	८९
भावेन लेव पुन ११७	७५	मिच्छा देही पुनिनी ४९९	१०८
भीरुदी लव वृथा १५८	१९	मिच्छा वाचन मेस्वो १०	१
भुवकमया व हु ५१८	१११	मुचल धम्मगावे १७१	८४
भुवकावमयावमव ५२१	१११	मुचिभोवनेन दधं ५६७	११०
भूमोवमव ओओ १४९	१७	मेदुवतन्नाकडो १९७	८७
अ.		मोहएव गलदि लउ १८१	७८
भद्रपुरवविदिहमा ४९०	६९	मोहेइ मोहयोव १११	७६
भद्रपुरभोटीणो ६१५	११४	मंवाणिनी व वरी ११	९
भद्राण सुद्राण ४९१	६७	मंवेव विवरवगो १६	८
भद्रो धम्मो मंवे १८४	४५	र	
भद्रिभमसं भद्रिभम ५००	१०८	रवधंति योगवाई ५७१	१११
भद्रो भद्रिहं देव ४५०	९९	रतावता वंता १८१	४४
भद्रावमव व बुविहं ४९१	६८	रदो वृत्तो पुनरवि ११७	५६
भद्रावमवकावपुट्टो ५२८	१११	रवचविहाण छवइ ८९	१५
भद्रावमवियानं भाव ६८४	१४५	रवविदिनं सति ५९१	११५
भद्राव अलेन १७	५	रविमेवइमावर ६९६	१४६
भद्रावोहलोहगदिओ ५५१	११८	रावमिहे विस्वो २८०	६४
भद्रिनी देही विच २०	६	रिउविधमव अवरण ११५	७२
भद्रुममममविरी १५६	८१	रहं कमावमविच १६१	८२
भद्रुविल्लममविरी ११४	७६	रवधं पुन बुविहं ६१४	१११



	गा० सं०	शृङ्ख		गा० सं०	शृङ्ख
रंदा मुंदा चंडी	१८२	४४	वकेण जइ सताओ	३०	१
रु			वंदइ गोत्रोमि सया	४९	१८
रुवने अडयालीसा	५३४	११४	स		
रुदं जइ चरमतणु	८२३	९४	सई ठाणाओ मुइइ	५८३	१३३
रुदिकण सयया जो	५२७	११९	सककाईईदंतप्रह	६३६	११८
रुदिकण सुककमाणं	८८६	१०५	समयं तं रुवारवं	६२५	१११
रुदिकण देससुत्रम	५९६	१२६	सतप्पयारोहा	४५३	९९
रुयग्गसिहरसितं	६८८	१४५	सतमवं गुणठणं	६४१	१३५
रुहमए कुतरंजे	५४९	११७	सत्तुस्तासे थोओ	३१३	७२
रु			सत्थाईं विरथाईं	१५५	३८
रुणकालो समओ	३११	७१	सम्भावेणुइमई	२९९	९९
रुववाए उप्पण्णो	१९९	४८	सम्मतयाभवंपण	६९४	१३६
रुत्तणगुणसुत्ताणं	३०९	७१	सम्मतयुइवएहिं	३१८	७१
रुत्तावत्तदमाए	६०१	१२७	सम्मादिहीपुण्यं	४०४	९०
रुत्तंता वरवरये	५८९	१२४	सम्मादिही पुरिसो	५०२	१०८
रुत्तणियमसील	२५	८	सम्मादिच्छुइएण	१९८	१००
रुत्तमइकुंडरे	१८९	८६	सम्मुत्ताइइरिया	६७६	१०
रुत्तिसहस्रेण	१३१	३३	समुइएण विहाओ	१२९	१
रुत्तियरणं भाइही	४५९	१००	सम्भनओ जइ मिण्ड	८०	१
रुत्तिसाइ वयाई	४६४	१०१	" " "	४५	१
रुत्तसय वेयणीए	३८३	७८	सम्भस्सेण व तिता	२४	१
रुत्तहा तइ व कसा	५०२	१२७	सम्भानु जोवराणिपु	८७	१
रुत्तविगासे पावइ	६६७	१८१	सम्भे उवरि सारेता	६९२	११
रुत्तवाओ इइ मीकम्भ	७८	२२	सम्भे माए रिओ	५९३	११
रुत्तहेण वइ विल	२२०	५३	सम्भे मंदकयावा	५८१	११
रुत्तओ विल विदंतो	५०६	१०९	सम्भेनि जोवावं	४९०	१०
रुत्तइवमिच्छे वेही	७३	२७	सम्भणि दम्भाये	३०८	१
रुत्तइव मिच्छेणं	८४	२४	सम्भुवइइइइयाओ	५३९	११

मा० सं०	पृष्ठम्	मा० सं०	पृष्ठम्		
साधारो अण्वारो	२८९	६६	सो सञ्चो लो बंधु	५६५	११०
निर्दे सङ्ख्यारं	५९८	१२६	सो सौत्तियो भविष्यद्	५५	१७
तिररेहभिन्मगुणं	४६३	१०१	सेकादोसरदियं	२७९	६४
तिरिथिमलसेन	७०१	१४७	मंसो पुण मणद्	१७७	८३
तिम्हारमप्रयद्	४७६	१०३	संते आयुति जीवद्	८१	२३
सुदप्रमलो वर	४०९	८१	संपत्तबोदिमाहो	४८५	१०५
सुदङ्गमाये पङ्क	६९६	१३८	संवितीए वि तहा	१०६	२९
सुदङ्गमान् बीये	६६३	१४०	संवेभो निम्वेभो	२६३	६१
सुदं ताव पडले	६५०	१३७	संमसमिण्छादिही	८५	२५
सुगह जीवो तहसा	२१	७	संसारचक्रवाले	४०३	९०
सुदो काह्यमावो	६६८	१४१	संदभनस्य गुणेष	१२७	३३
सुपरिदिकरण तम्हा	२९३	५३	सेहपयं अणीचं	१३०	३३
सुवराणेय द लम्हा	४९१	१०६	द		
सुरहीलोवस्त्राणे	५२	१७	हमिऊय भोदोलेलं	४४	१९
सुददुवसं भुंजंनो	३०२	६९	हरगवगोदाचारं	५२५	११९
सुदमापञ्चतर्ग	९४	२६	हरिरद्वयतपवसरणो	३७५	८४
सुदमो भमुतिर्बलो	१९८	६९	हवद् वज्रभं द्यवं	२५९	६०
सैभो सुद्धा भावो	६	२	" " भाव्यं	३६१	८१
सेछा जे वे भावा	७	२	हविभो सुरेहि	२१२	५०
" " " " " " "	५८०	१२३	दिनादरोनजुतो	५५३	११८
सौऊन इमे ववणं	१४०	३५	दिनादिह चम्मे	२६२	६१
सौ कइ सवणो अण्णद्	५६४	१२०	दिनादिह तर्ग	२५३	८०
सौत्तिय गम्भुग्गहा	५४	१७	हुंति अविस्सियो वे	६५१	१३७
सौ दायभो पत्ते	५२७	११३	होऊय चडवारी	४८४	१०५
सौ पुण दुविहो	२७४	६३	होहर हर दुविमवसं	१२९	३९
" " " " " " "	३४७	७९	होऊय सीसोहो	६६४	१४०
सौ बंधो बंडमेभो	३२९	७५	हिद्विहो हु वेहर	६५९	१३९
सोलहलकमलपण्हो	४४४	९८	होति अजःवा दुविहा	३०३	७०
सोत्तनदलेसुं सोत्तह	४५१	९९			
सोत्तवतरेहि वेहदु	४४५	९८			

इति माया-सूची ।

# संस्कृतभाषासंग्रहस्याकाराद्यनुक्रमणिका ।



अ	श्लो० सं०	पृष्ठम्		श्लो० सं०	पृष्ठम्
अकृत्रिमेपु	५५९	२०६	अयंतत्कल्पये	२६३	१५०
अक्षसौष्ट्याय	१५१	१६४	अयोर्व्वं स्वप्न	१८७	१६०
अक्षार्येषु वि	२१८	१७१	अर्षादासीन्यपु	२२३	१७०
अक्षेपु विरतो	३२४	१८२	अदत्तागवित्त,	४५४	१९०
अक्षर्मनोबधि	३४६	१८४	अदेवे देवता	२७	१५०
अक्षोर्निमीलनं	१५८	८२	अधर्म. म्विदि	३६४	१८०
अचेतनानि	१४७	१६८	अधिकाराः स्युः	५१०	२००
"	२५३	१६५	अनन्तपुस	७३१	२६०
अज्ञानत्वेन	१६	१५०	अनन्यसंभवी	१२४	१६०
अज्ञानतानि	५३१	२०३	अनादिकालसं	२९४	१७०
अतस्तत्समिक्	१४५	१६४	अनिवृत्तन्ती ति	९७	१५०
अतिसुहृदश	७५५	२२६	अनिवृत्तिगुण	७०८	२१०
अतो देशजता	४४१	१०३	अनिवृत्तयोर	४३३	१९०
अतोपूर्वादि	६७१	२१७	अनेन हेतुना	१२१	१६०
अतो वक्ष्ये गुण	६२०	२१२	अन्तरात्मा त्रिधा	३५४	१८०
अतो वक्ष्ये समा	६८७	२१८	अन्तरायान् विना	२३७	१७०
अतः सासादनं	२९२	१७८	अन्तरे श्वेत	२०८	१७०
अत्यन्तस्वरूप	७५८	२२६	अन्तमुद्भूतेषा	७२	१५०
अय चेन्नियलं	६०९	२११	अन्तमुद्भूतेषा	१९९	४९०
अय मिथगुण	३०४	१८०	अन्तर्बाह्यतपो	६३५	२१०
अयवा जिन	६४३	२१८	अन्ते तद्वपान	७५२	२२०
अयवा सिद्ध	४९४	२०८	अन्ते श्लोकरं	७६७	२२०
अय स्त्रीणां	२४०	१७३	अन्यदृष्टिपु	७२३	२२०
अयामोनिगुण	७५३	२२५	अग्रस्वाहार	५६७	२००
अर्थके प्रवद	५४	१५४	अन्यदृष्टिपु	१४०	१६०

श्री० सं०	पृष्ठम्		श्री० सं०	पृष्ठम्	
अन्यास पुष्प	५१	१५१	असंयतगुण	३२२	१८१
अन्ये चैवं वद	६१	१५६	" "	४४०	१९१
अन्ये घोर	१२३	१६४	असंयतो मित्रा	४३८	१९३
अन्येषा मांध	४६६	१९६	अस्तिस्वाश्रो	६४५	१९८
अन्ये स्वविर	२७०	१७६	अस्तिस्वास्तु	६७३	२१७
अन्यः कौपोव	५४५	२०४	अस्तु वा तत्र	२३५	१७२
अपात्रे सिद्धिर्त	५९९	२०९	अष्टाविंशति	२७१	१७६
अपावद्धारमा	६९९	२१९	अष्टोत्तारशतैः	४९६	१९८
अपावधिन्वते	६४०	२१४	अष्टौ सम्पद	७१२	२२१
अपूर्णवधयो	२९९	१७९	अर्द्धिद्यासप्तयो	३०६	१८०
अपूर्णकरणा	११	१५१	आ		
अष्टवक्त्रमयी	७१७	२२२	आकर्ष्येत्प्रपञ्चः	१९८	१६९
अष्टमलगुण	६५२	२१५	आत्मरक्षणाय	७४६	२१५
अष्टमलार्धः	३५९	१८४	आत्मा देहस्थितो	६६३	१९६
अष्टमर्त गुण	६७०	२१७	आत्मावसात्य	७६०	२१५
अष्टादशैव सं	५२२	२०१	आवर्तद्वयो	२५४	१७४
अष्टौ निमग्न	५९६	२०९	" "	२६६	१७५
अभयं प्राकृतं	५६६	२०६	आष्टौ वरीनि	४४५	१९४
अभयार्थं वा म	१७	१५०	आष्टौवद्यमन्त्र	१९६	१७९
अमूर्तपञ्चम	६६६	२१६	" "	२९७	१७९
अत्र एहद्व	२८३	१७७	आष्टौ विरचते	१४४	२०४
अत्र कपुः पिता	१८२	१६७	आष्टौ पुण्य	७	१४९
अर्चन्ति परमा	३११	१८०	आष्टौ मित्रा वपु	१९	१५०
अर्चादर्थान्ते	७०४	२२०	आप्तव्यवहती	३९७	१८२
अवधेः प्राक्	२७६	१७६	आष्टौद्वि तत्र.	६७५	२१७
अवस्थायेती	३५२	१८४	" "	७१५	२२१
अगुण आगुणी	७४	१५७	आगुर्ब्रह्मिणी	६८६	२१९
अर्था संनिहते	११५	१६१	आगुर्ब्रह्मे वपु	४२९	१९३

	श्लो-सं०	शृङ्ख		श्लो० सं०	शृङ्ख
आतंरींद्रं मवे	४३२	१९२	इत्येतस्मिन्	६६९	२१६
” ”	५१०	२०४	इत्येतन्मन	२८४	१००
आहारकद्वयं	३००	१०९	इत्येवं गन्ध	७००	२३०
आहारं भक्षितो	५२७	२०१	इत्येवं निगद	१५२	१६४
आहारदानमेक	५६३	२०६	इत्येवं पात्र	५३०	२०३
आतं ध्यायन् वशा	४३४	१९२	इत्येवं पंचवा	१८६	११८
आसंसारं यत्तु	६८६	२१८	” ”	२९१	१०८
आहारामन	६५७	२१५	इत्येवं गन्ध	७७०	२३०
आहोस्त्वित्कव	२२९	१०२	इत्येवं सप्त	३९३	१८८
इ			ई		
इष्टाकारवचः	५०३	१९९	ईदं पुराण	१३१	१६३
इति प्रयाम्मकं	७०६	२२०	ईदं स्थविर	२८२	१००
इति हेतोर्नि	२३१	१०२	ईदं विनापि	८८	१५८
इति हेतोर्न	६७	१५६	ईदं विधे वदं	६१८	२१३
इदानीतनमा	२०२	१६९	ईदं भेदस	४३९	१९३
इन्द्राद्यष्टि	४८१	१९७	” ”	३७	१९१
इन्द्रियविषया	३७	१५३	ईदं शास्त्र	२११	१००
इन्द्रियानि वि	६६५	२१६	उ		
इत्यादिषु प्र	६३३	२१३	उत्कृष्टमप्यम	५१४	१००
इत्यादनेकधा	६८	१५७	उत्कृष्टसंयमं	२४७	१०४
इत्यामां प्रकृती	३९७	१८९	उत्तमिन्द्रिया पुरी	१८९	१६८
इत्येकधमधी	७२१	२२२	उत्तमिन्द्रिये सदा	२४५	१०३
इत्येकमुखा	५३६	२०२	” ततो	५९३	२०९
इत्येकादशाया	४९२	१९८	उदितस्ते क्षयं	३९९	१८९
इत्येकेभ्यं मं	४२३	१९१	उदितं विप्रया	५२१	२०१
इत्येकद्वयं	२१३	१८०	उत्तमयोगो हि साक्षा	३४१	१८३
इत्येकद्विती	१३३	१६३	उत्तमामः गृह	६०१	११०
इत्येकद्वयान	७२२	२२२	उत्तमान्तरा	६८३	२१६
			उत्तमान्तगुण	६४४	२१६



श्री-सं०	पृष्ठम्	श्री-सं०	पृष्ठम्
काकतालीयक	२८९	१७८	खरशूकर
किमेवं कियते	२३३	१७२	
किमत्र बहुनो	७७७	२२८	ग
कियत्काले गते	१९६	१६९	गतिः द्वाभौ च
कियते गन्ध	५९८	२१०	गतिमिक्कयक
कुदेवः कुमता	४०८	१९०	गतिदेतुर्मये
कुन्तककषण	७६	१५७	गनोऽनुमार्गत
कुमतिः कुभुत	३४२	१८३	गर्मादिमरण
कुम्भवातुंम	६६८	२२०	गर्मादिनिमृता
कुयांसंस्थापनं	४८०	१९७	गिरोन्द्र इव वि
कुलीनः संयमी	२५१	१०८	गुणपर्यायवद्
कृत्वा कालावधि	४६०	१९५	गुणस्थानस्य
कृत्वा पूजां नम	५०१	१९९	शुद्ध्यापारयु
कृत्वा संन्यासमा	६५९	१९५	" "
कृत्वा र्यापयसं	६७२	१०६	शुद्धत्वा चीवरं
केचित्पुनार्णवो	२७५	१७६	शुद्धिं दत्तेनिक
कृमिके स्वीकृते	१३५	१६३	शुद्धिं यतयो
कृमिकेकान्त	१३४	१६३	गोशुभे चार्कं
क्षपकः क्षपय	६७६	२१७	गोशोनिरेण्यते
क्षयोपशमय	८३०	१९३	गोशोनिर्गर्भनादयं
क्षयं नीत्याय	७६९	२२७	गीर्णशुभा मये
क्षयिहीरक	६९१	१९१	गीर्णं हि धर्म
क्षारोष्णीय	८१	१५८	मन्था हारवादयो
क्षीणमोहं	२३	१५१	घ
क्षुतिगामाद	२३८	१७३	यन्निर्गर्भयुवो
क्षेत्रं शुद्धं चरं	६२५	२१२	युग्मं गे मित्रय
क्षेत्रविषय	४६१	१९५	यडाद्यात अपो
			यंटादेर्देवत

को. सं.	पृष्ठ	को. सं.	पृष्ठ		
धा.					
बभ्रुसंनमा	३४५	१८४	जीवसामान्यतो	२४२	१०३
बकिनामह	७७५	२२७	जीवाजीवाद्यवा	३८८	१८७
बभ्रुओ गनसो	१५	१५०	जीवितो दशमि	३३९	१८३
बभ्रुसंननुयो	५९९	२१०	जीवो नित्यस्तु	१४४	१०३
बभ्रुसंनियसो	३९५	१८८	जीवो हि सोपयो	३३८	१८३
बभ्रुसंन राम	६८५	२१८	जोर्ने तुने कुष	२०३	१०२
बभ्रुसंनरि	५८६	२०८	जैनभाषा बह	३१०	१८०
बभ्रुसंनरिद	४८५	१९७	ज्ञातारोडमित्त	७७३	२२७
बभ्रुसंनरि	५३२	२०२	ज्ञाता दृष्टगदा	१७४	१६७
बराबरमिदं	११४	१६१	ज्ञानदृष्टपापुते	७३०	२२३
" "	७३२	२२३	ज्ञानं पूजा तपो	४०७	१९०
बहनिः सुखसं	४८९	१९८	ज्ञानं भक्ति. क्षमा	५१२	२००
बेननालक्ष्मो	३८५	१८८	ज्ञान यदि क्षण	१३८	१६३
बैलमकन्या	८९७	१९८	ज्ञान विना न	१८४	१६७
" "	५३३	२०२	त.		
ज.					
जन्तोर्मासो हि	३४०	१८३	तच्छरीराधवा	७५९	२२६
जान्ममिवा	६१६	२११	ततस्तु महीरो	४२५	१९१
जायन्तुस्मरणा	१५९	१६५	तनत्रयोदशो	७२५	२२२
जायन्तरसंनु	३१६	१८१	ततोऽन्तर्बोद्ध	२५८	१७५
जानकीहरणा	११६	१६१	ततो निर्वर्त	७४१	२२४
जिनकन्योऽस्ति	३६१	१७५	ततोऽन्तर्मासि गयी	२०३	१६९
जिनपूजा प्रक	४६७	१९६	ततो मन्मैः समा	१८५	१६८
जिनेन्द्रस्य धनि	१७६	१६७	ततोऽसौ स्वास्पद	९५	१५९
जिनेन्द्रपात्र	५५२	२०५	ततः कुम्भं समु	४८३	१९७
जिनेश्वरं सम	४७९	१८७	ततः पौर्वादिषी	४६९	१९६
जिनोक्ति मन्मते	३०७	१८०	ततः शिष्यमुख्य	२०५	१६९
			ततः सुभ्ये	७५०	२२५
			ततः सोऽप्युपगच्छे	१९४	१६८



	श्लो-सं-	पृष्ठम्		श्लो-सं-	पृष्ठम्
तत्किं न क्रियते	६२	१५६	तस्मादावन्ति	१७२	१८६
तत्तावन्मात्रं	६९	१५७	तस्मादावद्दय	१५०	११९
तत्प्राग् स्वत	१२७	१६२	तस्मान्निर्गत्य	८३	११८
तत्कलं च स्वर्गं	३४८	१८४	" "	२८७	११८
तत्र निवृत्ति	७५४	२२५	तस्यान्मत्स्वादि	५७	१५१
तत्रादौ योग्यं	४७३	१९६	तस्य मतानुया	१७५	१६६
तत्रार्थं ब्रूय	२५	१५१	तस्याग्रे देवताः	८९	११८
तत्रार्थं शृणु	६७९	२१७	तस्या ओमो न	२४३	१०३
तत्रानुभूय मनु	६१३	२११	तानाया प्रवद्	१६०	१६९
तत्रापूर्वपुन	६७२	२१७	तादृशान् न	८६८	१९६
" "	६७८	२१७	तादृशं श्रुते	१५६	१६१
" "	६९२	२१९	तिस्रो गौरीना	८७	१५८
तत्रावभृन्महा	१९३	१६८	तित्योत्पत्तिः	१००	११९
तत्रावर्षादिभिः	२६	१५१	तित्यन्येष्टक	३६७	१६६
तत्रोत्पत्तिः	३२३	१८१	तित्यभिः ताभिः	८९१	१६६
तत्रागुह्यपु	७६४	२०६	तित्यन्यः श्रुते	६८९	१६६
तत्रा धर्मद्वये	३१०	१८१	तीर्थानुष्ठानावः	३८	११३
तत्रानि कृत्वा	२३९	१०३	तीर्थविष्णवाव	२१	११०
तदग्रे येन वि	६०	१५५	तेनानिपत्रा	५०३	१०३
तद्वद्वययोग्या	६८०	२१८	तेनान्निमिष	७२८	१११
तद्वद्वययोग्या	८९६	१९८	तेनान्निमिषा	११०	१११
तद्वद्वययोग्या	२०८	१९९	तादे कर्मव्रतः	४८८	१९८
तन्निष्पत्तिः	३१	१५२	तादे प्रवृत्तः	४८८	१९८
तत्रावर्षादिभिः	३९	१५३	न तादृशं तनु	३०१	१६६
तत्रावर्षादिभिः	४८	१५४	तत्रावर्षादिभिः	६९०	१६६
तत्रावर्षादिभिः	८८०	१९८	तत्रावर्षादिभिः	६९१	१६६
तत्रावर्षादिभिः	८९	१९९	तत्रावर्षादिभिः	४८८	१९८
तत्रावर्षादिभिः	९८०	१९८	तत्रावर्षादिभिः	१९०	१६६

श्लो. सं.	पृष्ठम्	श्लो. सं.	पृष्ठम्
२१५	१७०	१७८	१८७
७१९	२१४	१०	१५०
५४२	२०३	७०५	२११
१३	१५०	१५९	१८५
४१५	१९०	६९७	२१९
४५०	१९४	घ.	
११०	१६१	४५६	१९५
१११	१७१	६३८	२१३
५११	२०३	३८३	१८७
११३	१६२	६९९	२१३
४५८	१९५	७४५	१९४
४१९	१९१	७५१	१९५
७८०	२१८	६६४	२१६
९९	१५९	७७८	२१८
९६	१५९	६९३	२१९
४०६	१९९	२१९	१७१
५०४	१९९	६३७	२१३
७६२	२१६	ग	
४०३	१८९	५८९	२०९
७५६	२५६	५५८	२०५
५११	२००	११०	१६०
५६१	२०६	४५३	१९४
५९२	२०९	५२०	२०१
५७५	२०७	९२	१५९
४१३	१९०	५१७	२००
३६५	१८६	६३१	२१३
३३७	१८३	१०२	१६०
		२०१	१६९

श्री-सं०	पृष्ठम्		श्री-सं०	पृष्ठम्
तन्नि न क्रियते	६२	१५६	तस्मादावन्ति	१३२
तत्तावन्नामि	६९	१५७	तस्मादावदय	६५०
तत्प्राप्तं स्वयं	१२७	१६०	तस्माद्विगम्य	८३
तत्पदं च स्वयं	१४८	१८४	" "	२८७
तत्र निवृत्ति	७५४	२२५	तस्यान्मिषादि	५७
तत्रादौ शोषणं	४७३	१९६	तस्य मगानुषा	१७५
तत्रार्थं बहुल	२५	१९१	तस्यात्रे देवताः	८९
तत्रार्थं शुद्ध	६७९	२१७	तस्याः जीवो न	२८९
तत्रानुसूच सन्	६१३	२११	तामसा प्रवद	१६०
तत्रापूर्वगुण	६७२	२१७	तावत्प्रायः स	८६८
" "	६७४	२१७	तावत्सर्वंते	१७६
" "	६९२	२१९	तिरस्त्री गौर्नुषा	८७
तत्राप्यमून्महा	१९३	१६८	तिष्ठोत्तमेति वि	१००
तत्राम्बुद्विषो	२६	१५१	तिष्ठन्वेदिक	३६७
तत्रोद्यमिषो	१२३	१८१	तिष्ठमिः शान्ति	४९१
तथागुह्यवु	७६४	२२६	तिष्ठन्गुःश्वयं	६८९
तथा धर्मद्वये	३१७	१८१	तीर्थांशुस्नातः	३८
तथापि ब्रह्म	२३९	१७३	तीर्त्तमिष्यात्	७२
तदज्ञे चेन्न वि	६०	१५५	तेषांविषयः	५७३
तद्वयनयोगतो	६८०	२१८	तेषांविषयः	७२८
तद्यंत्रयंत्रयो	४९६	१९८	तेषां बन्धो विना	१३७
तद्वयत्तापि	२०४	१६९	तोयैः कर्मरजः	४८८
तन्निभ्यात्वं	३१	१५२	तोयैः प्रसृत्य	४८४
तत्रसा ब्राह्मणे	३९	१५३	तं ब्रह्माणं समु	३७१
तत्तद्वयः	७८	१५७	त्यक्तप्रत्ययेषु	६२७
तस्मादनुवर्तो	४४७	१९८	त्यक्तप्रत्ययेषु	६११
तस्मात्पुष्टिः प्र	४२	१५३	त्यक्त्वा स्थूलं	७४८
तस्मादावेष	६४७	२१४	त्यक्त्वां कृतिवत्ता	१९७

	श्री-सं०	शुद्धम्		श्री-सं०	शुद्धम्
पुरोक्तलक्षणो	३१३	१८८	कार्यदेवविधि	६१४	२१३
पुस्तकं च यथा	२८०	१७७	कुमुदा भोज	२१७	१७०
पुर्वेदेष ततः	७१३	२२१	प्रभुचर्यमणे	११९	१६६
पुष्पापात्राणि	४७५	१९७			
पुष्पादानं गुरु	५२३	२०५	भद्रविष्णुस्तो	५७१	२०१
पुष्पभाषावर्जिता	१६७	१६६	भक्त्यन्तोदयता	३०१	१७९
पुष्पाकारान्वया	३८०	१८७	भक्त्यात्मा पूजक	४६५	१९५
पुष्पापरविह	३३०	१८२	भक्त्यसात्कृतये	१२२	१६२
पुष्पापरदिने	५३५	२०२	" "	६१७	२१३
पृथ्वी तोयं तया	३६२	१८५	भाद्रमादित्रिपु	४२७	१९१
पञ्चमूलात्मिके	१५६	१६५	भावा जीवपरी	१	१४९
पञ्चविधेऽथ	३५०	१८४	भावास्ते पञ्चभा प्रोक्ता	६	१४६
पञ्चाक्षविक्रमाः	१८३	१६७	भावास्तो भवे	३८६	१८८
पञ्चाक्षिना तपो	५९१	२०९	भावाऽथ क्षादिकः	७९६	२२३
पञ्चानां सङ्कट	६६२	२१६	भीतेन तस्व ता	२०६	१७०
प्रत्याहवानोदय	४४२	१९३	भुक्तिमात्रप्रदा	१६६	१६६
प्रभक्त्युपश्रम	६७७	२१७	भुक्तेऽभ्यस्तुतिर	४९	१५४
प्रणामातिशय	४२४	१९१	भुजता तेषज्यते	५०८	२००
प्रणिनां रक्षण	६००	२०९	भूतयोगादिपदा	१४८	१६४
प्रविशान्तात्सवे	६४	१५६	भूतवाच क्षीय	२००	१७१
प्रतिहार्याहो	७३४	२२३	" "	७१६	२२२
प्रत्य हव्यादि	३५१	१८४	भूतवादिपञ्च	१०७	१६०
			भूमिपूर्वा च	४७६	१९७
क	५३७	२०३	भूतान्द्रमन्त्र	७७९	२२८
			भेदाभेदवदा	६३६	२१३
क	४६	१५४	भयन्त्र क्रम-	१२६	१६२
कथ्यते हर्म	३८७	१८८			
कादरकावरी	७४७	२२५	मति- पुतावरी	३४३	१८३

	श्लो० सं०	शृङ्ख		श्लो० सं०
नष्टाशेषप्रमा	६५४	२१५	नृपतिशानु	७६८
न सन्ति चेन्मता	२५०	१७४	नृपैर्मुकुटव	५५६
न क्षेत्रं चीवरं	२५५	१७४	नैवं परिग्रहा	२६२
न क्षेत्रं धुप्र	३१५	१८१	नैवं स्यान्मार्ग	६६
नानावाग्निर्मर्ष	४२०	१९१	नोद्धर्मैर्धर्मनामा	२९६
नास्ति क्षुधासमो	५६४	२०६	" " "	२२८
नास्ति क्षुधा विना	२१३	१७०	नोदितां सेवते	५४३
नास्ति क्षीर इति	१५९	१६५	नोपकारो विना	३३९
नास्ति त्रिचाल	५४७	२०४	न्यस्याम्हानादि	४८२
निमन्था यत्तयो	३०८	१८०	"	४
निजगुहात्म	७१९	२२२	परमात्मा द्विधा	३५६
निजामद्रम्य	७२०	२२२	परिच्छिन्तां पदा	३२६
निजामानं नि	६०४	२१०	परिणामः पदा	३६८
निद्रा स्नेहो हृषी	६२३	२१२	परितः स्थान	४७८
निघयो नव	५१५	२११	पर्यायादीनां पदा	१०९
निन्द्यासु भोग	५७७	२०७	पर्यायाः प्रमद	३७५
निाया चतुर्मुखा	५५४	२०५	पञ्चाङ्गानसिधि	४७०
निमित्तज्ञानतः	१९०	१६८	पश्य सम्यक्त्व	३०२
निरालम्बं तु य	६०६	२१०	पात्रे दानं प्रक	५९७
निर्वापितं समु	५२४	२०१	पात्रे अत्यतिर्ग	१४१
निशम्येति वच	१९१	१६८	पात्रं त्रिविधं	५१३
निधीयते पदा	३३६	१८३	पादयोः कंटकं	२६५
निष्कण्ठो मुक्ति	३५७	१८५	विदस्यं च पद	६६०
निष्प्रकम्पं विधा	६९४	२१९	विहो देह इति	६६१
निःशम्या निरहं	६३४	२१३	पुण्यहेतुं परि	६१०
निःशम्यो निरहं	३३३	१०३	पुण्यहेतुस्ततो	६१२
निःशर्यते ततो	६९९	२२०	पुण्योपधिगमा	५७४
नीचसंहननं	२७९	१७७	पुत्रेणार्पितदाजेन	५०

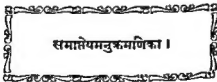
श्लो० सं०	पृष्ठम्		श्लो० सं०	पृष्ठम्	
समस्तप्रदे	२८८	१८८	सासादनगुण	३०३	१७९
समता बंदना	६४८	२१४	सिद्धबोध्यमिम्या	६६८	२१६
समभूतुल	२०८	१७०	सिद्धे द्वावेव	२०	१५१
समवाहापत्नी	२९८	१७९	सिद्धाथ महिषो	५८२	२०८
सवितर्क सवि	७०१	२२०	सुरासाधारनात्	१४२	१६३
ससम्पत्तयस्य	६५९	१७५	सूक्ष्मे त्रिनोदिठे	३३४	१८२
सहभूता गुणा	३७४	१८७	सूक्ष्मो वाग्वोचरो	३७६	१८७
समीचीनमिदं	४०९	१९०	सूक्ष्मस्येव सं	७७	१५७
समीचीनकरणं	५२३	२०१	सूक्ष्मागुणि	५९०	२९०
समुत्तरेषु	२२०	१७०	सूर्यापो बहिः	४०२	१८९
समुत्पादोक्ति	१११	१६१	गृहिनिर्माणे	१०४	१६०
समुत्पातस्य	७४२	२२४	गौरीरुक्ताः स	५७९	२०८
समुत्पाताभि	७४४	२२४	संक्रान्तौ च नि	४०४	१८९
समुच्चिन्नकि	७५५	२२५	संक्षेपस्नायना	४९८	१९९
सम्पत्तवासाद्	२९३	१७८	संक्षिप्तैवं कृपा	१७९	१६७
सम्पत्तयं दरी	१२	१५०	संजलनरुक्ता	६५३	२१५
सम्पत्तिप्रमाणं	६५१	२२५	संयज्य वेदक	६९५	१७८
सम्पत्तिमन्त्रात्	३१४	१८०	संपूज्य चरणौ	५०२	१९९
	३२०	१८१	संप्रति दुःखमे	२७८	१७७
सर्वप्रत्ययका	३९८	१८९	संयमो नियमो	१३६	१६३
सर्वज्ञः सर्वतो	३९९	१८२	संयमोऽयं हि	२६०	२७५
सर्वेभ्यः प्रदे	५८	१५५	संयमागोऽति	५०९	२००
सर्वद्विषो शते	१८८	१६८	संसारवर्तिनी	६४१	२१४
स सूक्ष्मे काय	७४९	२२५	संसारान्धौ महा	५६९	२०७
सामाधिक च	४६२	१९५	संसारैरिह्य	४११	१९०
सामाधिक प्र	४६३	१९५	श्रीदोनिस्वान	५१९	२०३
सारभ्यं पौंड्र	११७	१६१	सुखा त्रिं	४८७	१९८
शालेभ्यः	६५५	२४१	स्वविरागिण्य	२७७	१७७

श्लो. सं.	पृष्ठम्	श्लो. सं.	पृष्ठम्		
विधायैवं जिने	५००	१९९	शारीरं मानसं	७९	१५५
विनयो यदि स	१९४	१९९	शुद्धसम्पत्त्व	२६४	१७५
विनाहारैर्बलं	५६५	२०६	शुभभावाद्यवात्	५	१४५
विनाहारं न च	२२५	१७१	शीलव्रतानि त	४५७	१९५
विनयोपकरणं	१०६	१६०	शीलव्रतेषु सं	२७२	१७५
विरतिद्वयं	४४३	१९३	शैवाचार्या वद	१६८	१९५
विरताविरत	४४४	१९४	ध्यानं कुर्वते	३२५	१८५
विराजतेष्टार्थि	३३१	१८२	श्रीमन्मूर्धन्यपू	७८१	१२५
विरिञ्चिर्गतः	९३	१५९	श्रीमद्वीरं जिना	१	१४५
विशुद्धा निधत्ता	७७४	२२७	शुनं चिन्ता मित	७०२	१२५
विशुद्धं दर्शनं	७३३	२२३	शुक्लाप्येवं पुराणोक्तं	४७	१५५
विश्वगर्भमन	११९	१६१	इवेताम्बरैः परि	२०७	१७५
विहरन् सकलां	७२५	२२३	व		
विहाय गमन	७६५	२२६	वदकर्मभिः किम	६०३	१९५
वीरचर्या न त	५४८	२०५	वन्मासायुः स्थिते	७१७	१९५
वृत्तमोहोदयं	६८१	२१८	स		
वृषभस्योषदे	१२९	१६२	सकलानुव्रते	३१८	१८५
वेदनीयस्य सङ्गा	२१४	१७०	सप्रन्यस्वेन	२५३	१७५
वेदवादी वदत्येवं	३३	१५२	सन्निताहार	४६६	१९५
वेदान्तं क्षणिकत्वं	३२	१५२	सत्तावबोध	१४६	१९५
वैद्यमेकतरं	७६६	२२७	सत्पात्रं तार	५७०	१०५
वेद्याया. वदुत्ती	५८३	२०८	सदैवाश्रयना	२४४	१७५
मतशीलदयाधर्म	४०	१५३	सङ्कटविपात्रदा	५६८	२०५
वा			सद्यः सदोक्षित	१७७	१९५
व्यतानि पंच	५८१	२०८	सन्ति क्षुधादयो	२२२	१७५
व्यदो बन्धस्तम	३६०	१८५	सन्तवस्मदादयो	१७८	१९५
वांभीर्न विद्यते	१२५	१६२	सन्मोक्षसाधने	२६८	१७५
शान्तिनामा गणो	१९२	१६८	सप्तमं नरकं	२४८	१७५

श्लो० सं०	पृष्ठम्		श्लो० सं०	पृष्ठम्	
सप्रवृत्तिप्रदे	३८८	१८८	सासादनगुण	३०३	१७९
समता बंदना	६४६	२१४	सिद्धयोऽप्यपिमा	६६८	२१६
समभूकुल	२०८	१७०	सिद्धे हानेव	२०	१५१
समवादावली	२९८	१७९	सिद्धाय महिषो	५८२	२०८
सवितर्कं सवि	७०१	२२०	सुरायांसाशनाद्	१४२	१६३
सख्यवत्सल्य	२५९	१७५	सुखे जिनोदिते	३३४	१८२
सहभूता गुणा	३७४	१८७	सुखो वाग्वोचरो	३७६	१८७
समीचीनमिदं	४०९	१९०	मूनकस्येव सं	७७	१५७
समीचीकरणं	५२३	२०१	सुखस्युषि	५९०	२९०
समुत्तमेयि	१२०	१७०	सूर्यायै वरिह	४०२	१८९
समुत्पादोक्ति	१११	१६१	सुशिक्षांयमे	१०४	१६०
समुत्पातस्य	७४२	२२४	तौद्योत्साः स	५७९	१०८
समुत्पाताभि	७४४	२२४	संक्रान्ती च वि	४०४	१८९
समुच्छिन्नकि	७५५	२२५	संज्ञेयस्त्वानरा	४९८	१९९
सम्यक्त्वासाद	२९३	१७८	संविन्नरैर्ब कुपा	१७९	१६७
सम्यक्त्वं दरी	१२	१५०	संज्वलनकपा	६५३	२१५
सम्यग्निज्जनागम	६५३	२२५	संज्वल्य वैरु	६९५	१७८
सम्यग्निमन्वात्	३१४	१८०	संपूज्य चत्वार्य	५०२	१९९
	३२०	१८१	संप्रति दुःखमे	२७८	१७७
सर्वप्रत्ययका	३९८	१८९	संयमो नियमो	१३६	१६३
सर्वज्ञः सर्वतो	३९९	१८९	संयमोऽयं हि	२६०	१७५
सर्वव्यवहारे	५८	१५५	संविभागोऽति	५०९	२००
सर्वदक्षिणे धते	१८८	१६८	संसारवर्तिनी	६४१	२१४
स सुखे काय	७४९	२२५	संसाराभ्यो महा	५९९	२०७
सामाधिक च	४६२	१९५	संकारेन्द्रिय	४११	१९०
सामाधिक प्र	४६३	१९५	स्त्रीयोमित्वाय	५३९	२०३
सारभ्यं पांडु	११७	१६१	सुखा जिनं	४८७	१९८
सालंबध्यान	६५५	२४१	स्वमित्रादिगण	२७७	१७७



	श्लो० सं०	पृष्ठम्		श्लो० सं०	पृष्ठम्
स्थानेष्ठादश	५४९	२०४	स्वभावेनोर्ध्वं	३४९	१८१
स्थापनमासनं	५४९	२०४	स्वभावः कुस्मि	३४६	१७३
स्थूलकालान्तर	३७७	१८७	स्वयं कर्म करो	३४७	१८५
स्थूलस्थूलं तथा	३६२	१८५	स्वशुद्धात्मानु	७०३	२१०
स्थूलहिंसानृत	४५१	१९४	स्वसिद्धान्तोक्त	६३९	२१४
स्नानपीठं हृदं	४७७	१९७	स्वसवेदनवे	१५४	१६९
स्यात्कर्मोपशमे	८	१४९	स्वोत्तमाङ्गं प्रसि	४८६	१९८
स्याद्दर्शनोपयो	३४४	१८३	ह		
स्यादुपशमसम्य	११	१५०	हस्ताकारस्व	३९०	१८८
”	६७८	२१७	हस्तशुद्धि विधा	४७५	१९६
स्वकर्मफल	४४	१५४	हास्यादि पदमु	५१८	२१३
स्वकृतपुण्य	५३	१५४	हास्यास्पदीकृतो	९८	२५९
स्वगेहे चैत्य	५५५	२०५	दिमवद्विजया	५८४	२०८
स्वभावमलिने	४१२	१९०	हिंसानन्दो मृषा	४३५	१९३
स्वभावाशुचि	४१	१५३	हेयोपादेयवि	१८०	१६७
स्वभावेतर	३८१	१८७	हेयोपादेयवैक	३५३	१८४



# उद्धृतवचनानां सूची ।



	प्रा० पृष्ठ संख्या.	सं० पृष्ठ संख्या
आवन्तमतिनो	९	१५३
अरभ्ये निजंते	७	१५१
अविरयनम्मा	+	१५३
अकाशगामिनो	१४	१५६
आत्मा नदी संवत्स	९	१५३
आगोपाकारि वदु	१४	१५६
वत्तारि वारमुद	+	१९८
जले विष्णुः स्वते	११	१५५
देहाधिका देह	४२	+
सितसर्पवमात्रे	१४	१५६
न हि हिताकृते	१४	+
नाभि स्वाने वसेदु	१३	१५५
नासाधे च सिधं	१३	१५५
प्राज्ञयः क्षत्रियो	+	१५६
मातृवद्वर्गो वराहश्च	११	+
		+
मनः समर्थाभिनये	+	१९२
मांछं तु हरिर्ध	१४	+
वदन्ती वरकं	७	१५९
मातृवदीयेदु	४३	+
स्वाधरा संजया	१४	+

समाप्तोऽयं सूची ।



अशुद्धयः	शुद्धयः	पंक्तिः	पृष्ठम्
अमन्त्रोऽर्चा	अमन्त्रमौ (इत्यनेन भाष्ये) १९		१५३
अन्याः	अन्याः	४	१६६
अता	अताः	१३	१६६
आराष्ट्र	आराष्ट्रा	२७	१६८
लिग	लिगं	२०	१७३
दनागारा	दनगारा	१८	१७६
लक्षणः	लक्षणो	१७	१८८
९९४	२९४	२१	१८९
वेदमा पराजना चौर्य	वेदमापराजनाचौर्य	१२	१९४
सत्यच	सत्यंच	१८	१९८
अधिकापाक	अधिका पाक	१०	२०१
आतैरादं	आसैरौदं	१६	२०४
( ति )	•	४	२०४
संक्रम	संक्रम	१७	२१८
पद्मप्रकरः	पद्मप्रकरमपुकरः	१४	२८८
चतुष्टिगुण	चतुष्टिगुण	३	२१०
पुवेदे	पुवेदे	५	२४६
८	२८	अनि•	२९४
वालेन्द्रः	वालेन्दुः	१८	२८१

